"Man's hour on earth is weakness, error, strife.

* * * "Even in his darkest hours
"Still doth he war with Darkness and Powers.
"Of Darkness ,—for light he cannot see
"Still round him feels ; —and, if he be not free,
"Struggles against this strange captivity."

—*Goethe's Faust.*

"Bends and then fades silently
"One frail end fair anemone."

—*Shelley's Prometheus Unbound.*

" * * Climbs and wanders through
steep night some star ;

* * * * * * * *

"Ere it is borne away, away,
"By the swift Heavens that cannot stay,

* * * * * * *

"And the gloom divine is all around."

—*Ibid*

"Man's hour on earth is weakness, error, strife.
* * * "Even in his darkest hours .
"Still doth he war with Darkness and Powers.
"Of Darkness ,—for light he cannot see
"Still round him feels ;—and, if he be not free,
"Struggles against this strange captivity."

—Goethe's Faust.

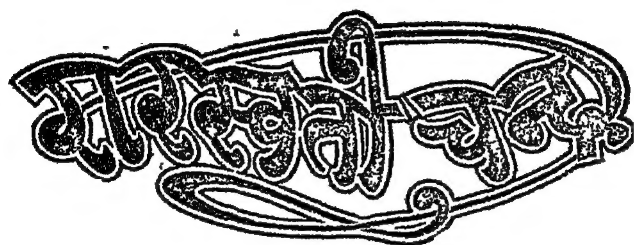
"Bends and then fades silently
"One frail end fair anemone."

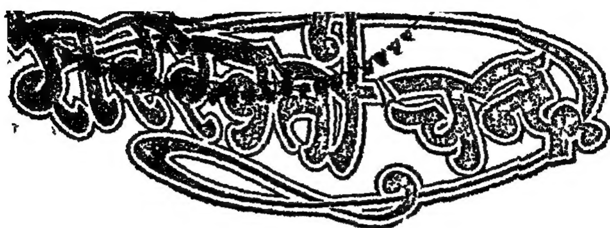
—Shelley's Prometheus Unbound.

" * * Climbs and wanders through
steep night some star ,
* * * * * * * *
"Ere it is borne away, away,
"By the swift Heavens that cannot stay,
* * * * * * *
"And the gloom divine is all around."

—Ibid





पहला परिच्छेद।

सुवर्णपुरका अतिथि।

"त्यागि गेह मैं स्वजन-हीन भटका करूँ,
हृदय शोकसे पूर्ण, चरण कैसे धरूँ।"

❀ ❀ ❀ ❀

सुख बसो वहाँ जहँ भूल रक दुख-गाथा।
आदरके मीठे बोल प्रवासी पाता॥"

—गोल्डस्मिथ।



द्रा नदी पश्चिमी समुद्रमें जिस जगह मिलती है, उसमें आगे सुवर्णपुर नामक नगर बसा हुआ है। समुद्रके सङ्गम-स्थानसे विशाल भद्रा नदी ऐसी मालूम होती है, जैसे समुद्रका एक लम्बा हाथ पसर रहा हो। उसके किनारेपर सुवर्णपुर एक शान्त बालकके समान जान पड़ता है। माघ मासमें एक दिन इस नगरके किनारे

एक बजरा आलगा। माझी उससे माल उतारने लगे और इक्के-दुक्के यात्री भी नावसे उतरने लगे। नावसे जो यात्री उतरे, वे प्रायः सब व्यापारी थे। एक युवा भी इस नावमें था, जो नाव खेनेवाले मल्लाहकी ओटमें बैठा था। उसकी दृष्टि सुवर्ण-पुरके समीपवर्ती समुद्रकी लहरोंकी तरह लहरा रही थी और हृदय भी उसीके समान आलोडित हो रहा था। उसकी आयु तेईस या चौबीस सालकी मालूम होती थी। कपड़े बहुत साफ़ नहीं थे; चेहरा भी कुम्हलाया हुआ था। उसे दुःखसे भरी लम्बी साँसें लेते किसीने नहीं देखा, पर उसके मुखसे मालूम होता था, कि उसके हृदयमें बहुतसी साँसें दबी पड़ी हैं। इतना होते हुए भी उसकी कान्तिमें लावण्य और मुखपर सहज सुन्दरताके साथ कोमलता विराज रही थी। उस नावमें बैठे हुए दूसरे व्यापारी, अपने-अपने लाभकी बात सोच-सोचकर प्रसन्न हो रहे थे, पर इस युवाका हृदय उन व्यापारियोंसे सर्वथा भिन्न था, हाँ ऊपरसे समानता अवश्य देख पड़ती थी।

जब सब व्यापारी अपनी-अपनी चीजें सँभालकर नावसे उतर गये, तब युवा भी उदास और मन्द-वृत्तिसे किनारेपर उतर पड़ा। वह गालपर एक हाथ रखे हुए, थोड़ी देरतक खड़ा-खड़ा कुछ सोचता रहा, अन्तमें एक ओरको चल पड़ा। शहरमें जानेका रास्ता जुदा था; पर युवा इस समय एक दूसरे ही रास्तेपर चल रहा था। थोड़ी देरमें वह एक मैदानके बीचवाले रास्तेपर चलने लगा। धीमी श्वास और उदास चित्तसे वह धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। सामानमें उसके पास केवल एक छोटीसी गठरी थी। कभी वह आकाश और पृथ्वीकी ओर देखता और कभी

आस-पासके वृक्षोंपर दृष्टि डाल लेता था। इसी प्रकार स्थिरतासे वह आगे बढ़ रहा था। प्रातःकालके सूर्यकी सुनहली रोशनी उसके मुख और कपड़ोंपर पड़नेसे बहुत भली मालूम होती थी। ठण्डी हवाका झोंका कभी-कभी उसके कपड़ोंको उड़ाता हुआ निकल जाता था। पर ऐसे कठिन शीतके मौसममें भी उसके मस्तकपर पसीनेकी बूँदें झलकने लगी थीं। उसका कमलके समान मनोहर मुख लाल गुलाबके समान लाल होगया था। अन्तमें वह रास्तेके किनारे बने हुए एक विशाल शिव-मन्दिरके पास आ पहुँचा और कुछ देर इधर-उधर देखकर मन्दिरमें घुस पड़ा।

यह महादेवका मन्दिर, सुवर्णपुरके मन्त्री बुद्धिधनके पूर्वजोंका बनवाया हुआ था। मन्दिरके चारों ओर पत्थरका पक्का फ़र्श था और उसकी सीमापर ऊँची, पर पुरानी, दीवार थी। मन्दिरके पीछेकी ओर इस दीवारमें एक दरवाज़ा था और दरवाजेके पीछे एक छोटासा बग़ीचा था, जिसमें महादेवकी पूजाके लिये कुछ पुष्पोंके पौधे तथा एक बेलका पेड़ था। बग़ीचेके चारों ओर कच्ची मिट्टीकी दीवार थी और उसपर नागफनी लगी थी; दो एक जगहसे बाहर निकलनेका रास्ता भी था। बग़ीचेके पीछे एक छोटासा तालाब था, जिसका नाम "राजसरोवर" रक्खा गया था। मन्दिरके सामनेकी ओर एक पक्का बँधा हुआ कुआँ भी था। इस कुएकी जगह इतनी ऊँची थी, कि उत्सवके दिन उसपर खड़े होनेसेही महादेवके दर्शन हो जाते थे और दर्शक भीड़से बच सकता था। ख़ास मन्दिरका दरवाज़ा ऐसा था, कि हरेकको उसमें सिर झुकाकर ही जाना पड़ता था; देवताके सामने सिर झुकानेके ख़यालसेही वह दरवाज़ा वैसा बनाया गया था। मन्दिर खूब साफ़ था; बहुत जगहसे मिट्टीसे लीपा हुआ भी था।

ओरकी दीवारके पत्थरोंपर, लोगोंने अपनी अमरकीर्ति बढ़ानेके लिये अपने-अपने नाम लिख दिये थे। इनमें खड़िया, ईंट, कोयला, पेन्सिल आदि कई चीज़ोंसे काम लिया गया था। किसी-किसीने चाकूसे पत्थरपर खोद दिया था। इनमें ग्रामीण कविता, शुद्ध या अशुद्ध श्लोक, कहावतें, अश्लील गालियाँ, धर्मशालाके स्वामीको धन्यवाद, सूचना, धमकी, कुछ ऐतिहासिक बातोंकी तिथियाँ, देवोंके बिगड़े हुए और भद्दे चित्र आदि लिखे थे। बड़े भारी मैदानके बीचमें यह मन्दिर एक परम रमणीय स्थान था।

मन्दिरमें घुसतेही युवाने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। सीढ़ियों-को पारकर उसने पहले छतसे लटकते हुए घण्टेको बजाया और शंकरको नमस्कार किया। फिर बीचवाले दरवाज़ेके पास बैठ गया और अपनी गठरी सामने रखली। मन्दिरमें बैठा हुआ पुजारी महिम्न-स्तोत्रका पाठ समाप्त करके रुद्री पढ़ रहा था—उसने पढ़ते पढ़ते युवाको बैठनेका इशारा किया।

पुजारीकी उम्र तीस या पैंतीस सालकी होगी। कई महीनों-से उसने हजामत नहीं बनवायी थी, इसलिये सिरके बाल खूब बढ़ गये थे। देखनेसे तो पुजारी जड़भरतके समान मालूम होता था, पर वास्तवमें वैसा नहीं था। मन्त्रीके घरमें आना-जाना होने और इन लोगोंके साथ दिन-रात रहनेसे पुजारीने बहुत कुछ सभ्यता सीखली थी। उसकी स्वाभाविक भाषा गँवारू थी, पर अब उसमें चतुरता आ गयी थी। अधिक बोलनेकी आदत तो उसे थी ही, साथही वह बड़े आदमियोंकी खुशामद करना बहुत पसन्द करता था। जब वह बड़ी-बड़ी बातें बनाकर झूठका सच और सचका झूठ करता, तब कभी पकड़ा जाता और कभी सफल हो जाता था। वह छोटे आदमियोंमें बड़े आदमियोंकी बातें करके प्राय.

वाहवाही पाता था। मन्त्रीके नौकरोंसे कभी लड़ता और कभी उनका मित्र बन जाता था। मन्त्रीके कुटुम्बियोंसे अपने आपको दीन और दरिद्र पुजारी कहकर, वह उनके मनमें अपने प्रति दया उत्पन्न करा लेता था। मन्त्री उसे भोला और मूर्ख समझकर उसकी ओर ध्यान न देते थे।

नये युवाको देखकर पुजारीने पूजाका ढोंग चौगुना कर दिया। पानीके घड़ेमें अभिषेकका पानी और भर दिया, मूर्त्तिके ऊपर बेल-पत्रोंका ढेर लगा दिया और स्तोत्र पढ़ता हुआ अशुद्ध शब्दोंको ज़ोर-ज़ोरसे बोलने लगा। यह मन्दिर शहरसे बहुत दूर था, इसलिये कोई विरलाही नगरवासी भूला भटका कभी-कदाई इधर आनिकलता था। पर पुजारी मूर्खदत्तको यह नया भूत सवार हुआ था, कि शिवरात्रिके दिन नज़दीक हैं, इसलिये मन्त्रि परिवार, राज-परिवार और नगर-वासीगण ख़ासी तादादमें दर्शन करने आयेंगे। इस विचारके "श्रीगणेश" में ही उसने इस नये युवाको देखा। युवाको देखकर पुजारीपर वैसाही असर हुआ, जैसा भङ्ग पिये हुएको चिराग़ देखनेपर होता है।

थोड़ी देरतक तो युवा पुजारीका यह नया काण्ड देखता रहा, अन्तमें पूजाके माहात्म्यका विकास होता देख, उसे हँसी आगयी। पुजारी मूर्खदत्तने इस हँसीका मतलब यह समझा, कि मेरे आडम्बरको देखकर युवा प्रसन्न हो रहा है। ख़ैर, जैसे-तैसे पूजा समाप्तकर पुजारी बाहर आया और युवासे सवाल करने लगा.—

"तुम बड़े श्रद्धालु और इष्टदेवके भक्त मालूम होते हो!" "तुम्हारा नाम क्या है?" "तुम कहाँसे आ रहे हो?" "क्या यहाँ किसी कारबार या नौकरीके इरादेसे आये हो?" "तुम यहाँ पहले तो कभी नहीं आये?" "मैं इन महादेवजीका चेरा-पर-

म्परासे पुजारी हूँ" "मेरा नाम मूर्खदत्त है !!" अन्तमें मूर्खदत्तने महादेवका बेलपत्र और दो बूँद जल युवाको दिया।

महादेवके प्रसादसे युवाने अपनी आँखोंको पवित्र किया। अन्तमें उसने कहा.—"मेरा नाम नवीनचन्द्र है। मैं ब्राह्मण हूँ। अभी घाटसे उतरकर चला आ रहा हूँ। इस धर्मशालामें कुछ दिन रहनेकी इच्छा है और इस काममें तुमसे बढ़कर और कौन सहायक मिल सकता है? यदि मेरी रसोई अपने साथ बना लिया करोगे, तो मुझे और भी अधिक प्रसन्नता होगी।"

रसोईकी बात सुनकर पुजारी कुछ आश्चर्यमें पड़ा। इसी समय युवाने एक रुपया निकालकर पुजारीके सामने फेंका। रुपयेने पत्थपर गिरकर अपनी मधुर ध्वनिसे पुजारीका मन-प्राण पुलकित कर दिया। वह रुपयेको देखकर सब भूल गया।

आनन्दमें मग्न होते हुए पुजारीने, लक्ष्मीदेवीका सत्कार किया। आगे-आगे पुजारी और उसके पीछे-पीछे नवीनचन्द्र चले। चलते-चलते पुजारीने अपना व्याख्यान शुरू किया:—

"भाई नवीनचन्दर! तुम्हारा नाम तो बड़ा अटपटा है; पर मैं तुम्हें अबसे 'चन्दर भाई' कहा करूँगा और तुम भी मेरा पूरा नाम न लेकर "दत्त" कहकर पुकारा करो। अच्छा तो चन्दर भाई! अब चलो, उस बगीचेवाले दालानमें मेरी कोठरी है, वहीं रसोई होगी। तुम्हारे पास जो कुछ रुपया-पैसा हो, वह तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरे सन्दूकमें रख देना और कुञ्जी चाहे अपने पास ही रखलेना। तालाबमें नहाकर ध्यान-पूजा करनी हो, तो करलो; मैं भोजनके समय तुम्हें आवाज़ दे लूँगा। कल शिव-रात्रि है, मन्त्री और राज-कुटुम्बके लोग यहाँ आयेंगे; उस समय तुम्हारे बगीचेमें रहनेसे कोई हर्ज़ न होगा।"



दूसरा परिच्छेद।

बुद्धिधनका कुटुम्ब।



नवीनचन्द्र बग़ीचेमें गया। सूर्यदत्तने कोठरीमें जा आग जलायी, आस-पास धूएँका गुब्बार बँध गया। इसी समय घोड़ोंकी टापोंके साथ गाड़ीकी गड़गड़ाहट सुनाई दी। गाड़ीकी आवाज़ सुनकर सूर्यदत्तने जल्दी-जल्दी अपने हाथोंका आटा छुड़ाया और दरवाज़ेसे बाहर निकल, उचक-उचककर धूएँसे लाल हुई आँखोंसे देखने लगा। उसने देखा, कि अप्सराओंके समान चार-पाँच सुन्दरी स्त्रियाँ मन्दगतिसे मन्दिरकी सीढ़ियोंको पार करके भीतर आ रही हैं।

इस छोटेसे दलकी मुखिया दो रमणियाँ थीं। जो सबसे आगे थी, उसकी अवस्था लग-भग बीस वर्षकी थी और उसका प्रत्येक अङ्ग यौवनके उभारसे पूरा गठा हुआ था... नहीं। उसकी पुत्री अलककिशोरी थी। जो उसके पीछे यदि वह विरोध भी करती, रही थी, उसकी अवस्था पन्द्रह-सोलह की थी। इन सब कारणों-महाराजकी विरल, किन्तु शीतल लहरोंमें गुण थे, कि वह अपनेसे धनके पुत्र प्रमादधनकी नवोढ़ा स्त्री कुमुद थी। इस प्रकार उन्मत्त-अलककिशोरी ऐसे जा रही थी, जैसे कमीर परिजन जिनसे काम

फाड़ती—पृथ्वीसे आकाशतक तेजकी धारा बहाती हुई—बिजली निकल जाती है। उसके पीछे, शर्माती हुई कुमुदसुन्दरी, घोर घटाके छिन्न-भिन्न होनेपर, पूर्ण चन्द्रकी शीतल चाँदनीके समान शान्ति बरसाती हुई, प्रफुल्ल मुखके साथ जा रही थी।

ननद-भौजाईके स्वभाव और आचारमें बहुत उल्लेख-योग्य भिन्नता थी और उसके कारण, विशेषतः उनका कुटुम्ब, घरेलू इतिहास और बाल्यशिक्षा ही थे! उनके बाह्य स्वरूपमें जो अन्तर था, वह तो परमात्माने जन्मके साथही दे दिया था, पर दोनोंके स्वभावका विकास इन्हीं ऊपर लिखे कारणोंसे हुआ था।

अलककिशोरी उस वर्गकी स्त्री थी, जिस वर्गकी स्त्रियोंके रूपको 'जाज्वल्यमान' कहा जाता है,—अर्थात् जिनकी आगसे उपमा दी जा सकती है। उसका रंग सोनेके समान दमकता हुआ और दोपहरके सूर्यके समान तेज़ था, इससे दूरके मनुष्य-की नज़र उसकी ओर अपने आप खिंच जाती और पास आने-पर झुक जाती थी। उसके सब अङ्ग पुष्ट और साँचेमें ढले हुए थे; देखनेवालेकी दृष्टि उससे एकबार तृप्त होती और फिर प्यासी बन जाती थी। उसके हाव-भाव चञ्चल, प्रबल और प्रतापी थे। जो उसके सामने खड़ा होता, वह एकबारही उसके धीन होजाता था। बातें करते समय उसके प्रत्येक हाव-भाव ने ऐसा मालूम होता था, जैसे वह हुकूमत कर रही स्वाभाविक थी। जबतक मनुष्य उसके पास रहता, तबतक वह स्वाभाविक रहता था। बुद्धिधनका जैसा प्रताप, में होनेके कारण था, वैसाही प्रभाव अलक-रोमें था। साधारण लोगोंका कहना था,

कि यह प्रभाव उसकी शारीरिक सुन्दरताके कारण था। बात बिल्कुल झूठ भी नहीं थी; क्योंकि उसकी अपार सुन्दरताके तेज-के सामने लोगोंकी बुद्धिको लकवा मार जाता था और वे ऊपर-से मनुष्य, किन्तु भीतरसे केवल काठके पुतले बन जाते थे। जो सच्चे तार्किक या विचारक थे, या जो एकान्तमें बैठकर उसके गुण और दोषोंका विचार करते थे, उन्हें अलककिशोरीमें बड़ी-बड़ी त्रुटियाँ दिखाई देती थीं; पर जब कभी उनका भी उससे सामना होजाता था, तब वे साधारण आदमियोंकी तरह उसके अधीन हो जाते थे। इतना कुछ होते हुए भी, यदि कोई हृदय उसके विरुद्धही होना चाहता, तो उसके मनोमुग्धकर हाव-भाव और चंचल चितवनसे उसे अवश्यही किङ्कर्त्तव्य-विमूढ़ बन जाना पड़ता। इस प्रबल आकर्षण शक्तिके प्रतापसे, उभरते यौवनवाली अलकके पास हर समय कचहरीसी लगी रहती थी, जिसके विचारासनपर वह स्वयं बैठी रहती थी।

अलककिशोरीकी माँ सौभाग्यदेवी, एक साधारण रूप-गुण-वाली स्त्री थी और उसकी कार्यदक्षता तथा गम्भीरताके कारण बुद्धिधन उसे बेतरह प्यार करता था। अलककिशोरी बचपनमें अपने पिताकी लाडली बेटी थी; अतएव बचपनकी हठ और उच्छृ-ङ्खलता भी उम्रके साथ-ही-साथ बढ़ती गयी। बुद्धिधन राज-कार्यमें लगे रहते थे; इसलिये अलकपर किसीका दबाव न रहा। उसकी माता वैसेही शान्त स्वभावकी थी और यदि वह विरोध भी करती, तो अलक उसका कहनाही नहीं मानती थी। इन सब कारणों-के अलावा अलकमें कुछ ऐसे स्वाभाविक गुण थे, कि वह अपनेसे मिलनेवालोंपर तुरत प्रभाव डाल देती थी। इस प्रकार अलक-किशोरी अलक वर, कुटुम्ब, परिवार और परिजन जिनसे काम

पड़ता, उन्हींपर और जहाँतक उसका हाथ पहुँच सकता, वहाँ तक राज-कार्यमें भी अपना हुक्म चलाती थी। उससे बिना पूछे घरमें कोई काम नहीं होसकता था। उसका दोष कोई नहीं निकाल सकता था। वह जो कुछ करना चाहती, उसे कोई रोक नहीं सकता था। बाहरके आदमी मन्त्रीके कुटुम्बका प्राण उसीमें देखते थे, मन्त्रीके ऊपर हुकूमत उसीके द्वारा चलाई जाती थी; मान और खुशामदका अर्घ्य उसीके चरणोंपर चढ़ाया जाता था। इन्हीं सब कारणोंसे बहुतोंकी धारणा ऐसी भी थी, कि यदि अलककिशोरी अपने श्वशुरके घर चली जायेगी, तो मन्त्रीके घरमें अन्धेरा होजायेगा। बुद्धिमान मन्त्री इन बातोंसे अनजान नहीं थे, वे सदा सावधान रहते थे, कि इन बातोंका हानिकारक लाभ कोई न उठा सके और बेटीका मन रखते हुए अपने विचारके अनुसार काम करते थे। इतना सब होते हुए भी संसारके प्रवाहको फेरनेकी शक्ति उनमें न थी और जो कुछ शक्ति थी, उससे बेटीका अपमान होता था, इसलिये वे उसे काममें लानेकी इच्छाही न करते थे। संसार कैसा अन्धा बनकर हवाई क़िलोंको फ़तह करना चाहता है—यह देखनेके लिये कभी-कभी उनका कौतूहल बढ़ जाता था और कभी-कभी इस बातके बिना जानेही लोगोंकी इच्छाके अनुसार अपने आप लोमड़ीके लिये अँगूर टूट पड़ते थे। इसी प्रकार सुवर्णपुरके मन्त्रीके कुटुम्बमें घटनाएँ घटा करती थीं।

अलककिशोरी अपनी मनमानी करनेवाली थी; ग़रीबोंकी हालत उसके सामनेसे कभी गुज़री न थी; उसने सदा अपने विचारके अनुसारही झटपट काम होते देखा था; प्रत्येक कार्यके लिये वह झट आज्ञा दे बैठती थी। जो बात उसके जीमें बैठ

जाती, वह टलती नहीं थी ; मन्त्रीके पूरे भाग्योदयके समय वह पैदा हुई थी ; उसने सदा अपनेसे वय, ज्ञान, अनुभव, जाति और सुन्दरतामें अधिक मनुष्योंको अपनी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते देखा था। सच क्या है यह उसे किसीने नहीं समझाया था। झूठ क्या है ? यह कहनेकी हिम्मत किसीमें न थी; फ़ायदा किसमें है और नुक़सान किसमें है ? यह बतानेकी ग़रज किसीको थीही नहीं ; भूतकालकी बातें सुनाकर उसे दुःखी करना सबके स्वार्थके विरुद्ध था ; भविष्यकी सच्ची बातोंकी ओर उसका ध्यान खींचना, उसके मन और कल्पनाको तकलीफ़ देना था;—इन सब कारणोंसे वर्तमान नाटकके पात्रोंपरही उसका ध्यान रहता था और उसकी दृष्टि केवल सामनेवाले पर्देपर सीमाबद्ध होजाती थी। इन सब बातोंका नतीज़ा यह हुआ, कि भयानक अभिमान-रूपी सर्प उसके मस्तिष्कमें घुस बैठा था, जो हर समय आदेशकी वीणा सुनकर लहलहाया करता, दूसरोंको नीचा करनेके लिये फण फैलाकर फुँफकार मारता, आँखोंमें प्रत्येक समय मादकता घोला करता और सारे शरीरमें ज़हरकी लहर उठाया करता था। इस ज़हरीले साँपके असरसे बचनेके लिये उसके पास विद्यारूपी अमृत नहीं था और दुर्भाग्यसे सत्संगतिका कल्पवृक्ष भी उसे नसीब नहीं हुआ था। केवल नम्र और आज्ञापालक मन्त्रि-कुटुम्बसे वह घिरी हुई थी।

अलककिशोरीका सितारा खूब ऊँचे चढ़ा हुआ था। उसके सासरेवाले उसकी इच्छाके अनुसार चलते थे। उसके पतिको उसका अभिमान कभी-कभी खटक जाता था; फिर भी इस छोटीसी बातके लिये, उसके चित्तको दुखाना कृतघ्नता समझी जाती थी। सबका विश्वास था, कि जब मन्त्रि-पुत्र

प्रमादधनका विवाह होजायेगा, तब अलकाका अभिमान कम होजायेगा। पर ऐसा सोचनेवालोंको शीघ्रही अपना विचार बदल देना पड़ा।

प्रमादधनके विवाहके लिये बहुतसी लड़कियोंके पैग़ाम आये थे। पर उनके रूप, गुण और कुलकी तुलनामें माता-पिता और अलकका मत एक नहीं था। अन्तमें रत्ननगरीके प्रधान, विद्याचतुरकी कन्या, कुमुदसुन्दरीकी मँगनी टूटी। उसकी पहली मँगनी बम्बईके प्रसिद्ध व्यापारी लक्ष्मीचन्द्रके विद्वान् पुत्र सरस्वतीचन्द्रके साथ हुई थी। पर जब विवाहका दिन निकट आया, तब न मालूम किस कारणसे, सरस्वतीचन्द्र एक-दम गुम होगया; बहुत खोज करनेपर भी उसका कुछ पता न लगा। अन्तमें विद्याचतुरको एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था,—"किसी विशेष कारणवश मैंने अपना घर और नाम त्याग दिया है; मेरी विवाह करनेकी इच्छा नहीं है; मैं इस संसार सागरका एक उदास दर्शक बनकर अकेला इसमें विचरण करूंगा। किसीको मेरी चिन्ता करनी उचित नहीं है, मेरा पता अब किसी प्रकार नहीं लग सकता। यद्यपि मैं कुमुदसुन्दरीके साथ विवाह करके भाग्यशाली होता, किन्तु मेरे मनमें यह विश्वास नहीं होता, कि वह मुझसे सुखी होगी; परमात्मा उसके सौभाग्यको अचल बनायें। अब आप जहाँ इच्छा हो, वहाँ उसके विवाहका प्रबन्ध कीजिये।" यह पत्र पढ़कर विद्याचतुर निराश हुए और कुमुद-सुन्दरीके विषयमें उनकी चिन्ता और भी बढ़ गयी। कुमुदकी अवस्था बढ़ चली थी और सरस्वतीचन्द्रके समान रूप-गुण सम्पन्न एक भी वर उनकी दृष्टिमें नहीं आता था। विद्याचतुरके कोई पुत्र नहीं था, केवल दो कन्याएँ थीं—उनमें कुमुदसुन्दरी और

सरस्वतीचन्द्रका जोड़ा देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता होती थी ; अकस्मात् इस आपत्तिसे उसे पुत्र-शोकका सा दुःख हुआ। ऐसे समझदार और बुद्धिमान् सरस्वतीचन्द्रने एकदम यह क्या नासमझीका काम किया, यह उन्हें बिल्कुल नहीं समझ पड़ा। अन्तमें 'ईश्वरकी इच्छा' समझकर वह भविष्यके विचारमें डूब गये।

यह बात देश-विदेश सभी जगह फैल गयी। अखबारोंमें छप गयी। जाति-बिरादरीमें चर्चा चली। ज्ञान और अनजान सभी इसकी चर्चा करने लगे। हरेक जगह विद्या और पढ़ने-लिखनेकी निन्दा की गयी। बाल-विवाहके पक्षपातियोंको बड़ा अच्छा उदाहरण मिला। प्रमादधनने यह बात सुनी—पढ़ी ; और भोजन करते समय सबको पढ़कर सुनादी। इसके साथही कुमुदसुन्दरीके दुर्भाग्यकी चर्चा चली, सबको उसपर दया होआयी, अन्तमें उसके रूप-गुणकी भी चर्चा चली, तब सबके पीछे अलक बोल उठी,—"क्या उसका विवाह मेरे भाईके साथ नहीं हो सकता ?"

इसके उत्तरमें सौभाग्यदेवीने कहा,—"हो क्यों नहीं सकता ?"

बुद्धिधनने कहा,—"विद्याचतुरसे मेरी पुरानी मित्रता है ; उसका कुल और मर्यादा—दोनों ऊँचे हैं। उसकी स्त्री चतुर, सुशीला और पढ़ी-लिखी है।"

सौभाग्यदेवीने कहा,—"लड़कीको मैंने देखा है, जब मैं रामचन्द्रके ब्याहमें वहाँ गयी थी, तब मैंने उसे अच्छी तरह देखा था ; वह बड़ीही सुन्दर और चतुर है।"

अलकने कहा,—"तब शीघ्रही एक आदमी भेजकर मँगनी जोड़ देनी चाहिये।" इस बातपर विशेष विचार होने

सुन्दरीके लिये और क्या दुःख हो सकता था ? इस विषयमें वह बहुत सोचती-विचारती, बहुत कुछ प्रयास करती; पर इतने परिश्रमपर भी वह पतिकी कृपापात्री नहीं बन पाती थी। प्रायःही वह बड़ी चिन्तामें पड़ जाती थी और क्या करना या न करना चाहिये, इसी उधेड़-बुनमें फँसी रहती थी। वह बिछौने-पर पड़ी-पड़ी अक्सर नदी, बाग़ या आकाशकी ओर देखती-देखती, न जाने कितनी बार पतिके पीछे बैठी हुई आँसुओंकी बूँदे गिराती और ठण्डी आहें भरती थी।

एक दिन पति-पत्नी आँगनमें बैठे थे; रात्रिके दो पहर बीत चुके थे; चन्द्रमा मध्य आकाशमें आचुका था। शरद् ऋतुने तारा रूपी रत्नों और सफ़ेद मेघाम्बरसे प्रकृतिको सजा दिया था; चन्द्रमा उसके मस्तकका मुकुट बनकर संसारको प्रकाशित कर रहा था। उस समय विद्याचतुर एक तकियेके सहारे, ग़लीचे-पर बैठा हुआ, चन्द्रमाकी ओर दृष्टि किये किसी गाढ़ी चिन्तामें निमग्न था। गुणसुन्दरी पतिका सहारा लिये, उसके हाथको अपने हाथमें थामे, उस विषादपूर्ण मुखको निहार रही थी। इस मौन-विहारका तार बहुत देरतक चलता रहा; अन्तमें पतिका मुख और उसके साथ-ही-साथ हृदय भी खुला—कुछ मधुर-पद्य सुनाई दिये—

"मलय पवन बहत जात, धीर तुम बँधाइ हो।
तृषित नयन, हृदय-वेग, वेगही मधाइ हौं॥
रवि शशि-उड-नील गगन, भापत सुमधुर मदन
कहत ऐन-सेन आय, चित्त-चोर आइ हौं
दीन कुमुद लह-लहात, अल्पा जय करत प्रभात।
हृदय म्लान नाच उठत, दोल देखि जाइ हौं"

विकसित है प्राण-कमल, मधुकर माधुर्य विमल।
चरण चित्त-चन्द्रिका, चकोर-भोर धाइ हो ॥"

इस पदका प्रत्येक अन्तिम पद, पतिने प्लुत स्वरमें उच्चारण किया ; शब्द-लहरी मुग्धा पत्नीके हृदयमें मोहनी-मन्त्रका काम करती हुई, आकाशमें गूँजने लगी, फिर वह ध्वनि धीरे-धीरे कृतकृत्यके समान मन्द होते-होते अन्तिम पदमें लीन हो गयी।

"प्राणप्यारे ! मुझे समझाओ ! तुमने यह क्या गाया ?"

कुछ अकचकाकर पतिने कहा,—"हाँ, तुम समझोगी ? क्यों, समझोगी ?"—यह कहकर उसने पद्यके एक-एक पदका अर्थ समझा दिया।

"प्यारे ! यह गान सुनकर मेरे रोएँ खड़े होते हैं और शरीर काँप उठता है। मैं क्या करूँ, कि जिससे ऐसी बातें अपने आप समझमें आयें ? तुम मेरी सब इच्छाओंको पूरी करनेकी कोशिश करते हो, पर इस उपकारसे मैं जन्मभर तुम्हारी ऋणी बनी रहूँगी; इस आशाको लिये हुए यदि मर भी जाऊँगी, तो मेरी गति न होगी। मैं ऐसा कौनसा उपाय करूँ, जिससे तुम्हारे मनकी बात समझमें आजाये ; तुम्हारे मनका रूप समझमें आये, कि जिससे तुम्हारे दुःख-सुखमें मैं केवल तुम्हारा मुखही न देखा करूँ—वरन् मैं उसमें हिस्सा भी ले सकूँ। मेरे प्यारे ! बताओ, मैं ऐसा क्या उपाय करूँ ?"

विद्याचतुरने हँसते हुए कहा,—"ख़ैर, इन बातोंको रहने दो। मैं तुम्हें जो पढ़ाऊँ सो पढ़ो। बोलो, राज़ी हो ?"

इसके दूसरे दिनसे गुणसुन्दरीकी पढ़ाई शुरू हुई और थोड़ेही दिनोंमें उसे बहुत कुछ ज्ञान होगया। पीछे उसे सांसारिक झगड़ोंसे अवकाश कम मिलने लगा; पर जितना ज्ञान हो चुका था,

वह एकदम कम नहीं था। वह थोड़े दिनोंकी विद्या पतिके काम तो नहीं आसकती थी, पर वह पतिकी बातोंका मर्म भलीभाँति समझ लेती थी और उनकी आन्तरिक इच्छाके अनुसार काम करके उनके सुखको कई गुणा बढ़ा देती थी, वह विद्वान् पतिके संसर्गसे यह अच्छी तरह समझ गयी थी, कि सरस्वतीके विशाल मन्दिरके भीतर अभी मेरा प्रवेश ही हुआ है, इसलिये अवकाश पातेही वह अपनी विद्या बढ़ानेकी चिन्तामें रहती थी। इस समय गुणवती गर्भवती थी। पतिकी गम्भीर, ऊँची और सरस बातोंके मर्मको वह अच्छी तरह समझ सकती थी और इससे उसके हृदयकी प्रसन्नता कई गुणी अधिक बढ़ गयी थी; उसका असर गर्भपर बहुत अच्छा हुआ। इसका लाभ कुमुदसुन्दरीको मिला।

एक प्रसिद्ध विद्वान्ने मनुष्यको दरजीकी उपमा दी है। प्रत्येक मनुष्य अपने वस्त्र अपनेही समान और यदि सम्भव हो, तो अपनेही सिये हुए विशेष चाहता है। विद्याका भी एक साधारण नियम है, कि पढ़े हुए सबको पढ़ाना चाहते हैं। बालिका कुमुदसुन्दरी छोटी थी, पर माताने उसे पढ़ाना शुरू कर दिया। हमारे देशमें स्त्रीशिक्षाके सामने बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ हैं। छोटी अवस्थामें बालिका जब पाठशालामें पढ़ने जाती है, तब उसकी शिक्षा नाममात्रकी होती है। विवाह होनेके बाद संसारकी सब बातें पढ़ाईके विरुद्ध बन जाती हैं। घरमें, मूर्ख स्त्रियोंमें, अपनी मूर्ख सहेलियोंमें, विद्याका नाम लेना भी पाप समझा जाता है। परिणामी पशुवृत्तियोंको पूरा करनेमें, बेटे-बेटियोंके पालने-पोसने और उनके सुख-दुःखकी चिन्तामें समयका बहुत बड़ा भाग नष्ट होने और स्त्री-शिक्षाकी लापरवाहीसे, हिन्दू स्त्रियाँ नहीं पढ़ सकतीं।

अपनी और पतिकी इच्छासे गुणसुन्दरी कुछ पढ़ी-लिखी थी इसलिये उसने सोचा, कि अपनी बेटीके सामने जब तक ऐसी बाधाएँ न आयें, तभी तक उसे पढ़ा-लिखाकर होशियार कर देना चाहिये'। विद्याचतुरको दिन-पर-दिन अधिक काम मिलता जाता था, इसलिये उसे इसकी देख-भाल करनेका समय बहुत कम मिलता था, फिर भी वह समय-समयपर गुणसुन्दरीको आग्रहके साथ उत्साह देता, मार्ग दिखाता और उसकी ग़लतियाँ बात-चीत या हँसी-मज़ाक सुधार देता था। थोड़ेही दिनोंमें कुमुद-सुन्दरीकी विद्या बहुत बढ़ गयी, उस समय उसकी विद्याको देखकर माता-पिताको प्रत्यक्ष अपनी मिहनतका फल दिखाई देने लगा। वह संस्कृत और अँग्रेज़ी अच्छी तरह समझने लगी—इससे वह संसारधर्म, व्यवहारकुशलता, रसज्ञता, मर्मज्ञता, नीतिमार्ग आदि सांसारिक सहज गुणोंकी शिक्षा अनायास ही पागयी। संसार-सिंहासनकी गुणवती रानीको देखकर गृहस्थाश्रमके द्वारपालोंने नम्रतासे उसका आज्ञा-पालन करनेके लिये सिर झुका दिया। इसी समय सरस्वतीचन्द्रके न मिलनेसे निराश होकर, उसका हृदय कुछ खिन्न हुआ। इस दुःखके सिवाय उसके माता-पिता उसे देखकर स्वर्गसुख पाने लगे।

ऐसे सुन्दर संस्कारवाली कुमुदसुन्दरी बुद्धिधनके घरमें आयी, इसलिये उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे वह एक नयी दुनियामें हो। देखने-सुननेमें भी वह अलककिशोरीसे बिल्कुल भिन्न थी। उसका शरीर चाँदीके समान सफ़ेद और गोरा था। जाज्वल्यमान आकर्षणशक्तिका उसमें सर्वथा अभाव था। देखनेवालोंको वह सुशीलता और मधुरताकी मूर्तिके समान मालूम होतीथी। उसके मुखको और सब कोई देख सकते थे। वह सादे वस्त्र और सारे

गहने पहनती थी और उन्हींसे बहुत भली मालूम होती थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कोमल और सुडौल थे। उसका हाव-भाव किसी विशेष समयमेंही देखा जाता था और जब देखा जाता, तब वह बिल्कुल स्वभाविक होता था। शरद्‌-ऋतुके छोटेसे बादलके टुकड़ेपर चन्द्र-किरणें जैसी शोभा दिखाती हैं, उसका मुख वस्त्रोंसे ढका रहनेसे ठीक वैसाही जान पड़ता था। वह बहुत कम बोलती थी; पर जब बोलती, तब उसका मनोहर स्वर बहुतही" मधुर और सरस मालूम होता था। प्रत्येक वृत्तिवाले मनुष्य, जो इसके शान्त मुखको देखते, उन्हें वह मुख निर्दोष और शान्त जान पड़ता था। जो रसीले पुरुष इसे बार-बार देखते थे, वे इसके मुखपर अधिकाधिक शुद्ध सुन्दरता पाते थे। चतुर स्त्रियाँ उसकी ओर चकोरके समान टक-टकी लगाकर देखती थीं; अधेड़ स्त्रियाँ उसकी सहज सुन्दरताकी प्रशंसा करती थीं; युवतियोंको उसकी बातें रस-भरी जान पड़ती थी। रसीली नवयुवतियाँ उसके पास बैठकर उसके देखने, हँसने और बोलनेकी नक़ल करती थीं; उसके हाव-भावका अनुकरण करती और अपनी सखियोंको वैसाही करनेका उपदेश देतीं थी! वे एकान्तमें बैठकर उसकी लज्जा, चतुराई, सुन्दरता आदिका पृथक्करण करतीं और किस अवसरपर उसका कौनसा भाव अच्छा लगता है, इसपर विचार करती थीं। छोटे बालक खेलना छोड़कर उसे घेर लेते थे। यदि कोई मनुष्य, उसकी सुन्दरताकी बारीक़ियाँ निकाल कर, अपने साथियोंसे बयान करता, तो सब उसे ध्यानसे सुनते और उसकी बुद्धिमत्ताकी सराहना करते थे। जो उसे देखता, उसीके हृदयमें अपूर्व भावका उदय हो जाता था। उसके मुखको देखनेवाले, उसकी बातोंको सुननेवाले और उसकी चर्चा करने-

वाले भी मानो शान्ति देनेवाली चाँदनीमें निमग्न होजाते ; सब लोग मानो अपूर्व अमृतके सरोवरमें स्नानकर शीतल होजाते थे और उन्हें ऐसा ज्ञात होने लगता, मानो वे एक अपूर्व, निर्दोष, और रसिक वृत्तिका अनुभव कर रहे हैं।

थोड़े ही समयमें कुमुदसुन्दरीने यहाँके सबलोगोंके हृदयमें स्थान कर लिया। जैसे अलककिशोरीको आज्ञा देनेकी आदत थी, वैसेही कुमुदको आज्ञा-पालन करनेकी आदत थी। मन्त्रीके घरमें स्त्रियोंको कोई काम नहीं करना पड़ता था; इसलिये वाद्-विवाद्-की कोई शङ्का-ही-न थी। धनकी भी कमी न थी, कि जिससे किसी-को कोई इच्छा पूरी होनेमें कसर रहे। तिसपर अलकको नयी बहूके लानेका सम्मान मिला था। इसलिये उसका श्रृङ्गार करना, उसे सबसे मिलाना और अपने घरके रीति-रिवाज सिखाना आदि भी वही करती थी। सब बातोंमें सौभाग्यदेवीको केवल आज्ञा ली जाती, बुद्धिधनसे उस विषयकी चर्चामात्र की जाती और प्रमाद-धनकी केवल सम्मति माँगी जाती थी। नौकर लोग दोनोंका रुख देखकर ऐसी बातें करते, जो उन्हें कड़वी न लगें। इस घरके लोगोंका समय अबतक एक निर्दोष और नवीन आनन्दमें बीता था। कुमुदसुन्दरी अपने श्वशुरके घर अकेली आयी थी, पर उसके हृदयमें एक तसवीर खुदी हुई थी, जिसे वह किसी समय अपनेसे जुदा नहीं कर सकती थी। वह अकेलेमें सरस्वतीचन्द्रको यादकर रोती, पर सबके सामने अपने उत्साह-शून्य हृदयसे हँसती और सबके आनन्दमें सम्मिलित होती थी। वह प्रायःही चाहती थी, कि प्रमादधनके साथ हृदय मिले और अपने ईश्वरीय कर्त्तव्यको पूरा करे; किन्तु हृदय क्या किसीके समझानेसे समझा करता है? इतना होते हुए भी सृष्टि-प्रवाहके बल, नवीन

सृष्टिके अनुभव, ईश्वरकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेकी बुद्धि, परपुरुषके चिन्तनसे पातिव्रतधर्मके नाशके विचार—आदिके कारण बालिका कुमुदने अपने मनको बहुत कुछ उधरसे खींच लिया था और समयके प्रवाहमें पड़ चुकी थी। यद्यपि पुरानी बातोंको उसने बहुत कुछ भुला दिया था और उसके मुखपर प्रसन्नता विराजती रहती थी; तथापि यह प्रसन्नता सवेरेकी चांदनीके समान थी। गुणसुन्दरी उसकी बहुत खोज-पूछ करती रहती थी—यदि यह भी न होता, तो शायद उसका हृदय फटही जाता। प्रमादधन अपने सुखकी इच्छाओंमें लिप्त हो, आकाशमें उड़ता था। बाहरसे देखनेवालोंको यही मालूम होता था, कि कुमुदसुन्दरी सुखकी सीमापर पहुँच गयी है; पर उसके हृदयको देखनेवाला जीव इस संसारमें एक भी न था।

जिन संस्कारोंने उसके कोमल मनपर अपनी नींव जमायी थी, उन्हें श्वशुरके घर उन्नत करनेवाला कोई भी न था। प्रमादधन वास्तवमें प्रमादी था। बचपनमें वह पाठशालामें गया था सही, पर वहाँ बहुत थोड़ी पढ़ाई होते-होतेही उसकी उमर अधिक होगयी,—उसके साथी ऊँची श्रेणियोंमें जा पहुँचे और वह नीचेही पड़ा रहा। इसीसे चिढ़कर उसने सरस्वतीके सिरपर लात मार दी और विद्यासे मुँह फेर लिया। अवस्था बढ़नेपर उसने सोचा, कि विद्या केवल निर्धन मनुष्योंकी जीविकाका साधन है; यदि यह भी मान लिया जाये, कि विद्यामें किसी तरहका गुण है, तो पढ़े-लिखोंको नौकर रख लेनेसे यह कमी भी पूरी होसकती है। मास्टर और अध्यापकलोग विद्याके भाण्डार होते हैं और लोग उनका थोड़ा बहुत आदर भी करते हैं, पर कभी किसीने राजकार्यमें इन लोगोंकी सलाह नहीं ली। अँग्रेजी

भाषामें राजभाषाका महत्व होनेके सिवाय और कोई गुण नहीं है। संस्कृत भाषा शास्त्री और कथकड़ोंकी जीविकाका एक साधन-मात्र है। गणितशास्त्र, तत्वविद्या, वेदान्त आदि त्यागियों, संन्यासियों और साधन-रहित मनुष्योंके लिये व्यर्थ समय बितानेका साधन है। इसी प्रकारके विचार प्रमादधनको अपने पितासे मिले थे और पिताके योग्य पुत्रने अपने जीवन-को भी ऐसाही बना रखा था। उसके चारो ओर चापलूस लोग भरे रहते थे; उसके मुँहसे जो कुछ निकल जाता, उसे सर्वाङ्ग-सुन्दर बनानेके लिये वे खुशामदी टट्टू सदा तुले रहते थे। प्रमादधनको अनुभवके बाज़ारसे, आजतक एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिली थी। इस प्रकार प्रमादका प्रमादही प्यारा मित्र बन गया था; उसकी दृष्टिमें संसारकी सारी शक्तियाँ धनमें निवास करती थीं। वह आँखें मीचे हुए, समयके सागरमें बहा जाता था और सोचता था, कि मैं अपनी शक्तिसे चल रहा हूँ। कुछ राजकीय काम करनेके बाद, जो समय मिलता, उसमें वह अपनी मूर्ख मित्र-मण्डलीके साथ बैठकर परनिन्दा, आत्मस्तुति और स्त्रियोंके रूप-वर्णनमेंही समय बिता देता था। चटकीले-भड़कीले उपन्यासोंको पढ़नेका भी उसे पूरा शौक़ था; सैर-सपाटा करने और मनमें जो कुछ सूझ पड़े, उसे पूरा करनेमेंही वह अपनी बुद्धिका उपयोग समझता था और इसीको अपना भाग्योदय मानता था। इसके अतिरिक्त, उसका स्वभाव सुशील, आनन्दी और सन्तोषी था। वह अपने शुद्ध अन्तःकरणसे कुमुदसुन्दरीको सुखी रखना चाहता था और उसकी इच्छाएँ पूरी करना अपना पहला कर्तव्य समझता था। उसे अपनी स्त्रीकी सुन्दरता-का अभिमान था। वह उसकी विद्याकी बड़ाई करता

और उसके साथ अपना विवाह होना मणि-काञ्चनका मेल समझता था।

प्रमादधन, अलककिशोरी और मंत्रीके कुटुम्बके सभी व्यवहार, विद्याचतुरके घरेलू व्यवहारोंसे बिल्कुल भिन्न थे, यह कुमुदसुन्दरीको शीघ्रही मालूम होगया। दोनों परिवारोंके व्यवहार, विनोद और रीति-भाँतिमें बड़ा अन्तर था। उसने समझा था, कि यहाँके समान वहाँ भी पुस्तकोंसे आलमारियाँ भरी होंगी, इसीलिये वह अपने साथ एक भी पुस्तक नहीं लायी थी। इसलिये उसका जी बहलानेवाली एक भी चीज़ उसके पास न थी। सरस्वतीचन्द्रका लिखा हुआ एक पत्र उसके पास था, जो उसने विद्याचतुरको लिखा था। पर उसमें एकही पद्य था और वह सुनहरी रोशनाईसे लिखा गया था। अक्षर बहुतही सुन्दर थे, उसमें किसीका नाम न था, पर कुमुद उसके लेखकको जानती थी।

"शशी बिना प्रिय रम्य विभावरी,
बन गयी अति अन्ध वियोगसे;
"दिन भये सुभगा बन रे ग्रही!
कर प्रभाकरकी ममता नई"

इसे कुमुद किसीको न दिखाती थी और न अबतक उसने किसीको दिखायाही था। अपनी कंचुकीमें छिपाकर इसे वह सदा अपने हृदयपर रखती थी और एकान्तमें उसे निकालकर पढ़ती थी। यद्यपि पद्य उसे कण्ठस्थ था, फिर भी वह उन अक्षरोंको देख-देखकर प्रसन्न होती थी। काग़ज़को देखते हुए उसके मुखका भाव ऐसा हो [illegible] [illegible]तर दृष्टिसे किसीकी ओर देख रही है। अपने हृ[illegible] [illegible] मानो किसीको अनुभव कराना

चाहती है। साथही उसके सरस और शान्त नेत्रोंकी कोरसे दो-चार बूँद आँसू भी उसके गालोंपर पड़ते, उन्हें अपने कोमल हाथोंसे पोंछते हुए, वह अनन्त और शून्य आकाशकी ओर देखने लगती थी। हृदयके मार्मिक भावोंको न जाननेवाले लोगोंके बीचमें, वह सब कुछ गुप्त रखती थी और उन सबकी दृष्टिमें कुछ भी असाधारण न मालूम होता था। केवल चर्मचक्षुओंसे देखनेवाला यह कह सकता था, कि मंत्रिकुटुम्ब सर्वसुखी है।

हाँ, तो उसी अमात्य-कुटुम्बकी दोनों सुन्दरियाँ राजराजेश्वर महादेवके मन्दिरकी सीढ़ीपर चढ़ रही थीं। मन्दिरमें मूर्खदत्त पुजारीके सिवाय उन्हें देखनेवाला और कोई न था। इसलिये विशेष पर्देका ख़याल रखना अनुचित था। एकाएक देखनेवालों-को भ्रम हो सकता था, कि स्वर्गकी सुन्दरियाँ इस धराधामपर कहींसे उतर आयीं!

पुजारी जल्दीसे आटेके हाथ धोता हुआ और अपनी रेशमी धोतीको ठीक करता हुआ "पधारो, पधारो" कहकर मन्दिरके बीचवाले दरवाज़ेके पास आगया। फिर दोनों रमणियोंको जल और बेलपत्र देकर कहने लगा :—

"अन्नदाताकी आज्ञाके अनुसार मैंने सब तैयारी कर रखी है। पूजाकी सब सामग्रियाँ प्रस्तुत हैं; आज्ञा करतेही हाज़िर होजायेंगी।" उन सुन्दरियोंके पास खड़ा हुआ मूर्खदत्त ऐसा मालूम होरहा था, मानो पार्वतीके पास महादेवके गणोंमेंसे कोई भूत आखड़ा हुआ हो। वे सुन्दरियाँ कुछ उत्तर देनेकोही थीं, कि इसी समय बाहरसे एक सिपाही दौड़कर आया और कहने लगा,—"भगिनी! पिताजी आरहे हैं और उनके साथ शायद रायाली भी हैं।"

"अब हम पीछे जा सकती हैं या नहीं ?"

"नहीं, रास्तेमें सवारी और सिपाही आगये हैं। देखो, वह आगेका सवार दरवाज़ेपर आगया।"

तब जल्दीमें अलककिशोरीने पूछा "अब !" ऐसे समयमें प्राप्तकालज्ञ मनुष्यकी बुद्धिही काम देती है। पुजारीकी यही टेव थी। उसने मन्दिरके पीछेका दरवाज़ा खोलते-खोलते कहा,—"पधारो, बगीचेमें पधारो। राणाजी केवल दर्शन करने आते हैं, वे अधिक समयतक न ठहरेंगे और मैं दरवाज़ेमें ताला लगा दूँगा ; फिर पीछेसे खोल दूँगा।" पुजारी नवीनचन्द्रको एकदम भूल गया।

दोनों सुन्दरियाँ झटपट पुजारीके पीछे होलीं। कुमुदकी ओर देखकर अलकने कहा,—"घण्टे दो घण्टेकी क़ैद होगी। राणाजी कुछ दर्शन करतेही तो लौट नहीं जायँगे ? उन्हें यहाँ देर लगेगीही। इस समय आकर हमने बड़ी भूल की। पर, ख़ैर।"

कुमुदने अपनी ननदकी ओर देखकर इस बातकी सत्यता स्वीकार की। फिर सहसा उदास भावसे उसका मनोहर मुख-कमल नीचा होगया और वह नीची दृष्टि करके आगे बढ़ी।

अनन्तर दोनों जनी कोठरीके दरवाज़ेमें घुसीं, पीछेसे पुजारीने झट दरवाजा बन्द कर दिया और साँकल चढ़ाकर ताला लगा दिया।



तीसरा परिच्छेद।

बुद्धिधन।

राजेश्वर महादेवका मन्दिर सुवर्णपुरसे प्रायः तीन मील दूर था। इसीलिये इस ओर लोगोंका आना-जाना बहुतही कम होता था। प्रायः धनिकोंके सैर-सपाटेका, और कभी-कभी राजकर्मचारियोंकी गुप्त मंत्रणाका भी यह लीला-क्षेत्र बन जाता था। पुजारीकी आमद इससे बहुत थी। उसे सब प्रकारके अतिथियोंके स्वागतका ढंग मालूम होगया था और अवसर-पर सब प्रकारकी अनुकूलताके उपाय भी उसे सूझ जाते थे। आनेवाले उसे पहलेसेही सूचनाएँ देते थे, इसलिये एक दूसरेके समयमें आकर उन्हें अपने आनन्दका कुछ भाग खोना नहीं पड़ता था। पर जिस समयकी बात लिखी जारही है, उस समयके आनेवाले व्यक्ति साधारण न थे। उनके प्रबल प्रताप और दबदबेसे संकेतका लक्षण नहीं दीखता था।

"घणी खमा महाराज!" इस पुकारके साथ स्वर्णपुरके स्वामी अपने मंत्री, बुद्धिधनके साथ पधारे। सुनहले सलमोंके बेल-बूटेवाला गुदगुदा ग़लीचा बिछाकर नौकर चले गये। पुजारी मूर्खदत्त तीन बार ज़मीनपर लोटकर लम्बी डण्डौत करके

अपने रसोईघरमें चला गया। मन्दिरमें अकेले राना और मन्त्री रह गये। अब हम अपने पाठकोंको इनका पूरा परिचय दिये देते हैं।

राणाजीकी अवस्था तीस या अड़तीस वर्षकी थी। पिछले राणाजीके स्वर्गवासी होनेके बाद उनके कोई सन्तान न होनेसे कई राजकर्मचारियोंने बहुतोंको राज्यका हक़दार ठहराया, पर उनमें मतभेद होजानेके कारण सरकारी रेज़ीडेण्टको ओरसे अपना हक अच्छी तरह साबित करनेके कारण, भूपसिंह चार वर्षसे राज्यके स्वामी बने थे। ये एक साधारण परिवारमें पैदा हुए थे, इनके सभी संस्कार साधारण श्रेणीके थे और बचपनमें राजा बननेकी बू भी इन्हें न लगी थी; इसलिये साधारण-बुद्धि नष्ट न हुई थी। इन्होंने दरिद्रावस्थाका स्वयं अनुभव किया था, इसलिये वैसी उदारता न थी, पर दरिद्रोंके साथ सहानुभूति अवश्य थी। राजगद्दी पानेके लिये, इन्हें राजकर्मचारियों, मुत्सद्दियों और सिपाहियोंतकसे काम पड़ चुका था। साधारण मनुष्योंको उनके पास जाकर कैसी विनती करनी पड़ती है, घूँस देनी पड़ती है और बहुत बार उनकी जली कटी बातें सुनकर सिर झुका लेना पड़ता है—इसे ये अच्छी तरह जानते थे। उन्हें स्वयं कचहरीमें धक्के खाने पड़े थे, एक अदने-से-अदना कचहरीके चपरासीको घूँस देनी पड़ी थी, स्वयं राजपरिवारवाले ऊपरसे दिखानेके लिये कैसे मीठे-मीठे शब्द कहकर भीतरसे कपटका जाल फैलाते हैं, इसे ये स्वयं देख चुके थे—जब ये राज्याधिकारी हुए, तब इन्होंने इस अनुभवसे लाभ उठानेकी बात सोची। ये राज्य चलानेवालोंमेंसे बहुतोंको जानते और पहचानते थे। उस समय जिन लोगोंने उनके पक्षका विरोध

किया था, उन्हें ये अच्छी तरह पहचानते थे। राजधर्म और राजस्वभावका इन्हें अधिक ज्ञान न था, इसे ये भी स्वीकार करते थे। पुराने मन्त्रीके बुद्धिकौशल और उचित दलीलोंसे भूपसिंहका मन बहुत कुछ बदल गया था, और बिना हवावाली जगहमें पड़ी हुई आग जैसे बुझती जाती है, वैसेही राजाका विलासको और झुकना देखकर पुराना कर्मचारी-मण्डल बहुत कुछ निश्चिन्त हो चुका था।

अधिकारोंके ध्यानमें, स्वार्थकी जड़तामें, उन्माद-रूपी विष-की लहरमें, दुनियाकी तड़क-भड़कमें और नित्यके व्यवहार-जालमें डूबता हुआ, सारा राज्यमण्डल सो रहा था—मूर्च्छित हो रहा था। इस प्रकार जब नयी बातें पुरानी होती जाती थीं, तब एक बुद्धिधनही ऐसा था, जो सचेत रहकर नया खेल रचा करता था। जिस समय घोर रात्रिमें सब अचेत हो जाते थे, उस समय सुवर्णपुरके राज्यका यह नेता, बीमारके पास वैद्यके समान जागा करता था। सिंह जैसे शिकारपर घात लगाये देखा करता है, कि वह क़ाबूसे बाहर न होजाये, वैसेही सुवर्णपुरका मंत्री भी हर समय जागता रहता था। उसका समस्त आनन्द, चिन्ता और विचारमें लीन होगया था, उसकी आँखें प्रत्येक राजकार्यपर लगी रहती थीं और उसके इस महायोगको देखनेकी शक्ति मनुष्योंके चर्मचक्षुओंमें न थी। वह सदा सोचा करता था, कि सुवर्णपुरका राज्य और राजा मेरे हाथके खिलौने किस प्रकार बन सकते हैं? यह राज्य मेरे लिये कामधेनु कैसे बन सकता है?—यही चिन्ता उसे रात-दिन जाग्रत रखती थी।

बुद्धिधनकी चार-पाँच पीढ़ीसे सुवर्णपुर-राज्यकी नौकरी

चली आती थी। यदि नौकरी चली भी जाती, तो थोड़ा बहुत सिलसिला ऐसा रखा जाता था, जिससे राज-दरबारमें उनका आना-जाना बना रहे,—यही इस कुटुम्बकी नीति थी। इसी प्रकार भाग्यचक्रकी लहरोंमें कभी वे ऊपरवाली सीढ़ीपर खड़े होजाते थे, और कभी नीचेवालीपर। बुद्धिधनको अपने पिताकी सम्पत्तिमें उच्च कुलीनता, वंशकी मान-मर्यादा, बुद्धिका व्यापार आदिही मिला था। उसकी माता सरल, बुद्धिमती और समयको परखनेवाली थी। उसकी व्यवहार-कुशलता इतनी उत्तम थी, कि वह दरिद्रता और धनाढ्यता दोनोंमें समान रीतिसे काम कर सकती थी। वास्तवमें, बुद्धिधनको जो कुछ मिला था, वह अपनी मातासेही मिला था। यह कुटुम्ब उस दिनका स्वागत करनेके लिये तैयार था, जब उसका फल मिलता। अपने बेटेके पास बैठकर माता समझाती थी, कि एक दिन रामराय किस प्रकार इस राज्यके मन्त्री बने थे, लक्ष्मीचन्द्रने किस प्रकार छुटपनसेही रानीकी कृपा प्राप्त की थी, राणा सुन्दरसिंहजीके समयमें कृष्णदासने किस प्रकार अतुल धन-सम्पत्ति एकत्रित की थी, उसके कारण इस कुटुम्बका कैसा गौरव बढ़ा और बस्ती तथा आस-पासके लोग किस प्रकार उनका मुख देखकर काम करते थे। बालक बुद्धिधन इन सब बातोंको बिना कुछ कहे-सुने एकाग्र चित्तसे सुना करता था। यद्यपि माता पढ़ी-लिखी नथी, पर उसकी स्वाभाविक वर्णन-शैली बड़ी आकर्षक, सरस और संस्कारोंसे भरी होती थी। स्त्री-हृदयकी कोमलता और बुद्धि उसमें पायी जाती थी। वे सुन्दर और सरस अलङ्कार उसके हृदयमें अज्ञात अवस्थामें बैठ जाते थे। माताके मस्तिष्ककी कल्पनाशक्ति और हृदयकी इच्छा बालकके मस्तिष्क

और हृदयमें नदीके समान निरन्तर बहा करती थी। पिता अपने कुटुम्बके पुराने समयकी बड़ी-बड़ी बातें सुनाता और आजकलके उन मनुष्योंको धिक्कारता, जो छोटी अवस्थाले बड़े बने हैं, परमात्माने जिन्हें सातवें आस्मानपर चढ़ा दिया है, उन्हें वह तुच्छ दृष्टिसे देखता। इसी प्रकारके संस्कार बालक बुद्धिधनको अपने माता-पितासे मिले थे और उसने पक्का निश्चय कर लिया था, कि मैं अपनी योग्यतासे बड़े पदपर पहुँचकर विधाताकी वह भूल ठीक कर दूँगा।

इस प्रकार जन्मसेही मन्त्रीके संस्कारोंवाला बालक, पढ़नेके लिये पाठशाला गया ; पर उसके बहुत दिन योंही बीत गये ; क्योंकि उसे पढ़नेका कोई प्रयोजन न मालूम हुआ। अन्तमें पढ़नेका उद्देश उसकी समझमें इस प्रकार आया, कि पढ़नेसे लोग प्रतिष्ठा करते हैं और यह विद्या कामकाजी आदमियोंके कामकी है। माताका कहना था, कि पढ़नेसे बुद्धि बढ़ती है और इस मतके विरुद्ध उसने कभी एक शब्द भी नहीं कहा था ; पर वह समझता था, कि माताका यह मत निर्मूल है। इसी ढँगसे वह कुछ पढ़ा और जब उसे कुछ अवकाश मिलता, तभी इस बातपर वह बहुत ध्यान देता था, कि पण्डितजी पाठशालाका प्रबन्ध कैसे करते हैं? लड़कोंके माँ-बापोंको कैसे प्रसन्न रखते हैं? कपट और मूर्ख लड़कोंके साथ कैसा सिर खपाते हैं और पण्डितजीके चले जानेपर लड़के उनकी नक़ल कैसे करते हैं? यही सब देखकर, वह बुद्धि-सञ्चय कर रहा था। पहले वह समझता था, कि संसारमें दोही अक्लमन्द हैं—उनमें पहला नम्बर उसकी माताका है और दूसरा पण्डितजीका ; पर ज्यों-ज्यों उसका अनुभव बढ़ता गया, त्यों-त्यों पण्डितजीका नम्बर नीचे उतरता गया।

धीरे-धीरे उसकी नज़रमें पण्डितजी महामूर्ख और गँवार मालूम होने लगे। अन्तमें अपनी विद्या, बुद्धि और धनसे उन्हें सन्तुष्ट कर इस बुद्धिमान् विद्यार्थीने पाठशाला छोड़ी; उसकी दृढ़ धारणा होगयी, कि पढ़े-लिखे आदमी पण्डितजीके समानही बन सकते हैं। इस प्रकार नियम बाँधता और उन्हें आज़माता हुआ यह चतुर साहसी, अपने कर्म-पथपर आगे बढ़ा।

पाठशाला छोड़नेके बाद, संसारशालामें पास होनेके लिये उसे जो श्रम करना पड़ा, उसमें इसके बहुतसे विचार बदले। छुटपनमें जो एकदम बड़े बननेकी प्रबल अभिलाषा ज़ोरसे बह रही थी, वह अब मन्द पड़ गयी; एक-एक पगपर [illegible] चिन्तापर चिन्ता, निराशापर निराशा दिखाई देने लगी! [illegible] अपना भाग्य अदृष्टके हाथमें सौंपा और संसार-सागरमें [illegible] तुम्बेकी सहायताके तैरनेके लिये कूद पड़ा। अनेक बार [illegible] कही हुई अनुभवकी बातें, उसके सामनेसे प्रत्यक्ष बनकर [illegible] गयीं और कितनीही बार उसे मातासे कहना पड़ता [illegible] कि "मा! तू जो बातें पहले कहा करती थी, उन्हें फिर कह [illegible] उसे माताकी सूचनाएँ सच मालूम होती थीं और वह [illegible] बुद्धिकी थाह पाता जाता था। चढ़ती अवस्थावाले पुत्रमें माता को बाहरी ज्ञानका सञ्चार मालूम होरहा था और वृद्ध पिता उसका संसार-प्रवेश देख रहे थे। पक्षीका बच्चा अब अपने माता पिताकी सहायताके बिना उड़ने लगा। बुद्धिधनमें भी यह धुन जाग उठी थी, कि वृद्धके कठिन अनुभवका एक बिन्दु-विसर्ग व्यर्थ न जाये, उनकी धार्मिक अनुमोदना, व्यवहार और स्वार्थ आदिपर उसने पूरी तरहसे अमल किया था। इस प्र[illegible] संसारके व्यवहारमें रमणीयता और सुगन्ध आने लगी।

अब बुद्धिधनको इस बातकी आवश्यकता पड़ी, कि वह संसारके किस मार्गका अनुसरण करे और अपनी जीवन-नौका किस अनुकूल या प्रतिकूल वायुमें छोड़ दे। वृद्ध पिताके जीवनकी आशा ऊंची थी। वह चाहता था, कि मैं अपने युवा पुत्रका राणाजीसे किसी प्रकार मेल करा दूं; जिससे इसका जीवन सफल होसके। माताकी इच्छा थी, कि अपने भाईके ज़रियेसे वह कुछ सिफ़ारिश करे और अपने कुटुम्बी जनोंसे अपने पुत्रको ऊँची जगह दिलानेकी कोशिश कराये। इसी प्रकारकी अपनी न्यारी-न्यारी चिन्ताका प्रवाह बह रहा था। बुद्धिधन सब कुछ जानता और चाहता था, कि माता-पिताकी इच्छा पूरी हो, और मार्ग अपनी इच्छाके अनुसार मिले। सर्वसाधनभूता लक्ष्मीको खींच लाना सबका उद्देश्य था, पर उसे किस कुएँसे खींच लाना चाहिये—इसमें मतभेद था। "राजद्वारे महालक्ष्मीर्व्यापारे वसति तथा" लक्ष्मी या तो राजकार्यमें मिल सकती है या व्यापारमें। पर व्यापारमें कितनी चिन्ता, कितनी आपत्ति और कितना दुःख है! इसलिये संसार-सागरके इस नये तैराकने राज्यलक्ष्मीको अपनानाही अच्छा समझा। अब यह चिन्ता होने लगी, कि इस कामको किस प्रकार पूरा करूं? सबसे पहले तो राज्यमें यदि छोटीसी नौकरी मिले, तो उससे कुटुम्बका भरण-पोषण भी नहीं हो सकता, अधिकारियोंकी बड़ी ठोकरें सहनी पड़ती हैं, वे लोग अपने भरसक उन्नति नहीं होने देते—इस प्रकार प्रतिष्ठाका द्वार भी बन्द हो जाता है। इधर व्यापारमें कठिनाई है, इधर नौकरीमें ये अड़चनें। इस प्रकार सन्देहके झूलेपर चढ़कर बुद्धिधने रात-दिन, भीतर-बाहर, सोते-जागते, खाते-पीते, माता-पिताके

पास, एकान्तमें शून्य हृदय और शून्य मनसे चिन्ता किया करता था। अकेला बैठकर हज़ारों तरहके तर्क मन-ही-मन किया करता था; हज़ारों मनुष्य अपना निर्वाह कैसे कर रहे हैं, इसका पता लगाता; उन्हें जीविकाका साधन पहले कैसे मिला? इन बातोंको पूछता और फिर सोचता, कि ये रास्ते मेरे लिये खुले हैं या नहीं? पहला मार्ग अरुचिकर है; दूसरा भी निर्भय नहीं और तीसरेसे कोई करोड़पति नहीं बन सकता। चौथेमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ हैं। इस प्रकार भीतर-बाहर, सोते-जागते, सोचते-विचारते वह विचारोंकीही हवामें उड़ जाता था। इन विचारोंका न आदि था और अन्त। क्या होगा? इसका उसे ज़रा भी ज्ञान नहीं था। कभी-कभी वह एकान्तमें अपने विचारोंपर हँसता था। अन्तमें उसने नौकरी खोजनेका पक्का निश्चय किया और कौन-कौन नौकरी अपने योग्य है और कौन किसके द्वारा मिल सकती है—इसकी खोज की। जिस समय पुत्रके मनमें इन सब तूफानोंका बवंडर उठता था, उस समय माता-पिता समझ जाते थे और पूछते थे, "क्यों भाई! क्या करना है?" पर उत्तर कुछ सन्तोषजनक नहीं मिलता था।

किन्तु इस समय बुद्धिधनको यदि कोई बाहरी दृष्टिसे देखता, तो उसे वह परम आनन्दमय प्रतीत होता। वह कुछ-कुछ सोचता था और माता उसे साहस देती थी। पढ़नेका कोई नियत समय नहीं था, पर मौलवी साहबसे मुलाक़ात थी और उनके घरपर जाकर वह फारसीके शेर और नशर ज़बानी याद करता था और उनका मतलब समझकर बगुलेकी तरह बुद्धिमान् बननेकी चेष्टा करता था। पुराणों और शास्त्रोंकी कथा सुनकर उसकी वृत्तियोंमें शान्ति आगयी थी। ब्रह्मज्ञान

और तर्कशास्त्रकी बारीक दलीलोंसे उसकी बुद्धि बहुत कुछ चमक उठी थी। वह अवकाशके समय बूढ़े और अनुभवी मनुष्योंके साथ बातें करता था। वे लोग अपनी जवानीके समयके पराक्रमको बखानते, उस समयके जाल-फ़रेब, हार-जीत और युक्ति-उक्तिकी कथाएँ सुनाते। किसीने राजकार्य किया था, किसीने व्यापार किया था, किसीने वेश्या-गमनमें जवानी बितायी थी, किसीने बेवक़ूफ़ोसे भारी धोका खाया था, किसीने आलस्यके कारण जो कुछ होरहा था, उसे होने दिया था, कोई-कोई दोके बीचमें पड़नेसे मारा गया—आदि अनुभवकी बातें किसी समय बिना कहे, किसी समय पूछनेपर और किसी समय कुछ बड़ाई कर देनेपर, सुननेमें आतीं और उनके सिद्धान्त बुद्धिधनके हृदयमें लिखसे जाते थे। दूसरोंके उदाहरण देकर, कथा कह कर और उसका फल दिखाते हुए, माता समय-समयपर पुत्रका चित्त प्रसन्न करती, सिखाती और बताती, कि 'इसका परिणाम यह हुआ।' ये सब बातें बुद्धिधनके हृदयमें बैठ जातीं और वज्रलेपके समान अटल होजातीं। ब्रह्मके समान इस मायाविनी सृष्टिका निर्गुण और निष्कर्म साक्षी, बुद्धिधनका पिता, यह सब कुछ देखता और इस आनन्दमें गुप्तरीतिसे भाग लेता था। दतोन करते समय, भोजन करते समय, शय्यापर लेटते समय, गरमियोंकी चाँदनी रातमें बातें करते समय और चौमासेकी अन्धेरी रातमें घोर घटाके गर्जते समय, इस मंत्रिकुटुम्बमें संसारशालाकी पुस्तकका अध्ययन हुआ करता था। स्त्रियोंकी कोमलता, प्रतिभा, स्नेह, रसिकता और मार्मिकताकी लहरें स्त्री-बुद्धिकी निन्दा करनेवालेके हृदयमें निरन्तर घुसी जा रही थीं। और नदीके किनारे, प्रातःकालका कमलस्पर्शी पवन जैसा आनन्द देता

है, वैसाही आनन्द उस हृदयमें भी होता था। गद्य, पद्य, कथा, प्रसंग आदि सब उस प्रासंगिक पाचनके साथ पच जाते थे।

बुद्धिधनके पिता अपना पैत्रिक वार्षिक उत्सव हरसाल मनाते थे। यद्यपि इसमें रुपया विशेष ख़र्च होता था, पर इस दशामें भी वह मन्त्रिकुटुम्बकी भूत दशाको सबकी आँखोंके सामने ला देता था। इसके अलावा, इस कुटुम्बके पूर्वजोंने कुछ गाँव और ज़मीन आदि अपने हाथ कर ली थी, उसीकी आमदसे यह कुटुम्ब अपना निर्वाह करता था। यदि राजसत्ता हो, तो धन होते देर नहीं लग सकती; पर वह सत्ता तो गुज़रे हुए ज़मानेका सपना थी और इस समय उसकी आशा भी नहीं थी। धनसे धन पैदा होता है। पर यह कुटुम्ब धनहीन था और ख़र्च बहुत किफ़ायतसे किया जाता था, किस जगह ख़र्च करना और किस जगह नहीं—इसका उन लोगोंको अच्छा ज्ञान था। रुपया ख़र्च करके आनन्द मनाना व्यर्थ समझा जाता था और, माता-पिता तथा घरवाले एक जगह बैठकर जो आनन्दसे बातें करते थे, वही मानों एकमात्र विनोद था।

बुद्धिधनका विवाह एक समान अवस्थावाले घरानेमेंही हुआ था और बहूके छोटी होनेके कारण उसकी सम्पूर्ण शिक्षा चतुर सासके हाथसे हुई थी; अतएव वह गृहस्थीके कामोंमें कुशल होगयी थी। इसी प्रकार उस निर्धन मन्त्रिकुटुम्बके दिन सुखसे बीतते थे।

समय बीतता चला जाता था; पर उन्मत्त संसारकी कोई भी आँख उस कुटुम्बकी ओर नहीं देखती थी। बिना सूरजकी रोशनी पाये एक बढ़ते हुए पौदेकी जो दशा होती है, वही दशा बुद्धिधनकी भी हुई। ऐसी विपत्तिका ताप कभी उसपर न पड़ा

था। बढ़े धननेके सिवाय उसके मनमें और कोई इच्छा न थी, और यह इच्छा जीर्णज्वरके समान सदा उसके साथ लगी रहती थी। इस इच्छाके अस्तित्वको कोई न जानता था; केवल उसे एकान्तमें इसका अनुभव होता था।

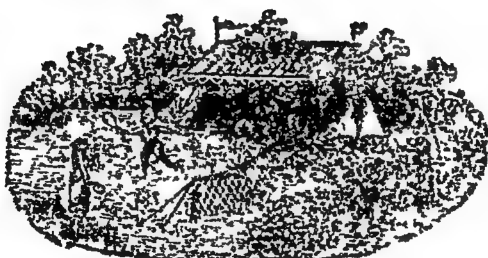
यह अवस्था भी स्थायी न रही, छोटे-छोटे विपत्तिके बादल चारों ओरसे घिर आये। अचानक हैज़ेसे पिताकी मृत्यु होगयी। ऐसी दुर्घटनाको बुद्धिधनने कभी सोचा भी न था—इसीलिये इस असीम दुःखसे वह विलख उठा और उसका बलवान् मन कुछ समयके लिये निर्बल होगया। उसके स्वभावके अनुसार समानशीलवाले किसी मित्रका मिलना कठिन था। धनी लोग निर्धनोंसे मित्रता करना नहीं चाहते; हाँ, वे उनसे खुशामदकी आशा रखते हैं। ग़रीब लोगोंमें कुलीनताके संस्कार नहीं मिलते और यदि किसीमें मिलते हों, तो उसमें बुद्धिका अभाव पाया जाता है। इसलिये ऐसे कठिन समयमें भी बुद्धिधनको बिना मित्रकेही रहना पड़ा। उसे कुछ-कुछ धैर्य्य मातासे मिलता था, पर इस समय वह वैधव्य-दुःखसे कातर थी; अतएव अपने आपको सम्हालनेका काम बुद्धिधनकोही करना पड़ा।

इतनेसेही विपत्तिका झोंका पूरा न हुआ,—

> जीवितो वाक्यकरणात् मृताहे भूरिभोजनात्।
> गयायां पिण्डदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥

ब्राह्मण-संस्कारवाले पुत्रके लिये यह श्लोक बहुतही अच्छा और बढ़ाही सुन्दर जान पड़ता था। अच्छे पुत्रकी पितृभक्ति और धर्मनिष्ठा इसीसे प्रकट होती है। बुद्धिधनकी भी यही इच्छा थी, कि अपने पिताकी इच्छाके अनुसारही काम किया

जाये। अतः उसने इधर-उधरसे कुछ रुपया इकट्ठा कर शास्त्रोक्त रीतिसे अपने पुत्र-धर्मका पालन किया। कुल्हाड़ीसे छीलनेपर चन्दनके वृक्षकी जो दशा होती है, बुद्धिधनकी भी ठीक वही दशा हुई। उसके चारों ओर जो छोटी-मोटी विपत्तियाँ एकत्रित होगयी थीं, उन्हें वारी-बारीसे ठेलता हुआ वह संसार-सुखका द्वार खोलनेके लिये आगे बढ़ने लगा। इस प्रकार विपत्तियोंके बीचमें वह अकेलाही अपना पराक्रम दिखाता जाता था।



चौथा परिच्छेद

बुद्धिधन (अनुसन्धान)

सौभाग्यदेवी छोटी अवस्थामेंही पतिके घर आयी थी। उसको शिक्षा और अनुभव-वृद्धि पतिगृहमेंही हुई थी। श्वशुरका स्वर्गवास हो जानेपर, सासने गृहस्थीके कामसे हाथ खींच लिया; इसलिये घरका सब भार बहूपरही आ पड़ा। किन्तु सास एक ओर बैठकर भी गृहस्थीसे निश्चिन्त न हुई; बल्कि बैठे-बैठे बहूको प्रत्येक कामकी आज्ञा देनाही अब उसका काम रह गया। अब बहूकोभी सासकी आज्ञासे घरका प्रत्येक काम करना पड़ता था। उस समयतक उसे सबके सामने बुद्धिधनसे बोलने-चालनेका अवसर न मिलता था; पर कभी-कभी डरते-डरते छिपकर, कुछ कहने या सुननेका अवसर पा जाती थी। जब किशोर अवस्था आ पहुँची, तब उन लजीली आँखोंमें मुग्धताका सञ्चार होने लगा। नया गा हुआ अङ्कुर, निर्मल वायुमें लहराकर हृदयमें एक अलक्षित गाका मधुर राग सुनाजाता था। उमङ्गमें भरे हुए कमलकी यों चटखनाही चाहती थीं। कोई बात मुँहतक आती थी, पर से आँखें झुक जाती थीं। लाज डर और दूसरोंके जान जाने

आदिकी बड़ी विपत्तियाँ थीं, फिर भी एक मोहक निद्रा दोनोंकी आँखोंमें छा रही थी। वे बहुत प्यार इस निद्रामें लीन होकर बाहरी जगत्की चेतनताको भूल जाते थे और काममें मन लगाकर इसकी सुध विसार देते थे। कोमल और चञ्चल मनोवृत्तियोंका स्वभावही है, कि जिस समय वे इस ओर झुकती हैं, उस समय उन्हें दीन-दुनियाँकी ख़बर नहीं रहती और जब अपने कर्तव्यकार्यमें मग्न होती हैं, तब उन्हें इस ओरकीयाद तक नहीं आती। ऐसेही सरल प्रेमके बन्धनमें दो प्राणोंका ऐक्य हो रहा था, जैसे अमावास्याकी काली रात्रिमें, अपनी सलमे-सितारोंसे जड़ी हुई काली साड़ी पहने प्रकृतिदेवी महापुरुषके गलेका हार हो रहती है, जैसे सम्पूर्ण विश्वके निस्तब्ध होजानेपर भी उनके प्रेमका सोता आकाश-गङ्गा के रूपमें बहता रहता है, वैसेही इन प्रेमियोंका प्रेम भी घनिष्ठ होता जाता था। संसारमें ऐसे बहुत कम स्थान देखे गये हैं, जहाँ सुख-दुःखकी चादरें एकही रंगसे न रँगी गयी हों। विपत्तिके बादलोंके गर्जनसे कड़ा बनता हुआ बुद्धिधनका हृदय दूसरी ओर सरल, किन्तु प्रकृत प्रेमसे कोमल भी बन रहा था। गम्भीरताके द्वारा दृढ़ बनते हुए स्वभावके अन्तर्भागमें विलास और प्रेमकी बेल लहराती थी, किन्तु सम्पूर्ण संसार उससे अनजान था।

एक दिन चाँदनीमें बैठकर सास-बहू बातें कर रही थीं और बीती बातोंको याद कर बीच-बीचमें लम्बी-लम्बी साँसें भी लेती जाती थीं। बातें करते-करते सासका जी भर आया, अतीत कालकी सुन्दर छवि और सुखकी वे भोली-भाली मूर्तियाँ उसकी आँखोंके सामने नाचने लगीं। उसने बहूको वहाँसे टालनेके इरादेसे कहा,—"बहू, ज़रा पानी पिलायेगी?" सुनतेही बहू पानी लाने

चली गयी। घरके दूसरे हिस्सेमें आकर घड़ेसे गिलासमें पानी ढाला। वहाँ, बैठा हुआ बुद्धिधन उस समय अपने भविष्यके विचारोंमें लीन हो रहा था, घड़ेमें गिलासके लगनेसे उसकी विचार-माला बिखर गयी और दृष्टि सौभाग्यदेवीके खुले हुए मुखड़ेपर जा पड़ी। चञ्चल, सरल और सलज्ज नेत्रोंकी लुनाई देख कर बुद्धिधनकी दृष्टि उस ओरसे हटाये न हटी। धीरे-धीरे उसके कपड़ोंसे ढके हुए अङ्गोंकी सुन्दरता भी उसके सामने तिमान् हो खड़ी होगयी। पानी ढालते-ढालते सौभाग्यदेवीकी सरल दृष्टि भी उसी ओर जालगी; नज़रें चार हुई और थोड़ी देरके लिये संसार-का बाह्य व्यापार स्तब्ध होगया। बहू सासको पानी पिलानेकी बात भूल गयी।

इधर बहूके जानेपर सासकी दोनों आँखोंसे आँसू बरसने लगे। कुछ देर रो लेनेके बाद मनका वेग रुका—आँसू पोंछे। अब सोचा, बहूको गये तो देर हुई, पर अभी वह आयी क्यों नहीं? यह सोच, अपनी बैठक छोड़कर सास ऊपरवाले हिस्सेमें आयी। "मेरी आशाओंकी पुतली! अँधेरे घरका उजाला! मेरे घरकी लक्ष्मी! तू अवश्य सुखी होगी"—यही सोचती हुई सास आगे बढ़ी, पर आगे बढ़कर उसने बेटे और बहूको मुग्ध दृष्टिसे एक दूसरेकी ओर देखते हुए पाया! बस, उसी समय उलटे पाँव लौट गयी। पर इस आपत्तिकी मारीने सोचा, कि शायद जो कुछ मैंने देखा है, वह सच नहीं है, अतएव अपनी दिल-जमई करनेके लिये, वह कौतुकसे छिपकर देखने लगी। दुखियारीके आँसू उस सौभाग्य-सुखको देखकर सूख गये। छातीपर हाथ रख-कर वृद्ध माता वह दृश्य देखने लगी, जो उसे नहीं देखना चाहिये था; पर मन-ही-मन वह ईश्वरका आभार भी मान रही थी।

बुद्धिधनने सोचा, कि पानी लेकर सौभाग्यदेवी अभी लौट जायेगी, इसीलिये वह प्यासी दृष्टिसे उसकी कमनीयता देख रहा था; पर देखते-देखते उसे वे आँखें आँसुओंसे भरी हुई मालूम हुईं। अब उसका शरीर एक मन्त्रमुग्ध शक्तिसे उठकर सौभाग्यके पास चला गया। हाथसे गिलास छुड़ाकर उसने कहा,—"क्यों, क्या हुआ है ?" यह प्रश्न कई बार किया गया, पर नीची दृष्टि-से आँसू गिरानेके सिवा उसे कुछ उत्तर न मिला। यह देख, बुद्धिधन उसे अपनी छातीसे लगाकर वह उसकी कमरपर हाथ फेरने लगा।

माताने सोचा, कि मैंने अपने धर्मके विरुद्ध कार्य किया है,—यह सोचतेही वह झटपट अपनी बैठकमें चली गयी और उसके मनमें बार-बार यह बात उठने लगी, कि जो मुझे नहीं देखना चाहिये था, मैंने वही आज देखा !

अब मानो सौभाग्यको चेत हुआ। "कुछ नहीं"—कहती हुई वह पतिके आलिङ्गनसे अपनेको छुड़ाकर गिलास लिये हुए सासके पास पहुँची। इस बातको कुछ भी न समझ सकनेके कारण, बुद्धिधन आश्चर्यसे अपनी जगह जा बैठा। यह पहला-ही दिन था, जब दोनोंके हृदयोंमें एक नवीन विकारका संचार उठता हुआ जान पड़ा। विस्मित बुद्धिधन फिर अपने उन्हीं विचारोंमे लीन हो रहा।

माताने सोचा, "यद्यपि इन दोनोंकी मँगनी हुए, बहुत दिन हो गये, विवाह होनेवालाही था, कि 'उनकी' मृत्यु हो गयी, पर अब भलाई इसीमें है, कि दोनोंकी शादी कर दी जाये। यदि पतिकी मृत्युको साल नहीं लगा, तो न सही।" इस विचारके उठतेही उसके मनमें आर्य-माताओंकी विशुद्ध सन्तान-

वत्सलता जागृत होगयी। यद्यपि पतिकी मृत्युको पूरा वर्षभर न होनेके कारण, लोगोंको ज़रा कटूक्ति करनेका अवसर मिलेगा, पर दोनोंके हृदयकी जो गति है, वह इस बातको थोड़े मानेगी? अन्तःकरणका विवाह मनुष्योंके कृत्रिम विवाहकी बाट नहीं जोहता—इसे बुद्धिमती माता भलीभांति समझती थी। विवाह होनेमें एक रुकावट और थी। पतिके क्रियाकर्ममें बहुत कुछ खर्च हो गया था, इसलिये अभी विवाह करना केवल दरिद्रता-को नेवता देना था; तथापि माताकी आँखोंने यह सब कुछ नहीं देखा। पर बुद्धिधन दूरन्देशी था। वह सोचता था, यदि मैंने कर्ज़ लेकर विवाह किया, तो बैठे-बैठाये आफ़त आजायेगी। अबतक तो ज़मीनकी आयसे घरका काम चलता था, पर अब उसका बहुत हिस्सा महाजनके घर जाने लगा है। किन्तु घरमें माता और स्त्रीसे ऐसी बातें करना, उन्हें व्यर्थ चिन्तामें डालना था। स्त्रियोंमें डर पैदा करना एक नये दुःखके समान था।

इन चिन्ताओंसे बुद्धिधनका शरीर दिन-दिन क्षीण होने लगा, मुखकी वह स्निग्ध कान्ति उड़ गयी, शरीर पीला पड़ गया और जवानीमें बुढ़ापेके सारे लक्षण दीखने लगे। घोर अन्धेरी रातमें भी एकही चिराग़ दीखता था। दिन भर इधर-उधर घूमनेके बाद शामको मासे बातें होती थीं और उस समय सौभाग्यदेवीकी भी एक दो बात सुनाई दे जाती थी। फिर एकान्तमें सौभाग्य-देवीकी प्रेमभरी मधुर वाणी और मुग्धविलासामृतका अनुभव करते हुए दुःखी मनुष्यको थोड़ी देरके लिये सुखका अनुभव हो जाता था और संसारके व्यापारसे थका हुआ मन, जागती नींदमें आनन्दका सपना देखा करता था। यह सत्य है, कि कुटुम्बका सच्चा सुख निर्धनतामेंही भलीभाँति भोगा जा सकता है।

पर यह सपना भी चिन्ताको न मारता था ; घरेलू सुख चिन्ताकी ओषधि न कर सका। बुद्धिधनको कभी-कभी ज्वर हो जाता था। उसकी कुछ परवा न करनेसे उसे जीर्णज्वर हो गया। अन्तमें वह इस विषैली व्याधिका शिकार बनकर खाटका मिहमान बना। चिन्ताके दुःखपर दवाका असर नहीं होता था। बस्तीमें वैद्योंकी कमी नहीं थी, पर हाँ ; विद्याकी कमी अवश्य थी,—सब अपनी-अपनी दवाइयाँ बताते थे। बुद्धिधनकी दशा बहुतही निकृष्ट थी। किन्तु "मंत्रिकुटुम्ब"का सब सम्मान करते थे। इसलिये लोगोंकी भीड़ लग जाती थी, घरमें और किसी पुरुषके न रहनेके कारण उनकी अभ्यर्थना न होती थी। बहुतसे तो अपने जाने-आनेकी कोरी टीका चढ़ाते, बहुतसे उस दीन दशापर सूखी सहानुभूति दिखलाते थे। बहुतसी स्त्रियाँ रोगीको देखने आतीं; उनमेंसे कई सिरहाने बैठकर सहानुभूति और दया-मायाके कुप्पे औंधातीं थीं, बहुतसी इधर-उधर गिरी-पड़ी चीज़को हथिया लेतीं, अन्तमें कोई बहाना करके, कोई आज्ञा लेकर, कोई बिना कहेही अपने घर चली जातीं। उसके दुःखसे यदि सच पूछिये, तो दो प्राणियोंकोही दुःख था—एक उसकी माता और दूसरी उसकी स्त्रीको। वे दोनों दुःखी थीं और इस गड़-बड़से वे और भी घबरा उठी थीं। बेचारी माता सैंकड़ों मुँहसे सैंकड़ों दवाइयाँ सुनकर, इस चक्करमें पड़ गयी थी, कि वह क्या करे और क्या न करे! पर वह रोगीको खाटका पाया पकड़े, निरन्तर वहीं बैठी रहती थी। उदास भावसे बहू बार बार उस घरमें आती थी। इस दशामें भी बुद्धिधनको निश्चिन्तता न थी।

दुःख हेदमकरही दुःख आया करते हैं। बुद्धिधनके बापको मरे सालभर होनेको आया, पर अभीतक पिताके नामकी

जायदाद उसके नाम नहीं हुई। मंत्रीने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। अनुसन्धान करनेसे मालूम हुआ, कि मंत्री और नीचेवाले ओहदेदारोंकी मुट्ठी गरमा दी जाये, तो वे जायदादकी सनद उसके नाम कर देंगे। आपत्तिमें डूबे हुए कुटुम्बके लिये यह अशक्य था, कि वे कोई बड़ी रकम देकर अधिकारी-देवताका पेट भरते; इसलिये वार्षिक आय बन्द होगयी। एकान्तमें बैठकर सास-बहू रोलेतीं, पर उन्होंने बुद्धिधनसे यह समाचार न कहा। बीमारीका कोई अन्त न रहा; धीरे-धीरे तंगी और बढ़ने लगी; वार्षिक और मासिक आय रुक गयी, नौकर-चाकर भी एक-एक करके अपने घर बैठ रहे। बाज़ारसे सौदा लानेवाला भी कोई न रहा, वैद्यको उत्साह दिलानेवाला रुपया नहीं मिलता था, इसलिये उसने भी आना-जाना कम कर दिया था। जो लोग देखने आते थे, वे भी इस लम्बी बीमारीसे तंग आकर अपने-अपने घर बैठ रहे; घरमें शून्यताका राज्य बढ़ने लगा एवं एक बीमारको छोड़कर और कोई बात वहाँ ध्यान देने योग्य न रही। उस बीमारके पीछे दोनों नीरोग आदमी भी बीमारके समानही बन गये। बेचारी सास-बहूके दुःखोंकी सीमा न रही। ऊपर आकाश और नीचे पृथ्वीके सिवाय उन अबलाओंकी दृष्टिमें और कुछ न आता था।

बुद्धिधनका रोग बढ़ताही गया। व्याधि जीर्ण होती गयी। वह अपनी जीर्ण शय्यापर पड़ा हुआ, बालिका पत्नीको उदास मुख इधर-उधर घूमते देखता था। वे इधर-उधर छिपकर दिन भर रोया करती थीं और आँसू पोंछकर लम्बी साँसें छोड़ती थीं। माताके दुःखकी सीमा न थी। वह बार-बार इधर-उधर घूमकर अपनी आँखोंके तारेके कुम्हलाये हुए मुखको देखती, एकान्तमें जाकर अपना सिर पीटती, पर बाहर आकर सबको ढाढ़स

बँधाती और स्वयं धीरज धारण करती तथा दूसरोंके सामने अपनी आँखसे एक बूँद आँसू न गिरने देती थी।

अन्तमें प्रारम्भके सब धूम-धड़ाके बन्द हो गये। कोई इस ओर भूलकर भी नहीं आता था। एक बूढ़ा वैद्य परोपकारीवृत्तिसे निर्धन कुटुम्बकी दवा करने आता, एक बूढ़ा पड़ोसी उसके सिरहाने आकर बैठा करता और अपनी मीठी बातोंसे उसके हृदयमें शान्ति पैदा करता था। बालिका सौभाग्य और विधवा माताके मुँहको देखकर, उसके मनमें दया आती और वह बाज़ारसे सौदा तथा वैद्यके घरसे दवा ला देता था। वार्षिक आयके बन्द होनेकी बात अब तक इसी वृद्धके कहनेसे बुद्धिधनको नहीं बतायी गयी थी।

एक दिन वह बेचारा भी बीमार हो गया; वैद्यका भी आना न हुआ। विधवा बाहर नहीं जाती और बहूको भेजना किसी प्रकार उसे उचित न जँचा। अन्तमें लोक-मर्यादा और रूढ़िको लात मारकर पुत्रवत्सला माता लजाती-शर्माती और चोरकी तरह छिपती वैद्यके घर चली; पीछे बहूको बेटेके पास बैठनेके लिये कहती गयी।

सासके जानेपर किवाड़ बन्द करके वहू रोगीके सिरहाने आ बैठी। बुद्धिधनकी आँखें झप गयी थीं, उसका फीका और रोगी मुख सोते हुए मुर्दे जैसा जान पड़ता था; बाक़ी सब शरीर कपड़ेसे ढका था। हाथ कुछ उघाड़ा था एवं उसकी हड्डियाँ और नसें साफ़ दिखाती थीं। सासके बाहर जानेके कारण बहूके मनमें किसीके आ जानेकी शङ्का न थी। सिरहाने बैठकर वह अपने प्राणनाथका मुख देखने लगी। देखते-देखते उसका हृदय और आँखें भर आयीं। अपने हृदयके वेगको सम्हालकर

वह पतिके मुखको देखती रही, फिर बहुत धीमे स्वरसे कुछ गुनगुना कर गाने लगी।

गाना गाते और पतिके मुँहकी ओर देखते देखते उसकी कल्पना जाग उठी। दुःखके अन्धेरेमें, निर्बल मनके सामने जैसे कल्पनाका भूत खड़ा हो जाता है, वैसेही मनके आवेगमें उसके हृदयके भाव ज़ोरसे बाहर निकल पड़े। 'हाय, हाय' करके वह बुद्धिधनके पाँवोंपर लोट गयी; दोनों पाँवोंको उसने छातीसे लगा लिया और आँसुओंसे बिछौना भिगो दिया। बुद्धिधनकी नींद टूट गयी। उसकी उठनेकी शक्ति बहुत दिनोंसे चली गयी थी, पर इस समय वह शक्ति न मालूम कहाँसे लौट आयी। वह बैठ गया और अपने पाँव समेटकर उस अस्थि-पंजर देहसे सौभाग्यको आलिङ्गन करके शान्त करने लगा। वह धीर पुरुष अपनी स्त्रीके व्याकुल मुखको देखकर कारण समझ गया। उसने सजल नेत्रोंसे उसकी ओर देखते हुए कहा,—"देवी! तुम यह क्या कर रही हो? धीरज धरो, परमात्मा अनाथोंका नाथ है।"

सौभाग्य पतिके मुँहकी ओर देखती रही, उस अर्थशून्य दृष्टिसे मालूम होता था, मानो वह ईश्वरको कोस रही है, या ईश्वरकी इच्छाको अपने प्रतिकूल समझ रही है। वह पतिके कन्धेपर हाथ रख, नीची दृष्टि किये हुए कहने लगी,—"मैं क्या करूँ? अब नहीं सहा जाता! माँजीने जो कुछ करना था, सो किया। जो कुछ था, सो बेंच-बाँच-कर उन्होंने ब्याहका देना भुगताया, फिर जो बचा, उससे घरका काम चलाया। मैं बहुत कहती हूँ, पर मेरे जो दो-एक गहने हैं, उन्हें वे नहीं बेचतीं! हाय! आज वे खुद वैद्यके घर गयी हैं। मुझे परमेश्वरने व्यर्थका

जन्म दिया। मैं इतनी निकम्मी हूँ, कि माँजी बाहर गईं; पर मुझसे कुछ न बन पड़ा। मेरे कपड़े और गहने किस काम आवेंगे? हाय! जीविका गयी तो जाओ, पर मेरी ये छोटी-छोटी चीज़ें भी तुम्हारे काम नहीं आतीं। जो चीज़ें तुम्हारे काम नहीं आ सकतीं, वह मेरे किस मतलब की?" यह कह, उसने एक-एक कर अपने सारे गहने उतार कर फेंक दिये। "मैं तो तुम्हारा मुँह देखनेकी भूखी हूँ। तुम सदा मेरी आँखोंके सामने बने रहो, मेरे ईश्वर!" यह कहकर सौभाग्य देवी रोने लगी।

नरम बन कर और फिर दुःख पाकर कातर दृष्टिसे देखते हुए बुद्धिधनने स्त्रीसे कहा,—"देवी, ऐसा क्यों करती हो? आय बन्द हुई, इसकी खबर तुमलोगोंने मुझे क्यों नहीं दी? अस्तु। तुम निकम्मी नहीं हो। निकम्मी कैसे हो? तुम तो मेरी आधार, मेरी प्रियतमा हो। मेरी देवी! धीरज धरो। परमात्मा अनाथोंका नाथ है। ये गहने मेरे सौभाग्यके चिह्न हैं। इन्हें फेंको मत।"

"मेरा सौभाग्य तुम्हारे बिना कहाँ है? गहनोंके साथ मेरी कौनसी नातेदारी है? ईश्वरका क्यों नाम लेते हो? ईश्वर होगा, जिसका होगा। बैठे मत रहो, सो जाओ। तुम्हारी कमज़ोरी बढ़ेगी। हाय, मैं अब भी तुम्हें दुःख दे रही हूँ।" यह कहकर उसने अपनी आँखोंके आँसू पोंछे और पतिको लिटा दिया।

इसी समय दरवाज़ा खड़खड़ाया। गहनोंको वैसेही छोड़-कर बहूने दरवाज़ा खोला। स्नेहवत्सल माता घरमें आई। उसके मुखपर निराशाके चिह्न थे। उसका चेहरा उदास, आँखें कुछ-कुछ लाल और आँसुओंको कठिनतासे रोक रही थीं। उसके ओठ फरक रहे थे और दिल धड़क रहा था। घरमें आकर

माताने बेटेका औरही रंग-ढंग देखा। इतने समयमें न मालूम कितनी चिन्ताएँ उसके हृदयमें नयी-पुरानी होगयीं।

सोते-सोते अचके बेटेने कहा,—"माँ, कहाँ गयी थीं? तुमने आजतक वार्षिक आयके बन्द होनेकी बात मुझसे क्यों न कही? र, अच्छा किया। पर तुम्हारा मुँह ऐसा क्यों उतर रहा है!"

आयकी बात उठतेही माँने बहूके मुँहकी ओर देखा, पर उसके अङ्गपर गहने न देखकर वह दङ्ग रह गयी। सासकी उस कातर दृष्टिसे बहूका हृदय फटने लगा। वह रोती-रोती साससे लिपट गयी और बोली,—"माजी, यह मेरा अपराध है, क्षमा करो। अब मेरे इन गहनोंको तो काममें लाओ।"

किवाड़ बन्द करके सास-बहू रोगीके सिरहाने बैठीं। बैठते-बैठते माताने कहा,—"मेरी देवी! मेरी बेटी, तुम अभी बच्ची हो। तुम्हारे गहनोंको मैं अबतक क्यों नहीं काममें लायी? काम पड़नेपर तो सब करनाही पड़ता है। तुम्हारी समझ अभी कच्ची है,—तुम्हारी चिन्ता अभी मुझे है। परमेश्वर इन गहनोंको सदा तुम्हारे शरीरपर रखें। बेटी, इतना रोओ मत, मेरी लक्ष्मी! इन गहनोंको पहन लो।"

"बेटा, मैं क्या कहूँ और कहाँतक कहूँ!" यह कहकर माताने अपने आँसू पोंछे। वैद्य आज एक दूसरे गाँव गया है और उसकी स्त्री मिली थी, पर वह बड़ेही ओछे स्वभावकी है। वैद्य अपने मुफ्त दवा देनेकी बात उससे छिपा रखता था; क्योंकि अपनी कमाईके आगे दूसरोंके उपकार करनेकी बात वह स्त्री जानतीही नहीं थी। बुद्धिधनकी माताको देखकर उसने समझा, कि यह भी कोई मुफ्त दवा लेने आयी है, इसलिये दो-चार गालियोंके

साथ भली-बुरी सुनाकर उसने इसे अपने घरसे निकाल दिया था। और वैद्य कहाँ गया है, इसका पता भी न बताया था। बेचारी दुखियाने जब एक पड़ोसिनसे पूछा, तब उसे मालूम हुआ, कि आज वैद्य एक दूसरे गाँव गया है। निराश होकर दुःखिनी लौटी। रास्तेमें उसने सोचा, कि मैं बाहर तो निकली ही हूँ, एक बार मन्त्रीके घर भी होती चलूँ और जीविकाके पट्टेके लिये कहूँ; शायद उसके दिलमें दयाका अँकुर जाग उठे और वह करदे। यही सब सोचकर वह दीवानके घरमें गयी. वहाँ रास्तेमें सबसे पहले दीवानकी बेटी मिली। उसने बिना गहने कपड़ेवाली एक साधारण स्त्रीको देखकर नाक-भौं सिकोड़ी। दासियों और स्त्रियोंके आँख मिचकानेके अपमानको चुपचाप सहती हुई, विधवा मकानमें गयी। वहाँ चौकमें दीवान साहब नौकरोंसे घिरे हुए दाँतन कर रहे थे। विधवाकी सूरत देखतेही वह उसके आनेका कारण समझ गया। उसके कपड़े-लत्तोंसे दीवान साहब भाँप गये, कि इससे कुछ घूँस नहीं मिल सकती फिर व्यर्थ सिर खपाने और बातें करनेसे क्या फ़ायदा ? इसलिये दूरसेही उन्होंने नौकरसे कहला भेजा, कि,—"दीवान साहब इस समय सरकारी काममें हैं। तुम जाओ, यदि कोई काम हो, तो अर्ज़ी लिखकर दर्बारमें देना।" डरती डरती अभागिनी विधवा दीवान साहबकी देहली पार करके बाहर आयी। इसी समय एक चटक-मटकदार कपडे पहने विधवा बाहर निकली। थोडी दूर चलकर उसने इसे बातोंमें लगाया,—"तुम दीवानके पास अपने पट्टेके लिये गयी होगी ?"

"हाँ !"

"यदि तुम मेरा कहना करो, तो तुम्हारा काम बने।"

"मेरे पास भेंटमें देनेके लिये रुपये नहीं हैं। मैंतो दीन-दुखिया हूँ।"

"रुपयोंसे भी बढ़कर तुम्हारे पास एक चीज़ है।"

बुद्धिधनकी माता चौंक कर शङ्कित दृष्टिसे उसकी ओर देखती रही। बोली,—"क्या?"

उस बेशरम कुलटाने हिम्मतके साथ कहा,—"कुछ नहीं। सिर्फ अपनी बहूको थोड़ी देरके लिये मेरे साथ भेज दो। मैं तुम्हारा काम करवा दूँगी। दीवानजीके बेटेसे मेरी जान-पहचान है। तुम्हारी यह दशा देखकर मेरा मन पसीज उठा है।"

पवित्र, किन्तु अभागिनी, विधवाने दाँत पीसे, ओठ काटे—उसकी आँखें लाल हो गयीं। किन्तु उस राक्षसी कुलटाको उसने यह भाव न दिखाया। शान्तिसे उसने कहा,—"बहन! मुझे उस जायदाद और पट्टेकी जरूरत नहीं है।" उस पापिन-की छायासे बचकर वह अनाथिनी अपने घर चली। हाय, देशी राज्योंमें अनाथोंपर अन्यायकी कोई हद है! बाप दीवान बेटा फ़ौजदार और भाई जज; अब उनके अन्यायके विरुद्ध दीन प्रजा किसे अपनी पुकार सुनावे? बेचारी अनाथा अबला चुप-चाप अपने घर चली आयी।

माताकी इच्छा नहीं थी, कि वह इनमेंसे एक भी बात पुत्रसे कहे, पर माताका मुँह देखकर उसने समझ लिया था, कि आज कोई नयी बात ज़रूर हुई है। पुत्रके हठ करनेपर माता-ने केवल इतनाही कहा,—"मानो दुःखिनीके दुर्भाग्यहीसे आज वैद्य दूसरे गाँव चला गया है।" और उसने कुछ भी न कहा। बच्चेके कमज़ोर दिमाग़को और-और बातोंमें लगा देना मुश्किल भी नहीं था। बहूका रोना अब भी बन्द नहीं हुआ था। उसे

लेकर माता दूसरे घरमें चली गयी। वहाँ उसके सिरको अपनी गोदमें रखकर वह उसे धीरज बँधाने लगी। थोड़ी देर बाद वैसेही लेटे-लेटे उसे नींद आगयी। नींदमें वह सपने देखने लगी। इस समय विधवा अकेली रह गयी; फिर नाना प्रकारके विचार उसके मस्तिष्कमें आने-जाने लगे। एक हाथसे वह बहूको थपकियाँ देकर सुला रही थी और दूसरेसे आँसू पोछ रही थी। इसी समय दरवाज़ा खोलकर बूढ़ा पड़ोसी दयाशङ्कर आया। विधवाने उसे धीरे-धीरे किवाड़ बन्द करके आनेके लिये कहा, दरवाज़ा बन्द करके वह धीरे-धीरे आकर बैठा। एक दिन अपने न आनेका कारण बताकर, वह पिछले समाचार पूछने लगा।

अनाथ विधवा चुप होगयी और हृदयके आवेगको न सम्हाल सकनेके कारण रो उठी।

स्वजनस्यहि दुःखमग्रतो।
विवृतद्वारमिवोप जायते॥

जब अपनी समान अवस्थावाला मनुष्य मिलता है, त दुःखका दरवाज़ा खुल जाता है। अपने दयालु पड़ोसी दुखियारी विधवाने वैद्य और दीवानके घरकी सब बातें क डालीं। बेटे और बहूकी भी बातें कह सुनायीं। अन्तमें दुःखि कहने लगी,—"हाय, दयाशङ्कर! इस अनाथ पुष्पकी क्या दश होगी? मैं तो अपने बुढ़ापेमें विधवा हुई, पर हाय! जो य कलकी छोकरी मेरी जैसी होकर बैठेगी, तो मुझसे कैसे देख जायेगा? मैं भी मौतके किनारे आलगी हूँ! हाय! मेरी इस देवीकी रक्षा कौन करेगा?"

वृद्ध दयाशङ्करने दुखियाको धीरज धराया; कहा,—"बहन! तुम हिम्मत मत हारो। तुम्हारे भाग्यमें बहुत सुख है। इसमें

कुछ भी सन्देह नहीं, कि बुद्धिधन आराम होजायेगा और आराम होतेही वह सिंहकासा विक्रम दिखायेगा। मेरी आत्मा सदा इस बातका साक्षी देती है, इसे तुम सच मानना। तुम्हारी बहूका सौभाग्य अचल है; मैंने इसकी जन्मपत्री देखी है और बुद्धि-धनकोभी यह साल ख़राब है पर इससे आगे दिन अच्छे हैं।"

दयाशङ्करको ज्योतिषपर विशेष श्रद्धा न थी, पर उसने अपने इन विचारोंसे दुःखिनी विधवाको शान्त किया और हिम्मत दिलायी। उसने अपनी बातोंसे उसका सब दुःख बटा दिया और विधवाकी आँखोंका जल सूख गया। इसी समय सौभाग्यदेवीकी भी नींद टूट गयी और वह सम्हलकर बैठी। फिर सब बुद्धिधनके पास गये।

दयाशङ्करके पाँवकी आहटसेही बुद्धिधनकी आँख खुल गयी थी। बीमारीमें उसकी सब इन्द्रियाँ तो शिथिल हो गयी थीं, पर कानोंकी शक्ति कुछ बढ़ गयी थी। उसने कान लगाकर सब बातें सुन ली थी। बातें सुनते-सुनते उसके मनमें क्रोध, दया, दीनता, आशा और उत्साह आदि कई भाव उठे और फिर विलीन हो गये। अन्तमें वह शान्त हो कर ज्यों-का-त्यों लेटा रहा। इसी समय सब भीतर आये।

दयाशङ्कर सबसे आगे, सिरहानेके पास, जा बैठा और बुद्धि-धनके सिरपर हाथ फेरकर नाड़ी देखी। कहा,—"क्यों भाई! तबियत तो ठीक है न? मुझे तो बड़ा परिवर्त्तन मालूम होता है। बस, केवल मुँहपर कुछ चिन्ता झलकती है।"

"हाँ, काकाजी! तबियत ठीक है, पर माने जो बातें तुमसे कहीं, उन्हें सोच-सोचकर मेरा सिर घूमा जाता है। तुम देख रहे हो, कि दीवान कैसा बदमाश है। चारों ओरसे कैसा नाश-

का जाल फैला हुआ है। ठीक है।"—यह कहकर बुद्धिधन चुप हो गया, उसके चेहरेसे मालूम होता था, मानो वह किसी विचारमें लीन हो गया हो।

"भाई! यह सब तो योंही होता रहता है। पर हाँ, जब तुम दीवान बनो, तब इसका ख़याल रखना।" यह कहकर दयाशङ्कर हँसने लगा। फिर उसने कहा,—"बहन! यह कोई अद्भुत बात नहीं है। तुम इसे अचम्भा मत समझना। आज इस दीवानके घरमें चूहे भलेही भूखों मरते हों, पर कल क्या-से-क्या होगा, सो कोई नहीं जानता। तुम्हारे घरमें दीवानी सदासे चली आयी है। पचास साल पहले जैसा तुम्हारा घर भरा-पूरा था, वैसा फिर बना देना परमेश्वरके लिये कोई बड़ी बात नहीं है।"

बुद्धिधन एकटक दृष्टिसे वृद्धकी ओर देखता रहा।

दुःखिनी विधवा लम्बी साँस छोड़कर, कपालपर हाथ दिये बोली,—"भाई! हमारा ऐसा भाग्य कहाँ? जिनका था, उनके साथ गया। हमारे पास न लाख होगा, न लखपती कहलायेंगे। परमेश्वर मेरे बुढ़ापेकी लकडीकोही मेरे हाथमें रहने दे, तो मेरे लिये यही इन्द्रपुरीका राज्य है। मेरा लाला अच्छा हो जाये, यह जोडी फले-फूले और सुखी हो; बस, मैं सब कुछ पा गयी। मैं परमेश्वरसे यही माँगता हूँ, कि इन दोनोंको सुखी देखती हुई, इस लोकसे विदा होजाऊँ।" कहते-कहते माताकी आँखे भर आयीं; पर उसने सबकी नज़र बचाकर आँसू पोंछ डाले, तोभी पुत्रने उन्हें देखही लिया।

दयाशङ्करने कहा,—"निश्चिन्त रहो। समय आनेपर सब कुछ होगा। समय देखो। क्यों भाई, बुद्धिधन!"

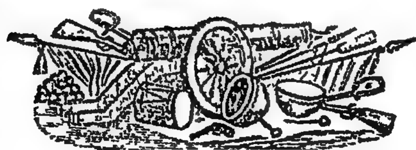
माताको साँस लेते और आँसू बहाते देखकर बुद्धिधनने

कहा,—"काकाजी! परमेश्वर करे, तुम्हारे मुँहमें घी-शकर पड़े। हाँ, इस समय तो यह बात हँसी मालूम होती है, पर यह याद रखना, कि इस बदमाश दीवानने जो मेरी दुःखिनी माताका अपमान किया और उसके ऐय्याश बेटेने मेरे कुटुम्बकी दीनता देखकर जो उपहास किया है, उसका बदला बुद्धिधन एक-न-एक दिन अवश्य लेगा। परमेश्वर कोयलेकी खानमें हीरा पैदा करता है और सुखके दिनोंको दुःख ढक देता है। हमारी जीविका गयी, सो अच्छाही हुआ है। अब मैं दीवानके दबावमें नहीं हूँ। मैं जब तक उसके नीचे दबा रहा था, तभी तक कोई रास्ता नहीं सूझता था। पर अब मेरी चिन्ता दूर हो गयी; अब मैं स्वाधीन हो गया। धन्य परमेश्वर! दीवानने अब मेरा रास्ता खोल दिया। नाथ! अब मुझे आगे चलनेकी शक्ति दो। अब मुझे फिर जीनेकी इच्छा हो आयी है। मेरे पास उत्तम-से-उत्तम दो रत्न हैं; उनके लिये मैं सब कुछ करूँगा। मैं दरिद्र अवश्य हूँ,—मेरे पास धन नहीं है, कोई मित्र या सहायक भी नहीं है; मैं दीवान बनूँ चाहे न बनूँ; पर इस दीवानको तो मिट्टीमें मिलाकरही छोड़ूँगा। संसार देखेगा, कि यही दीवान मेरी कितनी खुशामद करता है। आजसे बैरकी आग रात-दिन मेरे दिलमें जला करेगी और वह दीवानके कुटुम्बको भस्म करकेही ठण्डी होगी। मैं इस दीवानकी तरह नीच वंशमें नहीं पैदा हुआ हूँ। माताजी! मैं तुम्हारी पवित्र गोदमें पला हूँ और मेरे हाथोंमें सुहागकी चूड़ियाँ नहीं पड़ी हैं जिनके टूटतेही रँडापेका भय होगा।"

रोगी दाँत पीसता, ओठ काटता, छाती ठोकता और बार-बार रोमांच हो आनेसे काँपता हुआ, इतनी देरतक बोलकर थक गया। फिर दोनों हाथ शान्त होकर निस्तब्ध हो गये,

क्रोधसे लाल आँखें कुछ देरतक इधर-उधर घूमती रहीं और अन्तमें शान्त होकर मुंद गयीं। थोड़ीही देरमें नींद आ गयी और यह जागता हुआ संसार सपनासा होगया। नींदमें रोगीकी आँखें कभी-कभी चढ़ जाती थीं और चेहरा तमतमा उठता था, ललाटकी नसें फूल उठती थीं, इससे साफ़ मालूम होता था, कि नींदमें भी वह कोई भयानक सपना देख रहा है।

आश्चर्यसे चुप रहकर, सबने बुद्धिधनकी प्रतिज्ञा सुनी। उसे सोता जानकर दयाशङ्करने कहा,—"अब कुछ मत बोलो, सोने दो।" इसके अलावा और कई बातोंके लिये विशेष रूपसे चेतावनी दे कर, दयाशङ्कर अपने घर चला गया। फिर दूसरे दिनसे वैद्य रोज़ आने लगा। अब दवा भी अपना गुण दिखाने लगी और बुद्धिधन प्रतिदिन कुछ-कुछ अच्छी दशामें आने लगा। थोड़े दिनोंमें वह घरमें टहलने-फिरने योग्य हो गया। बीमारी चली गयी; बुद्धिधन फिर स्वस्थ हो गया, केवल वैरके चिह्न-स्वरूप बदला लेनेकी प्रवृत्ति उसके हृदयमें जागती रही। बुद्धिधनकी क्रोधसे चढ़ी हुई भौंहें, दीवानके लिये पूँछवाले धूमकेतुके समान थीं। निस्सन्देह, उस भृकुटिमें दीवानके नाशकी सूचनाही थी।



पांचवां परिच्छेद।

बुद्धिधन अथवा अनुसन्धानकी पूर्ति।

बड़े आदमियोंकी झूठी बात सच हो जाती है और छोटे आदमियोंकी सच्ची बात भी हँसीमें उड़ जाती है। इस मायामय संसारका यही नियम है। दीन बुद्धिधनका क्रोध देखकर दयाशङ्करको हँसी आयी और घरमें तो किसीको उसकी बात याद भी न रही। जिस दीवानके यहाँ माताका अपमान हुआ उसके घर बुद्धिधन पहलेहीसे आता-जाता था और आराम होनेके बाद फ़िर आने-जाने लगा। परमात्माने सबको बुद्धि और भला-बुरा विचारनेका विवेक दिया है। पर इसका अधिक उपयोग दीन दुखीही करते हैं; वे धनिकों और ओहदेदारोंको चालें, बातें और स्वभाव परखते रहते हैं, पर उन अन्धे अभिमानियोंको रङ्कों और दीन-दुखियोंके स्वभाव परखनेकी आवश्यकताही नहीं मालूम होती, वे छोटे लोगोंकी बुद्धिको सम्मान देना जानतेही नहीं। वे ख़ुद अपने आपको बड़ा अक़्लमन्द समझते हैं और उसके सामने दूसरोंको तुच्छ मानते हैं। धनवानों और ओहदेदारोंमें बहुत कम, अन्धोंमें कानोंके समान कहीं-कहीं ऐसे व्यक्ति देखे जाते हैं, जो रङ्क लोगोंकी बुद्धिकी परीक्षा करके, उन्हें कुछ सम्मानकी दृष्टिसे देखने लगते हैं; फिर भी वे अपनी बुद्धिसे

अधिक उनमें वृद्धि होना स्वीकार नहीं करते। जब दीवान साहबका खुशामदी अमला बड़ी-बड़ी डींगें मारकर ठहाका उड़ाता था, निन्दा करता था, नीच उत्सव मनाता था, नीतिके नियमोंका उल्लंघन करता था और किसीको नुकसान पहुँचानेमें कृतकार्य होकर खुशी मनाता था, मूर्खतासे चापलूसीकी नदी बहाता था,—उस समय बुद्धिधन अहलकारोंके पीछे बैठा हुआ, अपने आँख-कानको न्यारे-न्यारे कामोंमें लगाये रहता और दीवान तथा उसके बेटेको देखकर अपने हृदयकी आगको और भी अधिक उद्दीप्त किया करता था। किन्तु उसपर किसीकी दृष्टि न पड़ती थी। हाँ, दीवानका बेटा, दुष्टराय कभी-कभी तीखी नज़रोंसे उसे देख लेता था। उस दृष्टिमें तिरस्कार और अपमानही भरे रहते थे। वह कभी-कभी उस जगह आता, जहाँ बुद्धिधन बैठा रहता था। आकर उसके पासवाले अहलकारोंको वह बड़े रोबके साथ आज्ञा देता और ऐसा भाव दिखाता, जैसे वह उन्हें बिलकुल तुच्छ समझता है। इस प्रकार बुद्धिधनको अपने प्रबल प्रतापका नमूना दिखाता हुआ, वह चला जाता और उसके पीछे-पीछे उसके चापलूसोंकी फ़ौज भी लंगूरकी दुमकी तरह चली जाती। उसका बाप शठराय उससे कुछ अधिक बुद्धिमान् था। वह प्रभाव डालनेकी ऐसी सैंकड़ों चालें जानता था, पर बिना मत-लबके वह उन्हें काममें न लाता था, और जहाँ तक हो सकता, सीधी तरह अपना मतलब गाँठता था। इसीलिये बुद्धिधनका और उसका सामना कभी-कभी हो जाता था। ऐसे प्रसङ्गोंपर बुद्धिधन उनकी परीक्षा करता। वे दोनों उसे "बुद्धिमान्" और "चञ्चल" प्रकृतिके प्रतीत होते और इसीसे बुद्धिधनका काम पूरा नहीं हो पाता था। इन्हीं दोनों गुणोंसेही दीवान वशमें नहीं

था सूझता था। इसके अलावा बुद्धिधनकी ऐसी दशा भी नहीं थी, कि जिससे दीवानको कोई भयका कारण हो। वह न उसका मित्र था और न शत्रु। जो कुछ शत्रुता थी, वह बुद्धिधनके हृदय में जल रही थी और आपके अनजानतेमें, पेटेने उसका बीज बोया था। जिन मनुष्योंमें स्वभावसेही सद्गुण नहीं होते, उनको घघुलेकीसी चाल सब जगह नहीं चलती, या वे सब जगह उसकी आवश्यकताही नहीं समझते; किन्तु परमात्माकी पुस्तकमें न्यायकोही स्थान मिलता है। कोई चाहे जान-बूझकर विष खाये या अनजानमें, किन्तु फल समानही होगा। इसी प्रकार जानते या अनजानतेमें, दुर्गुणोंका फल मिलताही है। मूर्ख मनुष्य उसके कारणको न जानकर परमात्मा या कर्मके सिर सारा दोष मढ़ते हैं; पर या तो वे ऐसे मूर्ख हैं, जो इस कार्य-कारणको समझही नहीं सकते अथवा वे उस फल और उनके सम्बन्धको देखही नहीं सकते।

"विवेकप्रध्वंसाद्भवति सुखदुःखव्यतिकरः।"

इस संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जिनकी प्रकृति अपने आप सद्गुणोंकी ओर झुकनेवाली होती है या जिनमें उत्तम गुणोंका अपने आप प्रादुर्भाव होता है। वे दुःखके अन्धकारमें उस शान्त प्रदीपको जलाकर बड़े आनन्दका प्रकाश देखते रहते हैं। शठराय और दुष्टरायको देखकर, उनके अपराधका अवसर विचारकर, उनके भविष्य फल और अपने क्रोधका मान-दण्ड तौलकर बुद्धिधन अपने आप आश्चर्य करता हुआ विचार किया करता था।

एक दिन, दीवान साहबकी घरेलू बैठकमें सबके पीछे बैठा हुआ बुद्धिधन, विचारमें डूब गया था। उसी समय सभा भङ्ग

हुई; सब लोग उठ-उठकर अपने घरकी ओर चले, बुद्धिधन सपनेके प्रवाहकी तरह उन लोगोंको जाता हुआ देखता रहा, पर वह स्वयं विचारमें डूबकर एक खिड़कीका सहारा लिये बैठ रहा। उसे उठनेकी यादही न रही और वह अकेलाही रह गया। सबके चले जानेपर कमरेको साफ़ करनेवाला एक नौकर झाड़ू देता-देता उसके पास आया, तब उसे ज्ञान हुआ, कि यहाँसे चलना चाहिये। अब वह झटपट उठकर दरवाज़ेसे बाहर आया।

दरवाज़ेसे बाहर आतेही बुद्धिधनको एक राजपूत सरदार मिला। राजपूतकी कमर कसी हुई थी, डाढ़ी ऊपरको चढ़ी हुई थी; सिरपर पगड़ी और कमरमें सोनेकी मूठवाली तलवार शोभा पा रही थी। दरवाज़ेसे कुछ दूर आगे बढ़तेही बुद्धिधनकी उससे भेंट हुई। सरदारके साथ उसके दो एक नौकर भी थे। बुद्धिधनको देखकर सरदारने कहा,—"क्यों, भाई बुद्धिधन! दीवानजी हैं क्या?"

"पधारिये, भूपसिंह साहब! दीवानजी अभी जनानेमें पधारे हैं?"

मुँह बनाकर भूपसिंहने कहा,—"अच्छा, तो अब मैं क्यों हैरान होऊँ? हाँ भाई, आज इसका भी दिन है। बुद्धिधन, तुम तो बहुत दिनसे नहीं दीखे! हमारे यहाँ भी कभी-कभी आजाया करो। दीवानजीके घर चाहे लाख मन सोना हो, पर तुम्हारे वह किसी काम आ सकता है? हाँ, जो हमें छोटा न समझो और पधारा करो, तो जो कुछ हमसे बने तुम्हारी सहायता करनेसे हाथ न खींचेंगे; आगे तुम्हारी मरज़ी।"

"आपकी कृपा तो मुझपर सदासेही रही है। मैं भी बहुत दिनोंसे आपकी सेवामें उपस्थित होनेकी बात सोच रहा था।"

इसी समय बुद्धिधन भूपसिंहसे मेल-जोल बढ़ाने लगा। भूप-सिंह महाराणा अड़सिंहके भाई-बन्धुओंमेंसे था। जब भूपसिंह, छोटा था, तभीसे उसकी जागीरपर मुंसरिम तैनात था। सरकारी मुंसरिमकी अमलदारी रहनेके कारण, दीवान साहब जागीरसे जो कुछ निचोड़ सकते थे, वह उन्होंने अच्छी तरह चूस लिया था। राणाजीको अभीतक यही सिखाया जाता था, कि अभी तक भूपसिंह जागीर सम्हालने योग्य नहीं है, इसलिये राज्यके हाथ-में उसका प्रबन्ध रहना आवश्यक है। भूपसिंहको अपनी पैतृक जागीरसे केवल खाने-पीनेका खर्च मात्र मिलता था। अपने आपको और अनेक आपत्तियोंसे बचानेके लिये, भूपसिंह "मसाने" नामक स्थानमें रहता था। इस समय वह बालिग़ हो-चुका था, और अपनी जागीर अपने अधिकारमें लेनेके लियेही वह सुवर्णपुरमें आया था, पर किसी जगह उसकी सुनाई न थी, उसके लिये चारों ओरके दरवाज़े बन्द थे। वह मन-ही-मन राणाजी और दीवानपर बहुत जलता था, पर उसकी आग बिना घासवाली ज़मीनपर पड़ी थी; वह निरुपाय था। अहलकारों और पेशकारोंके पास बैठकर, वह अपने बारेमें राय पूछता; पर उसे रिशवत देनेके अलावा और कोई सलाह नहीं मिलती थी। दीवान साहब और हुज़ूर साहबके चेलों-ख़वासोंको पचास हज़ार देनेकी ज़रूरत थी और इतनीही रक़म खुद हुज़ूर साहबको नज़-रानेमें देनेकी ज़रूरत थी।

दुश्मनका दुश्मन दोस्त हुआ करता है। बुद्धिधनने सोचा, कि भूपसिंहके लिये दीवानसे भिड़ जाना चाहिये। भूपसिंहके पास "मसाने" में भी कुछ धन था; उसी धनसे बुद्धिधनकी घरेलू चिन्ता मिटी, अब वह "इधर या उधरपर" तुल गया;

भूपसिंहको दीवानके डरके मारे कोई ऐसा योग्य पुरुष नहीं मिलता था, इसलिये बुद्धिधन उसे बड़ेही कामका आदमी जान पड़ा। विना जागीरवाला जागीरदार और बुद्धि व्यवसायी व्यक्ति दोनों परस्पर मिलते-जुलते और सूनसान रातमें बैठकर सलाह-विचार किया करते थे। ये दोनों व्यक्ति कोई बड़े आदमी न थे और न इनका रोआवही था, इसलिये इनकी ओरसे सब निश्चिन्त थे, किसीको इनका ख़याल भी न था।

धीरे-धीरे भूपसिंह और बुद्धिधनकी मित्रता प्रकट हुई, लोगोंमें एक कानसे दूसरे कानमें पड़ी। अब एकके साथ दूसरा भी दीवान साहबके दुश्मनोंमें गिना जाने लगा। बुद्धिधनको यह बात बहुतही बुरी मालूम हुई; क्योंकि प्रकट रूपसे अबतक वह कोई काम न कर सका था। अन्तमें उसे यह आवश्यक ज्ञात हुआ, कि अब मैदानमें डटकर काम करना चाहिये। सुवर्ण-पुरवाला अपना घर और ज़मीन वेचकर दोनों आदमी लीलापुर नामक स्थानमें, जो अङ्गरेजी-राज्यमें था, रहने लगे। दोनोंने अपने परिवारके लोगोंको भी अपनेही साथ रखा। जिस दिन बुद्धिधन अपने कुटुम्बके साथ लीलापुरको चला था, उसी दिन दीवानके मूर्ख पुत्रके दो-चार आदमी सौभाग्यदेवीको उड़ा ले जानेके लिये आये थे, पर सब व्यर्थ हुआ।

लीलापुरमें अलग-अलग मकान भाड़े लेकर दोनों आदमी रहने लगे। गाँवसे कुछ मील दूर, सरकारी एजेंट, कर्नल रस्किन साहब रहते थे। उनकी मातहतोंमें सुवर्णपुर, रत्नपुरी और छोटे-मोटे दो-तीन और देशी राज्य थे। वे राज्य दससे पचास लाख तक सालाना आयवाले थे। साहब बहादुर, फ़ौजी आदमी होनेके कारण, सदा हंसते रहते थे। वे झटपट कोई विचार या

सम्मति स्थिर कर लेते और अपने हुक्मकी तामीलमें देर होती देखकर आग-बबूला हो जाते थे। वे खुद हमेशा सीधा रास्ता पसन्द करते थे और दूसरोंके टेढ़े रास्तेको वे बहुत कम पसन्द करते थे। वे अपने काममें सदा सावधान रहते थे ; दूरदर्शी भी थे और अधिकांश काम सरिश्तेदारसेही लेते थे। प्रायः वे सरिश्तेदारसे किसी मनुष्यके भले या बुरे होनेके बारेमें राय पूछते और अपनी रायसे सरिश्तेदारकी राय मिलती देख बहुत प्रसन्न होते थे। सरिश्तेदारीका काम एक महाराष्ट्र ब्राह्मण, जिसका नाम सदाशिव पंत था, करता था। वह अंग्रेज़ी में निपुण और बड़ा चालाक था। वह सदा साहबका रुख देख-कर बातें करता था। साहबकी मिहरबानीसे उसे एक बार शान्तिगढ़की दीवानगीरी भी मिल चुकी थी, पर साहबकी मिहरबानी समझकर, उसने उस गाँवके जागीरदारकी रत्तीभर भी परवा न की। जब दरबारियों और दूसरे छोटे जागीरदारोंसे उसका मतलब होता था, तब वह उनसे बात भी करता था, पर अपनी गरज पूरी हो चुकनेपर, वह उनको बात भी न पूछता था। इसलिये उस छोटी रियासतका एक भी मनुष्य उसे अपना मित्र न समझता था। अपने इसी निखट्टू और मतलबीपनके गुणके कारण अखबारोंसे उसने "सच्चे न्यायमूर्त्ति" की पदवी प्राप्त की थी, और अखबारोंकी प्रशंसाके कारण साहबसे प्रतिष्ठा बढ़वायी थी। दीवान साहबके ऐसे उच्च गुणोंके कारण बेचारे दुःखी लोग शिकायत करनेका नाम भी न लेते थे। बड़े-बड़े साहूकार और भले आदमी इस स्वार्थीके अन्यायको चुपचाप सहते थे और ज़हर-के घूंट पीकर भी मुंहसे आह न निकालते थे। क्योंकि उनकी शिकायतके सब दरवाज़े बन्द थे। ऐसे-ऐसे बहाने निकालकर,

कि देशी आदमी योग्य या ईमानदार नहीं हैं तथा वे शासन करना जानतेही नहीं ; उसने परदेशियोंको रियासतमें भर दिया था। छोटेसे बड़े ओहदे तक सभोमें उसीके भाई-बन्धु नज़र आते थे। अन्तमें जागीरदार, प्रजा और रियासतके चारों ओरसे अत्याचारकी पुकार उठी। जागीरदार, अहलकार और प्रजागण साहब बहादुरसे दीवानजीके अन्यायकी शिकायत करते, पर साहबका जो विश्वास जम गया था, उससे वे किसीकी बात न सुनते थे। अन्तमें जब बड़ी चिल्ली-पुकार हुई, तब साहबने सोचा, कि दीवानके न्यायी और विश्वासी होनेके कारण ये लोग उससे प्रसन्न नहीं हैं। इसलिये उन्होंने उसे फिर उसी पहलेवाले कामपर बुला लिया, उसकी वेतनवृद्धि कर दी और समय आनेपर अच्छी जगह देनेका वादा भी किया।

साहबके पास रियासतोंके मुक़द्दमे भी आते थे। रजवाड़ोंके कार्यके सम्बन्धमें वकील और मुख़्तार भी रखे जाते थे। बुद्धिधनने अपनी बुद्धिसे साहबको ख़ुश करके, एक वकालतकी सनद लेली और अपने ख़र्चके लायक़ धन और जागीरदारोंमें जाने आने लायक़ रुतबा भी उसे मिल गया। उसने सरिश्तेदार सदाशिवपन्तसे दोस्ती करली और भूपसिंहसे भी उसकी जान-पहचान करवा दी। उसने सदाशिवको यह भी समझा दिया कि भूपसिंहको भविष्यमें राज्य मिलना सम्भव है और इस समय वह अपनी जागीरके लिये, चार पैसे ख़र्च भी कर सकता है। इसके अलावा बुद्धिधन स्वयं अपने मुक़द्दमोंके कारण साहबके पास जाने-आने लगा और साहबको,अपनी प्रामाणिकता, चतुरता और बुद्धिमत्ताका परिचय भली भाँति दे दिया। धीरे-धीरे साहब-को बुद्धिधनका बहुत विश्वास हो गया ; वे सरिश्तेदारसे तो

राय पूछकर स्वयं भी सोचते थे ; पर बुद्धिधनसे राय लेकर वे फिर किसीसे न पूछते थे। बुद्धिधन सरिश्तेदारको भी नाराज़ न करता था और सदा उसको अपने हाथमें किये रहता था। यह सब काम वह बड़े यत्नसे कर रहा था। सदाशिव और भूपसिंहका सम्बन्ध जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-ही-वैसे सदाशिव बुद्धिधनको दूर रखने लगा। बुद्धिधनने भूपसिंहको उदारताकी रीति सिखायी थी और किस समय किस पहलूसे चलनेकी ज़रूरत है, यह वह उसे सदा बतलाता रहता था ; पर अब भूपसिंहका बुद्धिधनके पास आना-जाना बन्द हो गया। बुद्धिधनने भूपसिंहके लिये और भी लम्बी-लम्बी चालें सोचीं। भूपसिंहको अभी अपनी जागीर मिल जाना अच्छा है, क्योंकि इसकी चढ़ती जवानी है ; धन पाकर इसका मन नरम हो जायेगा और यह ऐश-आरामकी ओर झुक जायेगा। दूसरे साहब लोगोंसे इसकी जान-पहचान अधिक नहीं बढ़ेगी। रियासत न मिलनेसे यह लीलापुरमेंही रहेगा और यहाँ साहबसे इसकी घनिष्ठता होनी सम्भव है। बुद्धिधन इन्हीं विचारोंमें था, कि इसी समय सरिश्तेदारकी चालाकीसे बुद्धिधन और भूपसिंहमें भेद हो गया, पर बुद्धिधनने ऐसा भाव बनाया, मानो उसे सपनेमें भी ऐसे भेदका ज्ञान न हो।

अब वह इन सब जालोंको भेदकर अच्छा फल निकालनेके लिये कोशिश करने लगा। 'अच्छा मतलब और अच्छे साधन'-वाली कहावत उसने न सुनी थी, पर उसका मन स्वाभाविक रीतिसे ऐसे जौहरका बना था, कि उसे सदा अच्छा साधनही सूझता था। बहुतसे मनुष्योंकी ऐसी प्रकृति होती है, कि उन्हें सिवाय खोटे उपायोंके, अच्छे उपाय सूझतेही नहीं ; पर बुद्धिधन

की बुद्धि दूसरेही प्रकारकी थी, अच्छे मतलबके लिये हरेक उपायके अवलम्बन करनेमें उसे कोई दोष न दीखता था। अब उसे ऐसेही उपाय अवलम्बन करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। अब वह भूपसिंहके साथ राजनैतिक चर्चा नहीं करता था, बल्कि ऐशो-आरामकीही बात-चीत होती थी। सदाशिवको शराब पीनेकी आदत थी। बुद्धिधनने भूपसिंहको भी उसका साथी बनने दिया। सदाशिव पर-स्त्री-लम्पट और व्यभिचारी भी था। तटस्थ रहकर बुद्धिधनने भूपसिंहको सदाशिवके साथ इस व्यसन-में भी उसका साथी बना दिया। अब जागीरदार रात-दिन सदाशिवके घर पड़ा रहने लगा; सदाशिव दिनमें कचहरी जाता और रातको अपनी व्यभिचार-वृत्ति पालनेके लिये निकलता था। उस समय भूपसिंह सदाशिवकी स्त्री रमाबाईके साथ रहता था। बुद्धिधन अपना अनजानपन दिखानेके लिये भूपसिंहके घर जाता और घड़ी-दो-घड़ी उसका इन्तज़ार देखकर न मिलनेके कारण अफ़सोस करता हुआ वापस लौट आता था, पर उसकी बुद्धि सब कुछ देख रही थी। भूपसिंहकी स्त्री राजबा अबतक सती-साध्वी थी। बुद्धिधनके विषयमें उसके बहुतही ऊँचे विचार थे और दोनोंमेंसे एकके मनमें भी कुविचार न था। परन्तु, जब भूपसिंह-का अधिक समय बाहर बीतने लगा और उसने पतिके चरित्रके विषयमें निन्दा सुनी, तब उसके मनमें बड़ी ईर्षा उत्पन्न हुई। उसके मनने सलाह दी, कि अब वह स्त्री-धर्म पालन करनेके लिये बाध्य नहीं है; क्योंकि पतिने अपना पतिधर्म छोड़ दिया है। एक दिन बुद्धिधन बैठा था, पासही राजबा भी बैठी थी। बातें करते-करते एक बार उसने बुद्धिधनको टकटकी बाँधकर देखना शुरू किया। इसी समय बुद्धिधनकी दृष्टि उसपर पड़ी। थोड़ी

देरतक तो वह चुप रही; पर अब उसका मन चञ्चल होने लगा। दोनों खड़े हो गये। एक अलक्षित शक्तिके द्वारा दोनोंके हाथ एक हो गये। रगोंमें खून तेज़ीसे दौड़ने लगा और दिल धड़कने लगा, शरीर काँप उठा, विवेक दूर भाग गया। राजबाकी जो इच्छा थी, वह पूरी हुई। इस समय किसी तरहके खटकेकी आवाज़ हुई, दोनोंके हाथ पाँव-फूल गये। 'मैं कल आऊँगा' कहकर बुद्धिधन कुछ विचारमें पड़ गया। राजबाने किवाड़ खोले, बुद्धिधन चला गया। वह किवाड़ बन्द करके अपने पलङ्ग-पर बैठी। एकबार उसका हृदय काँप उठा; आँखोंमें आँसू भर आये, उन्हें पोंछकर वह चुप हो गयी; फिर उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानो उसका नया जीवन आरम्भ हुआ है।

बुद्धिधनने इस घटनाको अशुभ-सूचक समझा और शोकमें डूबा हुआ अपने घर आया। उसके हृदयमें पश्चात्तापकी आग जल उठी। अब उसने अपने हृदयमें पक्का विचार कर लिया, कि परस्त्रीके साथ एकान्तमें कभी न बैठूँगा। अब कल्पना-शक्ति जाग उठी और उसने गयी गुज़री बातोंको बुद्धिधनकी आँखोंके सामने खड़ा कर दिया। उसे राजबाका वह एकटक देखना, वे हाव-भाव और कटाक्ष, फिर खड़ी होकर उसका हाथ पकड़ लेना आदि घटनाएँ उसके सामने एक-एक करके खड़ी होगयीं। बुद्धिधन इन्हीं विचारोंमें डूबा हुआ घर पहुँचा। सबसे पहले उसकी मातासे भेंट हुई। बुद्धिधन रह-रहकर माताकी ओर देखता था। अपने नीच विचारोंके कारण, वह माताके पवित्र मुखको आँख उठाकर नहीं देख सकता था। जब वह सोनेके कमरेमें गया, तब पतिव्रता सौभाग्यदेवी हँसती-हँसती उसके सामने आयी और दोनों हाथ पकड़कर पतिके अङ्कमें माधवीलताके समान लिपट गयी। उस

समय बुद्धिधनको ऐसा मालूम होने लगा, मानो वह अपने स्पर्शसे उसे अपवित्र कर रहा है, और इसीलिये वह अपने हृदयसे उस परम पवित्र सतीको स्पर्श नहीं करना चाहता। रह-रहकर उसके मनमें यही बात उठने लगी, मानो मैंने अपने हृदयकी अधिष्ठात्री देवीका अपमान किया है। इसी प्रकार वह पश्चात्तापकी अग्निमें जलने लगा। थोड़ी देरतक वह उसके पवित्र, निस्तब्ध और सुन्दर मुखकी ओर देखता रहा। मस्तिष्कमें उठनेवाले विचार उसे दुःख देने लगे। यह बात उसके हृदयमें सहसा जाग उठी, कि यह भोली मूर्त्ति अभीतक नहीं जानती, कि मेरा पति दुष्ट है। फिर उसके मुखको देखते हुए, वह उसकी सुन्दरताका मिलान राजबासे करने लगा। उसे मालूम हुआ, कि सौभाग्यदेवीके सामने राजबा कोई चीज नहीं है। ऐसी नाचीज़ स्त्रीपर वह एक घड़ी भरके लिये मोहित होगया था, यह सोचकर उसे अपनी मूर्खतापर दुःख होने लगा। उसे आश्चर्य होने लगा, कि इस हंसिनीको छोड़कर मैं उस काकरूपापर थोड़ी देरके लिये ऐसा मोहित क्यों हो गया था? अन्तमें बुद्धिधनने सोचा, कि मेरे आदरकी सामग्री यही मेरी देवी है; इसीसे स्नेह करना चाहिये। यह सोचकर वह भी उसे प्रेमका बदला देने लगा। उस वक्त बुद्धिधनने सोचा, कि भूपसिंहके घर अब कभी न जाऊँगा और यदि जाना भी हुआ, तो राजबाके साथ अकेलेमें कभी नहीं बैठूँगा। ईश्वर जाने, क्यों बुद्धिधनका मन फिर पवित्र हो गया और वह पवित्रताके पवित्र सहवासमें आनन्द अनुभव करने लगा। धीरे-धीरे कोमल निद्राने आकर उसे अपनी गोदमें सुला लिया।

बुद्धिधन सपना देखने लगा, कि उसके 'हृदय-मन्दिर' नामक विशाल सिंहासनपर सौभाग्य-सुन्दरी बैठी है; उसके मुखसे

चन्द्रमाके समान एक विचित्र ज्योति निकल रही है। बुद्धिधन उस शान्त मुद्राकी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देखता था, देखते हुए उसकी आँखें तृप्त नहीं होती थीं। बाहर पचास-साठ राजबाकी प्रतिमूर्त्तियाँ अपनी प्यासी दृष्टिसे उसे देखती थीं। यह देखकर बुद्धिधन उन्हें हटानेके लिये बाहर चला। इसी समय उसकी आँख खुल गयी ; उसकी छातीपर सौभाग्यदेवीका कोमल हाथ था और वह मन्द-मन्द मुसकराती हुई मालूम होती थी।

दूसरे दिन सवेरा होतेही बुद्धिधन अपने नियमित काममें जा लगा। जब शामको भूपसिंहके घर जानेकी बात याद आयी, तब राजबाकी मूर्ति उसके मानस-चक्षुओंके सामने प्रत्यक्ष हुई। मनमें ज़रा उत्सुकताका संचार हुआ। पहले दिनकी बातें सपनेके समान याद आने लगीं। वह कपड़े पहनकर, बाहर हुआही चाहता था, कि इसी समय कोई बात पूछनेके लिये सौभाग्यदेवी उसके पास आयी। पतिव्रता सौभाग्यदेवीके पवित्र मुखको देखतेही तीव्र भावोंका प्रभाव दूर हो गया और उसने भूपसिंहके घर जाने का विचार छोड़ दिया। उस दिन वह दूसरी ओर चला गया। फिर उसके मनमें राजबाका विचार भी न आया ; किन्तु राजबा स्त्री थी—उसकी प्रकृतिमें आग्रह भी था ; इसके अलावा वह राजपूत कन्या थी, इसीलिये उसमें हिम्मतकी भी कमी न थी। वचन देकर भी बुद्धिधन न आया। उसने सोचा—आज कोई काम हो गया होगा—कल आयेगा। कल भी बीत गया, पर वह न आया। फिर तीसरा दिन भी बीता ; फिर भी वह दिखायी दिया। इसी प्रकार सात-आठ दिन बीत गये। एक दिन जब भूपसिंह रमाबाईके घर गया, तब राजबाने भी पुरुषका वेष बनाया और रातके आठ बजेके करीब बुद्धिधनके मकानपर

जाकर कहलाया, कि "भूपसिंके मित्र राजसिंह मिलनेके लिये आये हैं।" इस नये नामको सुनकर बुद्धिधनको कुछ आश्चर्य हुआ, पर अवसर न देखकर उसने कहा,—"आइये राजसिंह साहब! पधारिए।" उसे अपने साथ लिये हुए वह अपनी बैठकमें आया। वहाँ उसे यथोचित शिष्टाचारके साथ बैठा कर; बुद्धिधन उसकी सूरत देखकर अचम्भेमें आ गया। अन्तमें उसने कहा,—"मैं यह क्या देख रहा हूँ? तुम इस समय कैसे..... ?"

"बुद्धिधन! तुमने मेरे साथ अच्छा वर्त्ताव न किया। भूपसिंहको तो सदाशिवके घरसे सहायता मिल रही है और मुझे वचन देनेपर भी तुमने मदद न दी। यह क्या मेरे-तुम्हारे प्रेम—" इतना कहते-कहते राजवा रुक गयी और पुरुषोंकीसी अकड़ दिखाती हुई वह, स्त्री-सुलभ लज्जामें पड़ गयी—आँखें मिला-कर बात करनेका इरादा करके भी उसकी नज़र नीची हो गयी।

"राजसिंह, मेरी सहानुभूति तुम्हारे साथ है। भूपसिंहके कारण तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध है, पर भूपसिंहको अलग रख-कर तुम्हारे साथ सम्बन्ध रखनेमें हम दोनोंका भला नहीं है। तुम भूपसिंहको फिरसे अपने हाथमें लो और मैं तुम दोनों मित्रोंके अधीन हूँ। यदि भूपसिंह स्वयं तुम्हारी सहायता करे तो मुझे अधिक प्रसन्नता होगी।" बुद्धिधनने इतनी बातें बड़ी हिम्मत और बेशरमी दिखाकर कहीं।

"और तुम्हारा विश्वास? तुम्हारा वचन?"

"मैं इसके लिये दुःखी हूँ। भूलसे कहे हुए शब्द ठीक नहीं होते। मैं इससे भी बड़े एक वचनके कारण इस बातको तोड़ता हूँ।"

"पर क्या कुछ मेरे बारेमें भी सोचा ?"

"हाँ, तुम्हारे लिये मैंने सोचा है।"

"तुम ठीक कह रहे हो ? फिर सोच लेना।"

"हाँ, ठीक।"

"फिर सोच लो।"

"हाँ, सोच लिया है। राम राम—"कहकर बुद्धिधन घबराकर उठने लगा।

"हाँ, अब मैं तुम्हारा विचार समझ गयी !"—कहकर राजबाने बुद्धिधनका हाथ पकड़कर एक तकियेके सहारे बैठा दिया। इसके बाद वह उसके हाथको अपने हाथमें लेकर धीरे-धीरे दाबने लगी। बुद्धिधनने नीचेसे नज़र उठाकर उसके मुखपर डाली। उसने धीरेसे कहा,—"राजबा—बस, अब जाओ। मुझे भूपसिंहके द्वारा बुलवाना। मैं आऊँगा।"

"क्या डर लगता है ?" कहकर राजबाने आँखें तिरेरीं, जो तिरस्कारके साथ हँस रही थीं। अब वह बुद्धिधनके कन्धेपर हाथ रखकर उठी।

"डर तो ईश्वरका है। और किसीसे मैं नहीं डरता।"

निर्निमेष दृष्टिसे देखती हुई राजबा खड़ी हो रही। अन्तमें उसने कहा,—"ठीक है, परमेश्वरसे डरो। अब भूपसिंहके बुलानेपरही आना; पर याद रखो, मैं जब अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लूँगा तभी सच्चा राजपूत कहाऊँगा। अच्छा, अब मैं चला।" यह कहकर एकबार अपने शरीरसे बुद्धिधनके शरीरको रगड़ती हुई राजबा चली गयी।

पहले तो बुद्धिधनको इस घटनामें विचित्रता मालूम हुई, पर पीछे काम-काजमें लग जानेसे इसका स्मरण भी न रहा—मानो

कुछ हुआही न था। हाँ, उसने भूपसिंहके घर जाना सर्वथा बन्द कर दिया। अतएव यह बात कानोंकान सुवर्णपुरतक पहुँच गयी, कि भूपसिंह और बुद्धिधनकी मित्रता टूट गयी। लोग हज़ार मुँहसे इसके हज़ार कारण बताने लगे; उनमें किसकी राय ठीक थी, सो नहीं कहा जा सकता। जब दोनों मित्र रास्तेमें मिलते, तब सिर्फ़ सलाम-बन्दगी हो जाती थी।

अब बुद्धिधनके मनमें यह आवश्यक जँचने लगा, कि भूपसिंहको सदाशिवसे जुदाकर अपने तावे करना चाहिये। अब उसे मालूम होने लगा, कि इन दोनोंका सम्बन्ध कराकर मैंने बुद्धिमानीका काम नहीं किया। इसी छोटीसी घटनासे उसने यह निश्चय कर लिया, कि संसारमें किसीका विश्वास न करना चाहिये, किसीको अच्छा और दूधका धोया न समझना चाहिये और अपने विचार किसीके भी सामने प्रकट न करने चाहियें। अब अपना काम सिद्ध करनेके लिये उसने जागीरदारको हाथमें लेनेकी आवश्यकता,पर साथही उसे अपना न समझनेका निश्चय, मन-ही-मन कर लिया था। इसी घटनासे उसने यह शिक्षा ले ली, कि किसीको खोटे रास्ते न चलाना चाहिये; सम्भव है, कि चलनेवाला अपनी शक्तिसेभी आगे बढ़ जाये! ऐसा होनेसे लगाम अपने हाथमें नहीं रह सकती। कदाचित् लगाम भी अपने हाथमें रहे, तो भी सम्भव है, कि उसे फिर सुमार्गी बनानेके लिये अपने आपको भी नीचे उतरनेकी आवश्यकता हो; पर यह बात बुरी है। यदि बुद्धिधन राजबाकी इच्छाके अनुसार चलता, तो भूपसिंहको अपनी उङ्गलीके इशारेपर नचा सकता था; परन्तु यह विचार उसके अन्तःकरणसे पारेकी तरह फिसल जाता था।

एक दिन बुद्धिधन कचहरी जा रहा था; उसने देखा, कि

उससे कुछ आगे भूपसिंह भी जा रहा है। बीचमें सदाशिवका घर पड़ता था। वहाँ खिड़कीके किनारेपर रमाबाई बैठी थी। नीचे आकर उसने झट दरवाज़ा खोला और भूपसिंह भीतर चला गया। इसके बाद दरवाज़ा बन्द हो गया। बुद्धिधनने उसकी इस दशापर लम्बी साँस ली और आगे चल पड़ा। कचहरीमें जाकर वह बैठा, किन्तु उसका हृदय शान्त नहीं था। इसी समय साहबने आवाज़ दी,—"बुद्धिधन!"

बुद्धिधन उठकर साहबके पास गया।

साहब टेबिलके सहारे कुरसीपर बैठे थे; पाइप उनके मुँहमें था। टेबिलकी दूसरी ओर कुरसीपर सदाशिव एक रजिस्टर लिये बैठा था।

मुँहका पाइप हाथमें लेकर धुआँ छोड़ते हुए साहबने कहा,—"बुद्धिधन! तुम्हें मालूम है, कि सुवर्णपुरके जागीरदारको राणाजी कौनसे साल अधिकार देनेवाले हैं?"

बुद्धिधनने ज़रा थमकर कहा,—"सदाशिवपन्त! तुम जो रजिस्टर देखनेके लिये अपने घर ले गये थे, उसीमें यह बात लिखी है। तारीख़ भी उसीमें होगी।"

साहब,—"जाओ, आदमी भेजकर रजिस्टर मँगाओ।"

सदाशिवने बड़ी नरमीसे कहा,—"साहब! आज मैं उसे आफिसमें तलाश करता हूँ; यदि यहाँ पता न चला, तो कल घर भी देखता आऊँगा।"

साहब,—"नहीं, नहीं, अभी आदमी भेजो या तुम स्वयं जाकर ले आओ।"

सदाशिव,—"बुद्धिधन! मेरे घर किसीको भेजदो।"

बुद्धिधनको एक मौक़ा मिला। निर्भयराम नामक एक

अहलकार, बड़ा ढीठ, बहुत बोलनेवाला, बेशरम और लोगोंकी दिल्लगी उड़ानेवाला था। रमाबाईको स्वतन्त्रता देनेके कारण, वह सदाशिवकी सदा हँसी उड़ाया करता और महाराष्ट्र लोगोंसे जलता था। इतनेपर भी वह काम करनेमें बड़ा उस्ताद था, इस-लिये सब कुछ सहकर भी पन्त उसे कुछ नहीं कहता था और सदा अपनाही समझता था। बुद्धिधनने सदाशिवके घरसे रजिष्टर लानेके लिये निर्भयरामको भेजा। निर्भयरामने सरि-श्तेदार साहबके घर जाकर देखा, तो किवाड़ बन्द पाये। किसीको बुलानेकी अपेक्षा वह किवाड़ोंको सन्धिसे आँखें लगा-कर भीतर देखने लगा। उसने भूपसिंहको भीतर देख लिया। निर्भयराम दबे पाँव वापस लौट आया और जो कुछ देखा था, सो बुद्धधनसे कहा और अब सदाशिवसे कहनेके लिये चला। उस समय सदाशिव दूसरे कामके लिये अन्यत्र गया हुआ था। निर्भयराम वहीं जाकर उसके सामने खड़ा हुआ। वह हृदयसे प्रसन्न था, पर ऊपरका भाव उसने ऐसा बना लिया था, मानो क्रोधसे उमड़ा जा रहा है; उसके मुँहतक कोई बात बार-बार आकररुक जाती है। अन्तमें बहुत कुछ नमक-मिर्च लगाकर उस-ने सब समाचार सदाशिवसे कहा। सारा हाल सुनकर सदा-शिवका चेहरा ताँबेकी तरह लाल हो उठा; उसका सिर घूमने लगा। अन्तमें निर्भयरामने कहा,—"बुद्धिधनसे पूछो, वही कोई उपाय बतायेगा। मेरे तो मनमें आ रहा है, कि बदमाश भूपसिंहका सिर अभी जाकर तोड़ दूँ।" पर बुद्धिधन अपने मनमें सोचता था, कि यह बहुतही अच्छा हुआ; अब देखो क्या नया गुल खिलता है। अस्तु; निर्भयरामके पूछनेपर घबराये हुए सदाशिव-क बुद्धिधनने सलाह दी,—"दस्तावेज और रजिस्टर ढूँढनेका

बहाना करके पहले घर चलो।" बुद्धिधनकी बुद्धि काम कर गयी। रजिस्टर तलाश करनेके लिये सदाशिव, बुद्धिधन और निर्भयराम तीनों घर आये। सरिश्तेदार क्रोधसे पागल हो गया था; उसने अपने साथ दो-तीन सिपाही भी ले लिये। सबने बारी-बारीसे भूपसिंहको देखा। सदाशिव अपने पड़ोसीके घर-पर चढ़कर अपने घरमें उतरा, बाक़ी और लोग भी उसके साथ थे। अब सब मकानकी छतपर पहुँच गये थे। सदाशिवका मुँह पीला पड़ रहा था और आँखें क्रोधसे लाल हो रही थी। निर्भय-राम सबसे पीछे रह गया और उसने बुद्धिधनके कानमें कहा,—"देखो मेमसाहबाकी स्वतंत्रता! साहबके साथ बैठी आनन्द मना रही हैं।"

छतपर लोगोंके पहुँच आनेसे, पैरोंकी धमक और मनुष्यका कण्ठस्वर सुन रमाबाईकी मोह-निद्रा टूटी। उसने भूपसिंहसे भी यह बात कही। जागीरदार चौंक उठा। पहले तो वह एक-बारही पीला पड़ गया, फिर चेहरा लाल होगया और मूँछोंपर हाथ फेरते हुए उठ खड़ा हुआ। उसने एक हाथसे रमाबाईको अपनी ओर खींच, दूसरे हाथसे तलवार म्यानसे निकाल ली। उसने कड़ककर कहा,—"डरो मत रमा! यदि सदाशिव मेरे पास आ जायेगा, तो उसे ठोकर मारता हुआ तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा और राजबाके साथ रखूँगा। मेरी यह तलवार अचल है।" सदाशिवका क्रोध उतर गया; वह डरसे थर-थर काँपता हुआ बुद्धिधनके मुँहकी ओर देखने लगा और उसकी यह दशा देखकर बुद्धिधनको सचमुच दया हो आयी।

"सदाशिव! तुम इस समय बुद्धिमानीकी चाल चलो। शक्तिमें तुम जागीरदारसे न जीत सकोगे और यहाँ तुम्हारी बद-

नामी होनी भी अच्छी नहीं। जो कुछ देखा है, उसपर धूल डाल दो और चुपचाप उतर चलो। लोगोंसे कह देना, कि कुछ सन्देह था, पर वास्तवमें कुछ भी नहीं है। यहाँसे महीने दो महीनेकी छुट्टी लेकर अपने देश चले जाना और वहाँ रमाबाईके लिये जो कुछ उचित मालूम हो करना। पर अभी चुपचाप उतर चलो।" डरपोक सदाशिवने बुद्धिधनका कहना मान लिया और घरसे चुपचाप नीचे उतर आया। बहुतसे लोग इकट्ठे हो गये थे। रमाबाईने खिड़की खोलकर सबको देखा, उनमें उसने सदाशिवको भी देखा। सब लोग 'हो हो' करके हँसते हुए अपने-अपने घर चले गये। जब रास्ता सूनसान हो गया, तब रमाबाईने दरवाज़ा खोला और भूपसिंह चुपचाप अपने घर चला गया; वहाँ वह राजबापर पहलेकीसी हुकूमत चलाने लगा, पर राजबाने आज उसकी एक न सुनी। आज उसने निश्चय किया था, कि बुद्धिधनको ज़रूर बुलवाकर रहूँगी।

"ज़रा कली ताज़ी करके हुक्का भरना।"

"इस कामके लिये मैं, और-और कामोंके लिये दूसरी!" यह कहकर राजबा रोने लगी और उसकी आँखोंसे आँसू टपककर नीचे गिरने लगे।

"यह क्या!"

"मैं क्या बताऊँ! बुद्धिधन जैसे भले मित्रकी मित्रता जबसे तुमने छोड़ी है, तबसे जागीर पानेकी आशा तो चूल्हेमें गयी, ऊपरसे उस लुच्चे सदाशिवकी सुहबत लगी है!"

"हाँ, और!"

"और क्या, अब मुझसे तो तुम्हें काम हैही नहीं। भला मैं उस दक्खिनी राँडके समान रूपवाली कहाँसे बनूँगी!"

एक ओर ऐसी बातचीत शुरू हुई, दूसरी ओर सदाशिवने साहबसे छुट्टी माँगी। आफिसमें और किसी योग्य मनुष्यके न रहनेके कारण, साहबने छुट्टी देनेसे आनाकानी की। सदाशिव समझता था, कि बुद्धिधन अपनाही है, इसलिये उसने उससे अपनी जगह काम करनेकी प्रार्थना की और बुद्धिधनने ऐसा भाव दिखाकर मानो उसपर एहसान करता हो, स्वीकार कर लिया! साहबने भी इसे स्वीकार किया। बुद्धिधन मानो अपने सङ्कल्पकी एक सीढ़ी चढ़ गया।

अब भूपसिंह अकेला रह गया। रमाबाई अपने पतिके साथ देश गयी। राजबा पतिके किसी काममें भाग नहीं लेती थी। सदाशिव और रमाबाईके साथ उसका बहुत कुछ धन बरबाद होगया था; अब उसे अपनी जागीरकी सुध आयी। जागीरकी यादके साथही बुद्धिधन भी याद आया। अब भूपसिंहको फिर बुद्धिधनकी सहायताकी आवश्यकता हुई, पर अपनी टेक छोड़कर फिर उससे अपने मतलबके लिये मिलना उसे मरनेसे भी बुरा मालूम हुआ। तथापि राजबा तो बुद्धिधनको फिर बुलानेके लिये हाथ धोकर पीछे पड़ी थी। उसने यह समाचार "मसाने" भेजा। वहाँसे भामाने भूपसिंहको कहला भेजा, कि "बुद्धिधनसे मित्रता कर लो। वह अब बड़े साहबका सरिश्तेदार हो गया है। ऐसे बावले बनकर बैठे रहने और दिन बितानेसे काम न चलेगा।"

आजकल भूपसिंहका उठना-बैठना घरमेंही होता था और राजबा अपनी बात सुनानेसे कभी न चूकती थी। वह सुना देती थी, कि वह तुमसे ऊपर है और उसीसे काम पड़ेगा। अन्तमें राजबाकीही जीत हुई। मानी भूपसिंह अपने मानको

छोड़कर फिर बुद्धिधनके पास जाने-आने लगा। इसी समय अचानक किसी रोगके कारण राजबा बीमार हुई और दो-तीन दिनमें इस लोकसे विदा हो गयी। अब निर्भय होकर बुद्धिधन भूपसिंहके घर जाने-आने लगा। दोनोंका सम्बन्ध फिर पूर्ववत् हो गया, पर बुद्धिधनकी उस्तादीसे इसबार यह बात प्रकट न होने पायी।

इस समय लीलापुरमें आये बुद्धिधनको पाँच वर्ष हो चुके थे। उसके एक सालभरकी कन्या थी। पड़ोसमें एक बङ्गाली आकर रहा था; उसकी स्त्रीका नाम सबको अटपठा, पर सुन्दर, मालूम होता था। उसीके नामपर इस कन्याका नाम 'अलककिशोरी' रक्खा गया। इसके थोड़े दिन बाद एक पुत्र हुआ, उसकी राशिके अनुसार नामका पहला अक्षर 'प' होना चाहिये था; इसलिये पुत्रका नाम 'प्रमादधन' रक्खा गया। पुत्र दिनभर अपनी दादीकी गोदमें सोता रहता था, इसलिये सबको यह नाम जँच गया। पुत्रको सरिश्तेदारी करते देखकर माताकी आत्मा शान्त हुई थी। वह बेटे, पोते और बहूको सुखी देख इस संसारसे चल बसी!

माताके मरनेसे दोनों स्त्री पुरुषोंको बड़ा दुःख हुआ। पर बेटेको कचहरीके कामसे और बहूको बच्चोंके लालन-पालनसे अवकाश नहीं था; इसलिये शोककी छाया, उस घरसे शीघ्रही उड़ गयी। बुद्धिधन समझता था, कि विना माताके बच्चोंकी बाल्यशिक्षा भलीभाँति न होगी; किन्तु उसे स्वयं अवकाश नहीं था। उसकी स्त्री पतिव्रता और दयावती थी; पर संसारके व्यवहारका उसे ज़रा भी ज्ञान न था। उसने अबतक सारे काम सासकी आज्ञाके अनुसारही किये, पर कभी ऐसा अवसरही नहीं

आया था, जो वह बच्चोंकी परवरिश करना सीखती। सौभाग्य-देवी बिलकुल सीधी, सादी और सबपर विश्वास करनेवाली थी। वह सारे संसारको अपनी सास और पतिके समानही मनुष्योंसे भरा हुआ समझती थी, इसलिये उसके पालन किये हुए बच्चोंमें व्यवहार-ज्ञानका न होना स्वाभाविक था। वह स्वभावसेही पतिव्रता थी। वह समझती थी, कि संसारका रथ हमारीही तरह चल रहा है, उसमें और धक्का लगानेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसी स्त्रीको पाकर बुद्धिधन अपने आपको धन्य समझता था। सरिश्तेदारीका पद और घरमें ऐसी स्त्रीका विश्वास, इन दोनोंने बुद्धिधनके जीवनको स्वर्गीय आनन्द दिखाया था। सचमुच बुद्धिधनके ये दिन जैसे आनन्दमें कट रहे थे, वैसे दिन अब तक उसे कभी नसीब न हुए थे। कचहरीसे आकर छोटे बच्चोंको खिलाते, रात्रिमें उनके सुन्दर मुखको देखते, सवेरे ठण्डी हवाके झोकोंमें उन बच्चोंको जगाते और उनकी मन्द मुसकराहट देखते हुए जो अनिर्वचनीय आनन्द उसे प्राप्त होता था, वैसा आनन्द बुद्धिधनको आजतक कभी नहीं प्राप्त हुआ था। ऐसे सुन्दर दिन फिर नसीब न होंगे, इस बातको बुद्धिधन सोचता और समझता था तथा इस आनन्दका अनुभव करनेके लिये वह सुकुमार बालकोंको आलिङ्गन करता था।

सदाशिवपंत यहांसे छुट्टी लेकर गया था, पर वहां उसने अच्छी नौकरी तलाश कर ली। वस्किन साहबने उसे एक अच्छा सर्टिफिकेट दिया और बुद्धिधनको उस जगहपर पक्का कर दिया। बुद्धिधन और भूपसिंहके सम्बन्ध टूटनेकी बात सुवर्णपुरमें फैल चुकी थी और वहांवालोंने इसे बहुत अच्छा समझा। अब बुद्धिधन उसी मण्डलसे अपना मेल-जोल बढ़ाने लगा।

समय-समयपर नये सरिश्तेदार साहब सुवर्णपुर जाने लगे और वहांके दीवान-अमले उनका सम्मान करने लगे—साथही भेट-पूजा भी होने लगी। अब दुष्टराय उसकी सबसे बढ़कर खुशामद करने लगा और दरबारमें जड़सिंहके बराबर, शठरायसे उसे ऊँची जगह मिलने लगी। समय-समयपर वह इन सबसे धन लेता था और इन दुष्टोंसे धन लेनेमें उसे कुछभी दुःख नहीं होता था; बल्कि, इस प्रकार वह सुवर्णपुरके राज-परिवारके बहुतसे गुप्त भेद जान लेता था। इन लोगोंसे जो धन उसे मिलता, उसका उपयोग वह ऐसेही कामोंमें करता था। पर शठरायका पूरा विश्वास अभीतक उसपर नहीं हुआ था।

जड़सिंहका एक मूर्ख पुत्र पर्वतसिंह था। शठराय उसे उसकी पैदाइशका भेद खोल देनेकी धमकी देकर अपने वशमें रखता था, पर वास्तवमें इस बातसे वह नाराज़ रहता था। शठरायके प्रथम दीवानका बेटा गड़बड़दास इस झमेलेकी जड़ था। वह पर्वत-सिंहको साधे हुए था। वह कभी पर्वतसिंहको बहकाकर और कभी रनिवासमें रानियों और बाँदियोंसे कह-सुनकर शठराय-के विरुद्ध झगड़ा उठवा देता था। इन्हीं लोगोंने बुद्धिधनको साधकर अपने हाथमें करना चाहा। बुद्धिधनने शठरायसे कहा, कि सुवर्णपुरके सिंहासनपर भूपसिंहको बैठानेमें पर्वतसिंहही सबसे बड़ी रुकावट है। बस, इसी समयसे शठराय बुद्धिधनका पूरा विश्वास करने लगा। अब वह अपनी छिपी बातोंमें उससे सलाह लेने लगा और दरबारसे उसे खूब घूँस दिलवाने लगा। अन्तमें शठरायने पर्वतसिंहका नाश कर दिया और गड़बड़-दासको भी एक ओर कर दिया। गड़बड़दास बुद्धिधनको अपना आदमी समझता था; क्योंकि उसका भेद इसे मालूम था,

इसलिये वह अपनी बातें और शठरायकी बातें उसे सुना दिया करता था। उधर शठराय समझता था, कि बुद्धिधन मेरी ओर है और वह गड़बड़दाससे केवल उसके पेटका भेद लेनेके लिये घनिष्टता रखता है। बुद्धिधन इन दोनों बदमाशोंको ठगनेमें पाप नहीं समझता था ; क्योंकि वह "शठंप्रति शाठ्यं कुर्यात्" वाली नीतिके अनुसार चल रहा था।

जब पर्वतसिंह स्वर्गवासी होगया, तब राणाजीके लिये दूसरे पुत्रके प्राप्त करा देनेकी चिन्ता दीवान और अमलेको हुई। रसायन-धातु और जली हुई दवाइयाँ खिलाकर उन लोगोंने राणा जड़सिंहको पहलेही पुरुषत्वहीन कर दिया था ; इसलिये कई रानियोंके होते हुए भी उसे अपने औरससे सन्तान पैदा होनेकी आशाही न थी। और जो किसी रानीसे उसके यारके द्वारा सन्तान होजाये, तो राज्यमें उन दोनोंका दबदबा बढ़ जाये; इसलिये राणाकी ऐसी इच्छा थी, कि कोई मूर्ख बेटा हो, जिसे वह अपनी मुट्ठीमें रख सके। यह बात बुद्धिधनके कानमें पड़ गयी थी, पर दीवान या अमलेकी मारफ़त यह बात न आयी थी। भूपसिंहके साथ प्रकटमें बुद्धिधन सम्बन्ध नहीं रख सकता था और उसे दूसरेके हाथमें सौंप देना, खोदेना था ; क्योंकि इस बातका वह अनुभव पहले कर चुका था। मंत्रिमण्डलसे ऊपरसे मित्रभाव दिखानेकी आवश्यकता थी, पर काम उसके विरुद्ध करना था। गड़बड़दास जब किसी कामसे लीलापुर आया, तब वह बुद्धिधनसे मिला और फिर दोनों आदमी भूपसिंहसे मिले। गड़बड़दासने कहा, कि रानीकी इच्छाके विना जारसे पुत्र नहीं हो सकता, पर इस विषयकी बातचीत पटरानीसे होरही है। अब बुद्धिधनने भूपसिंहके लिये कहा। गड़बड़दासने

सोचा, कि अब पर्वतसिंह तो हैही नहीं, इसलिये वह भूपसिंहके लिये गुप्त दूतका काम करनेको राज़ी होगया। बुद्धिधन भी इससे खुश हुआ, कि गड़बड़दास भूपसिंहसे दूर रहकर काम करेगा।

जड़सिंहकी पटरानी एक ऊँचे कुलकी थी और वह मंत्रिमण्डलकी गड़बड़ अधिक पसन्द न करती थी। पर अन्तमें वह लोभमें फँसही गयी और लोगोंमें प्रसिद्ध होगया, कि वह गर्भवती है। भूपसिंह और गड़बड़दास साहबके पास बालाबाला अर्ज़ियाँ भेजने लगे, कि रानीका गर्भ राजासे नहीं है। इधर मन्त्री लोग छाती ठोंककर इस बातको साबित करनेके लिये तैयार थे, पर उनका दिल काँपता था। एक बार शठराय किसी कामसे लीलापुर आया और उसने बुद्धिधनकी परीक्षा करनेके लिये गड़बड़दास और भूपसिंहकी अर्ज़ियोंकी बात उठायी। इसपर बुद्धिधनने कहा,—"हाथीके पीछे योंही कुत्ते भूँका करते हैं। यह तो सच हैही, कि अपनी बात सच है; पर सचमुच यदि कहीं ऐसा करना भी पड़े, तो फिर अपना भी तो स्वार्थ है।" इस बातसे शठरायको कुछ भेद न मालूम हुआ और वह बुद्धिधनके विषयमें, पहले जैसा अन्धेरेमें था, वैसाही अब भी रहा।

भूपसिंहकी जागीर अबतक दरबारके अधीन थी। भूपसिंह और उसकी बहनके विवाहमें, उसके माता पिताके क्रिया-कर्ममें, और कई वर्ष तक अकाल हुआ था, इसमें, उसी प्रकारके और कई बहाने निकालकर जड़सिंहका दीवान भूपसिंहकी रियासतके जिम्मे दरबारका कर्ज़ निकालता था। इसी अवसरपर अपनी जागीर वापस पानेके लिये भूपसिंहसे बुद्धिधनने साहबको अर्ज़ी दिलवायी। जागीरके लिये भूपसिंहकी दी हुई अर्ज़ी बुद्धि-

धनने शठरायको दिखायी। बहुत कुछ 'हाँ' और 'ना' के बाद बुद्धिधनको सुवर्णपुरके दरबारसे पचास हज़ारकी भेंट मिली और उसे इस बातके लिये राज़ी किया गया, कि वह भूपसिंहको जागीर न मिलने दे। बात-ही-बातमें सुवर्णपुरके मन्त्रीने यह भी समझा दिया था, कि वास्तवमें आमदनी क्या थी और ख़र्चको बढ़ता हुआ दिखाकर, उलटा कर्ज़ किस प्रकार दिखाया गया था, बुद्धिधनने इस बातको अच्छी तरह समझ लिया। साहबको हिसाब समझाया, कुछ और भी इधर-उधरकी सुझायी और अन्तमें यह फ़ैसला बहाल रहा, कि जागीर अभी पाँच साल तक दरबारकेही मातहत रहे। वह पचास हज़ारकी रक़म भूपसिंहको राज्य दिलानेके लिये ख़र्च की जानेवाली थी; इसलिये इस फ़ैसलेसे उसने ज़ाहिरा बड़ाही असन्तोष दिखाया, पर मनमें प्रसन्न था।

शठरायने यह सिद्धान्त बनाया था, कि बुद्धिधन और भूपसिंहमें कोई रिश्ता तो हैही नहीं, अतएव बुद्धिधन केवल धनके द्वारा जीता जा सकता है। अब सरिश्तेदार साहब, जब कभी सुवर्णपुर पधारते, तभी शठराय उन्हें अपने घरपर भोजन कराता, बड़ी ख़ातिर करता और बहुत कुछ बातें बनाता था। इसी प्रकार सुवर्णपुरके सब अमले बुद्धिधनको मानते थे। धीरे-धीरे दीवान साहबके घरवालोंको और उनकी बहुतसी गुप्त बातोंको बुद्धिधन जान गया। निर्भयराम भी उसके साथ आता था और उस घरके एक-एक छिद्रको ढूँढ़ा करता था।

शठरायकी बेटी ख़लकनन्दा बहुत सुन्दरी थी। जब ख़लकनन्दा अपने श्वसुरके यहाँ जाती, तब उसे पहुँचानेके लिये पालकीके साथ एक जमालख़ाँ नामक सिपाही जाता था। यह

जमालख़ाँ गीत गाता और चित्रकारी करता था। उसकी शारीरिक टीपटाप भी कम नहीं थी। सासरे जाती हुई ख़लकनन्दा कभी-कभी रास्तेमें जमालख़ाँके घर भी घड़ी-दो-घड़ीके लिये ठहर जाती थी। कभी-कभी वह मरदानी पोशाक पहनकर जमालख़ाँको अपने साथ लिये हुए घूमने भी जाती थी। बेटीका यह हाल था। अब बेटेको सुनिये। बेटा दुष्टराय फ़ौजदार था, इसलिये उसे कभी-कभी गश्त लगानेके लिये जाना पड़ता था, या किसी गाँवमें चोरी, लूट तथा ख़ून होता, तब उसे वहाँ कई दिन भी लग जाते थे। उस समय उसकी सुन्दरी बहूके साथ 'मेरुला' नामक राजपूत सिपाही रहा करता था। जब घर सून-सान हो जाता, तभी दुष्टरायके ख़ास कमरेमें मेरुला विराजमान हो जाता था। पर-छिद्रान्वेषी निर्भयरामने दीवान साहबके घरका यह सब कच्चा चिट्ठा जान लिया और सारा हाल बुद्धिधन-को सुना दिया। जिन दोनों नौकरोंको दोनों स्त्रियोंने अपना सतीत्व अर्पण किया था, वे दोनों दीवान और उसके बेटेके बड़े विश्वासी थे। जमालख़ाँपर शठरायका और मेरुलापर दुष्टराय-का पूरा भरोसा था ; इसलिये जब पटरानीके हमलके दिन पूरे होनेको आये, तब एक लड़का तलाश करनेका काम इन्हीं दोनों विश्वासी नौकरोंपर छोड़ा गया। जमालख़ाँ और मेरुला एक दूसरेको देख जलते थे और इस काममें वे और भी एक दूसरेसे ऐंठ गये। जमालख़ाँने एक मुसलमानका लड़का तलाश किया और मेरुलाने एक कोलनका। शठरायके पास जमालख़ाँकी अधिक चलती थी और उसका तलाश किया हुआ लड़का ज़रा ख़ूबसूरत भी था, इसलिये वही पसन्द किया गया—मेरुलाकी हार हुई।

बुद्धिधनकी सूचनाके अनुसार गड़बड़दासने इन दोनोंसे जान-पहचान कर ली थी। एक दिन मेरुला निराश होकर बैठा था, गड़बड़दासके साथ बातों-ही-बातोंमें, लालचमें पड़कर उसने सब भेद खोल दिया। गड़बड़दास लीलापुर आया और उसने इन सब बातोंकी सूचना बुद्धिधनको देदी। फिर यह सलाह ठहरी, कि अब समय खोना उचित नहीं है। साहबके पास अर्ज़ी भेजी गयी, जिसमें भूपसिंहने 'इन्तज़ाम' माँगा था। साहबकी आज्ञा और सवार मिलतेही भूपसिंह और गड़बड़दास सुवर्णपुर, जड़सिंहके महलपर जा पहुँचे। वहाँ साहबका परवाना दिखाकर, उन्होंने राजा जड़सिंहसे एकान्तमें भेंट की। उसे समझाया,—"साहबको सब ख़बर हो गयी है। यदि तुम इस काममें शामिल होगे, तो गद्दीसे उतार दिये जाओगे। तुम्हारे मरनेके बाद गद्दी चाहे किसीको मिले, इसकी तुम्हें क्या चिन्ता है? तुम्हारे भाई-बेटोंको छोड़कर एक मुसलमानको गद्दी मिले, यह तुम्हारे लिये इस लोक और परलोकमें भलाईका काम नहीं है। और मानलो, कि कल सचमुच तुम्हारेही बेटा हो जाये, तो उसे एक ओर बैठाकर तुम्हें उस दुष्टको गद्दी देनी पड़ेगी। अब जो कुछ उत्तर देना हो, शीघ्र दो।" जड़सिंह साहबका नाम सुनकर घबरा उठा। उसने कहा—"इस बारेमें मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं दीवानसे पूछूँगा और जो कुछ कच्चा हाल होगा, सो सब लिख भेजूँगा। भूपसिंहसे बढ़कर मुझे कोई मुसलमानका लड़का प्यारा नहीं हो सकता। जो कुछ मुझसे हो सकेगा, सो सब मैं करूँगा।"

गड़बड़दास,—"पर सब कुछ आज रातमेंही पक्का हो जाये, तो कैसा?"

जड़सिंह,—"भाई! मैं दीवानसे पूछूँगा। और क्या करूँ?"

गड़बड़दास,—"तो ख़ास तुमसे कुछ नहीं हो सकता?"

जड़सिंह,—"मैं ख़ास क्या पुलिसका काम करूँ? तुम दीवानसे मिलो।"

पर वे दीवानसे बिना मिले ही, लीलापुर वापिस चले गये। सुवर्णपुरमें चारों ओर चर्चा होने लगी। उसे सुनाकर घबराया हुआ दीवान राजमहलमें आया। राणाजीने दीवानसे सब बातें कहीं। दीवानने सोचा, कि उनका यों आना और जाना, ठीक नहीं हुआ; इससे सन्तोष नहीं होता। क्योंकि लीलापुर कोई पास तो था ही नहीं, उधर गड़बड़दासने पहुँचकर बुद्धिधनसे सब समाचार कहे। बोले,—"यह तो तुम जानतेही हो, कि राणा अपने आप कुछ नहीं कर सकता। मुसलमानका नाम उसके मुँहसेभी निकल गया। बात बिल्कुल ठीक है। वहाँ अधिक ठहरनेमें लाभ न देख, हम वापिस लौट आये।"

उसी समय शठरायका एक सवार आया। उसने अपना सलाम कहला कर बुद्धिधनसे अकेलेमें मिलना चाहा। बुद्धिधनने उससे साफ़ कह दिया,—"मुझसे अब इस मामलेमें हाथ नहीं डाला जाता। राणाजीने दीवानसे मिलकर कुछ गोलमालकर मुसलमान बच्चोंका इन्तज़ाम किया है, पर साहबको यह भेद रत्ती-रत्ती मालूम हो गया है। अब ख़ैर इसीमें है, कि शठरायने जो जाल फैलाया है, उसे समेट ले।" यह ख़बर लेकर वह आदमी चला गया। बुद्धिधनसे दो हज़ार रुपये लेकर गड़बड़-दासने मेरुलाको दिये और उससे उस मुसलमानिनके घरका पता पूछ लिया। दो-तीन सवार छिपाकर उसके घरके पास रखे गये और गड़बड़दास, भूपसिंह तथा चार-पाँच सवार

रानीके महलके पास दुबके रहे। दीवान घबरा गया। उसने सोचा, कि अधिक समय वितानेसे, अधिक खोज होगी और फिर सब लोग इस बातको जान जायेंगे, शायद खुद साहब इसकी जाँच-पड़ताल करने आयें और फिर न मालूम क्या परिणाम हो। इसलिये उसने दो दिनके बाद यह खबर उड़ा दी, कि रानीके मरी हुई लड़की पैदा हुई है। अब राणाजीके गोद लेनेका विचार होने लगा।

इसी समय राणा जड़सिंहको वस्किन साहबका ख़त मला। उसमें यह लिखा था :—

"सब कुछ सुनकर मुझे सख़्त अफ़सोस हुआ है। मुझे इस बातके ज़बर्दस्त सुबूत मिले हैं, कि अपने दीवानके रचे हुए जालमें आप भी शरीक थे। इस बार मैं इस मामलेको यहीं तय करता हूँ,पर याद रखिये, यदि फिर कभी कोई ऐसी कार्रवाई हो गयी, तो मुझे मजबूर होकर इसकी तमाम कैफ़ियत गवर्नमेण्टके पास भेजनी होगी ; फिर आपकी तक़दीरमें जैसा होगा, वैसा फ़ैसला हो जायेगा। अबसे मैं इत्तिला देता हूँ, कि आपके यहाँ जब किसी रानीके हमल रहे, तब उसकी इत्तिला ऐजेन्सीमें भिजवा दिया कीजिये। इस बारेमें अगर ढील की जायेगी, तो आपपर शक बढ़ जायेगा, उस हालतमें यह मामला मैं गवर्नमेण्ट को दे दूँगा। मुझे उम्मीद है, कि आप इस बारेमें अपने दीवानको अच्छी तरह चिता देंगे। इस ख़तकी नकल, एजेन्सीके ख़ास दफ़्तरमें रखी रहेगी।"

इस पत्रसे राजा और मन्त्रिमण्डल काँप उठा। फिर इसके कई जवाब दिये गये, पर इसका आतङ्क सबके हृदयपर अच्छी तरहसे जम गया।

दीवानके सारे गुप्त भेद बुद्धिधनको गड़बड़दासके द्वारा मिलते रहते थे और शठरायने जो उसे रुपया दिया था, वही इन सब कामोंमें लगाया गया था। अब किसी कुँवरको गोद लेनेकी बातें सोची जा रही थीं, पर इसी समय अपनी मौतसे या किसी षड्यन्त्रसे राणा जड़सिंह मर गया। यह खबर लीलापुर पहुँची और वहाँसे रियासतपर सरकारी बन्दोबस्त हो गया। रानियोंके महलों, खज़ाने और राजके दफ्तरोंमें सरकारी सील लगायी गयी। अब भूपसिंहके राजा बनानेका जाल रचा गया। उसके फूटे घरके सामने चोबदार और अहलकार दोनों समय सलाम करने लगे। अपने पहलेके अपराध क्षमा करानेके लिये, दीवान शठराय बुद्धिधनकी खुशामद करने लगा। गड़बड़दासकी खूब चलने लगी। सम्पत्तिका सूर्य उगता देखकर बुद्धिधनको उसका नशा नहीं चढ़ा, वह वैसाही गम्भीर बना रहा और अपना काम करता रहा। वह लोभके वशमें न पड़ा, उसने किसी काममें जल्दी न की, और दौरदौरेके अभिमानने उसे न दबाया। वह उसी गम्भीरतासे अपना काम करता रहा। भूपसिंह और बुद्धिधनका क्या सम्बन्ध है, इसे सिवा इन दोनों मनुष्योंके और कोई न जानता था। सबकी आँखोंके सामने वह कोरा सरिश्तेदार था।

साहबकी ओरसे अभिनन्दनपत्र लेकर बुद्धिधन भूपसिंहसे मिला। भूपसिंहका हृदय उपकारके बोझसे दब गया। "मेरे महाराणा साहब, सुवर्णपुरके अन्नदाता, नरनाथ!—यह कहकर बुद्धिधन भूपसिंहकी ओर देखता रहा। भूपसिंह एकदम बुद्धिधनसे लिपट गया और उसने कहा—"बुद्धिधन, तुम्हारेही उद्योगसे यह दिन देखना नसीब हुआ है। तुम्हारे एहसानको मैं इस जन्ममें नहीं भूल सकता। अब मैं राजा हूँ और तुम

दीवान हो। अबतक जैसे हमने इतने दिन साथ-साथ गुज़ारे हैं, वैसेही आगेके दिनोंको भी देखेंगे।"

उस मनस्वी पुरुषने राणाकी इस बातको भी अपने हृदयमें उसी जगह लिख लिया, जिस जगह भूपसिंहकी दुश्मनीकी बात लिखी थी। उसने सोचा, कि भूपसिंह, राज्याभिषेक होतेही पुराने अहलकारों और उन लोगोंसे, जिन्होंने इसे तकलीफ़ दी है, अनिष्ट कर सकता है। और ऐसा करनेसे यह प्रसिद्ध हो जायेगा, कि राणा अपने पुराने वैर निकाल रहा है, पर यह बात अच्छी न होगी। इसलिये उसने भूपसिंहसे कहा,—"तुम कल साहबसे मिलने जाओ, और हमलोग लीलापुरमें रह चुके हैं, इसलिये यहाँ एक हाईस्कूल और 'रस्किन बाग़' के बनवानेकी बात कहो और अपने विचारोंसे यह भी जता दो, कि तुम पुराने अमलोंको वैसेही बहाल रखना चाहते हो, जैसे रहते आये हैं। पीछे तुम साहबसे अपनी रियासत सुधारनेके लिये एक प्रामाणिक और बुद्धिमान् आदमी माँगो। फिर उनसे कहना, कि यदि 'बुद्धिधनपर आपका विश्वास हो और वह कामका आदमी हो, तो आप उसे दीजिये, नहीं तो और किसीको।' इसी प्रकारकी चर्चा करना।"

दूसरे दिन सब बातें इसी प्रकार हुई। भूपसिंहके बारेमें साहबकी धारणा अच्छी थी और उसकी ग़रीब दीन-दशा देखकर उन्हें दया भी हो आयी थी। फिर उस अवसरपर उसके मुँहसे ऐसे उच्च और उत्कृष्ट विचार सुनकर वे और भी प्रसन्न हो गये। उन्होंने सरकारी रिपोर्टमें भूपसिंहकी बहुत प्रशंसा की। उन्होंने यह भी स्वीकार किया, कि भविष्यमें जितनी सहायताकी उसे आवश्यकता होगी, दी जायेगी। अपने दफ्तरका इन्तज़ाम करके उन्होंने बुद्धिधनको राणाकी सेवामें भेज दिया। सरकारी इत्तिला

आतेही सुवर्णपुरमें भूपसिंहका राज्याभिषेक बड़ी धूमधामसे मनाया गया। इस अवसरपर बुद्धिधनने "पायोनियर" "स्टेट्समन" आदि पत्रोंके प्रतिनिधियोंको भी न्यौता दिया था। इन सब पत्रोंमें राणा भूपसिंहके राज्याभिषेककी बड़ी लम्बी और रोचक कथा निकली। बम्बईके कई पत्रोंने जलसे और दरबारका सचित्र वर्णन किया था। सब अख़बारोंमें भूपसिंहकी बुद्धि, गम्भीरता, राजनीतिज्ञता, दयालुता और सच्चरित्रताकी चर्चा होने लगी। देश और विदेशमें भूपसिंह आदर्श पुरुष साबित हो गया।

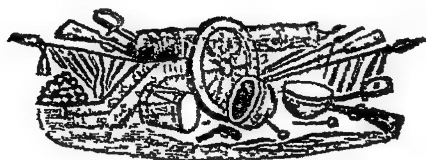
जब बुद्धिधनके पास दूसरा आदमी आगया, तब वह भी सुवर्णपुर चला गया और वहांका 'सेक्रेटरी' हुआ। गड़बड़-दास रानीका प्रीति-पात्र था, इसलिये वह 'महकमे-हिसाब'का हाकिम बनाया गया। बाकी अमलोंमें अधिक फेरफार नहीं हुआ। थोड़ेही समयमें बुद्धिधनके अधिकार और अधिक बढ़ गये और उसकी तनख़ाह भी बढ़ायी गयी। सब मामला धीरे-धीरे शान्त हो गया था और यदि कभी कोई बात उठती भी थी तो बुद्धिधनकी बुद्धि उसे शान्तकर देती थी। भीतर बहुतसे बैर और ईर्ष्याके भाव थे, पर एक विदेशीकी आंख उन्हें नहीं देख सकती थी।

बुद्धिधन अपना काम शान्तिपूर्वक करता था। वह सबको अच्छा रास्ता दिखाकर चलता था। पहलेवाले दीवानको समझा-कर काम लेता था। जब सब इकट्ठे होते, तब किसीके चेहरे-पर असन्तोषकी झलक न दीखती थी।

बुद्धिधनका सम्मान दिन-पर-दिन बढ़ता जाता था। उसने अपने पूर्वजोंके बनवाये हुए राजेश्वर महादेवके मन्दिरका जीर्णो-

ख्तार किया था। सब लोग उसपर आशा लगाये देखा करते थे। जब वह बाहर जाता, तब साहब लोगोंसे मिलता और उनसे प्रशंसा पाकर अपना काम साध लाता था। वह पण्डितों-का सम्मान करता और कर्मकाण्डपर बड़ी श्रद्धा दिखाता था। इन सब बातोंसे साधारण प्रजाकी उसपर विशेष श्रद्धा बढ़ गयी और हर एक जगह उसके गुणोंका बखान होने लगा। इसी प्रकार राज्यमें भी उसका सम्मान बढ़ता गया।

जिस समय राजेश्वरके मन्दिरमें राणा और बुद्धिधन आये थे, उस समय राज्यकी यही व्यवस्था थी। भूपसिंहको राजा बने तीन-चार साल बीत गये थे। पाठकोंको स्मरण होगा, कि पुजारी मूर्खदत्तने अलकिशोरी और कुमुदसुन्दरीको उसी बाड़ेमें बन्द कर दिया था, जिसमें पहलेसेही नवीनचन्द्र बैठा था। फिर उसने राणाजीका स्वागत किया था। पहलेका इतिहास बतानेके लिये हमने उसी स्थानपर उन्हें छोड़ दिया था, और अब हम फिर वहीं चलते हैं।



छठवाँ परिच्छेद।

राजनैतिक चक्र।

"तटस्थः स्वानर्थान् घटयति च मौनं च भजते।"

र्णपुरका राज्यतन्त्र अपनी स्वाभाविक चालसे चला जाता था। देखनेवालेको मालूम होता था, कि वह भँवरमें पड़ा है और दो व्यक्ति उससे दूर खड़े हैं। साधारण दर्शकोंको यही मालूम होता था, कि यह भँवर अपने आप आया होगा।

इस नाटकका सूत्रधार बुद्धिधन अबतक परदेकी ओटमें था और दूसरे वेशधारी पात्र भी अभीतक उसे अपनेही समान एक साधारण व्यक्ति समझते थे। सबके चित्तमें यही बात थी, कि राणाजी बुद्धिधनकी बात अधिक मानते हैं! इसके सिवाय किसी-को और कोई ख़याल न था। पर वास्तवमें राणाजी किस कुञ्जीके सहारे चलते हैं, यह अभीतक कोई न जान सका था। सबको यही मालूम होता था, कि यह सब अपने आपही हो रहा है; किन्तु इन सब घटनाओंका एक केन्द्र था और उस केन्द्रके हृदयसे उस पुराने वैरकी आग अभी तक धीमी नहीं पड़ी थी, बलिक भूप-सिंहको भी उस आगकी चिनगारीका पता न था। भूपसिंह समझता था, कि बुद्धिधन मेरा एक विश्वासी सेवक है और यही समझ कर वह उसपर दया करता था। किन्तु बुद्धिधनने भूप-सिंह और उसके राज्यको अपनी शत्रुता पूरी करनेका साधन

बना डाला था। धीरे-धीरे इस शत्रुताके बीचमें निर्मल राजभक्ति और मित्रता, महत्त्वकी इच्छा और ऐसेही दूसरे भाव भी पैदा हो गये थे। किन्तु वह वैर शान्त न हुआ था और दुश्मनोंको देख-देखकर वह दिन-दिन और भी दृढ़ होता जाता था। भूपसिंका वैर तो उस भयानक वैरका एक साधन मात्र था। बुद्धिधनकी नीति थी, कि अपने आप कुछ न करना और सब काम साधनोंके द्वारा निकलवाना; अपना हाथ कोई काम न करे पर सबके हाथ अपनेही चलानेसे चलें। जैसे सूर्य स्वयं कुछ नहीं करता, पर चन्द्रमाके द्वारा समुद्रमें ज्वार पैदा करवा देता है; वैसेही बुद्धिधन अपने आप किसी कामको न कर, सारे काम अपनी इच्छाके अनुसारही दूसरोंसे करवा लेता था, यही उसकी नीति थी। अस्तु। ऐसे साधनोंकी गम्भीरताको न समझ सकनेवाला भूपसिंह चार-चार वर्षतक अमात्यकी नीतिको सफल होते न देखकर, घबरा उठता था पर उसकी इस घबराहटको देखकर अमात्य अपने एक साधनको दृढ़ बनता देखता था।

हाँ, तो महादेवके मन्दिरमें, भूपसिंह सुनहरी ग़लीचेपर एक तकियेके सहारे बैठा था। पहलेकी अपेक्षा इन दिनों अब उसके शरीर, मुख और वस्त्रोंमें स्वाभाविक रीतिसे एक तरहका विशेष अन्तर हो गया था। उस समय जड़सिंहके दीवानसे घबराकर, उसे एक बुद्धिमान् मनुष्यकी आवश्यकता हुई थी, इस समय भी उसे दूर करनेकी इच्छासे उसे अमात्यकी ज़रूरत थी। पर इस आवश्यकताका भाव पहले औरही था और अब औरही है। उस समय योग्य आदमीके लिये भाई और मित्र कहकर अपनी गरज जतायी जाती थी और इस समय हुकूमत, राजत्यका भाव और आग्रह दिखाकर बात कही जाती थी।

बीच-बीचमें पहलेकी बातें याद करके हँसीका फव्वारा भी छूटता था।

"बुद्धिधन, तुमने आजतक कुछ न किया। उस नाचीज़ शठरायको, जिसने मुझे इतने दुःख दिये, उसे मैं अपना कारिन्दा समझूँ और अपने पास बैठाकर अपने राज्यकी बातें समझाऊँ? यह मैं कितने दिन सहता रहूँगा? जो मेरे सामनेसे मेरी थाली छीन रहा था, क्या उसे अब दण्ड देना उचित नहीं है? तुम जब तक इसका कोई उपाय न कर दोगे, तबतक मुझे सुखकी नींद न आयेगी।"—यह कहकर राणाजी फिर तकियेके सहारे लेट गये।

बुद्धिधन राणाजीके सामने पाँव-पर-पाँव चढ़ाये बैठा था, वह यह बात सुनकर हँस पड़ा! उसने कहा,—"राणाजी! क्षमा कीजिये। आपको राजगद्दी मिले, तो क्या आपके शत्रुको क्षमाका भी लाभ न हो? बुराईका बदला भलाई होना चाहिये।" यह कहकर वह कुछ सरक कर बैठ रहा।

राणाजी सीधी तरहसे मुस्करा दिये। उन्होंने कहा,— "वाह! यह बात तो आजही मालूम हुई! उपकारका बदला अपकार और अपकारका बदला उपकार—यह बात तो तुम राजनीतिज्ञ लोगही जानो; पर मैं तो एक रङ्गवाला आदमी हूँ। मेरी नीति तो यह है, कि जिलानेवालेको जिलाना और मारने-वालेको मारना। तुम मेरे मित्र और वह शत्रु हो, यह भेद कैसे भूल जाऊँ?—यदि दोनोंको एक लाठीसे हाँका जाये तो बस हो चुका! 'अन्धेर नगरी, अनबूझ राजा' वाली कहावत फिर तो सच्ची हो जाये।"

"बहुत अच्छी बात है।" यदि श्रीमान् चाहें तो शठरायको कलही नौकरीसे अलग कर दें, यह तो आपके हाथकी बात है।"

"अब इस मज़ाकको जाने दो, और जो कुछ सोचा हो, सो कहो।"

अनन्तर दोनों कुछ देर शान्त रहे। इसके बाद बुद्धिधनने कहा,—"राणाजी, इच्छाएँ दो तरहसे पूरी होती हैं; एक तो जल्दीसे और दूसरे धीरे-धीरे। पर जल्दीसे-फलने-फूलनेवाले वृक्ष शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं और धीरे-धीरे बढ़नेवाले वृक्षोंकी जड़ें पातालमें जा पहुँचती हैं। ज़रा सोचकर तो देखिये, कि शठराय-की जड़ कितनी गहरी गयी है? जिस समय आप सिंहासनपर बैठे, उस समय सारे अमले और मन्त्रिमण्डल इसीके हाथमें थे। राजमहलके सब आदमी इसके वशमें थे। एजेण्ट साहब और बम्बई सरकारसे इसकी जान-पहचान पहलेसेही थी। अख़बारवालोंने उसको बड़ी प्रशंसा की है। वस्किन साहबके स्थानपर अब रसेल साहब आये हैं, उनका इसपर पूरा विश्वास मालूम होता है। मुझे इसने अपना बनानेके लिये कितना जाल फैलाया था! अब सोचिये, कि यदि इसे निकाल दिया जायेगा, तो यह स्वाधीन होकर कितना उत्पात मचा सकता है। अलग होकर यह, हजारों तरहके जाल फैला सकता है, सैकड़ों विघ्न उपस्थित कर सकता है। यदि अब तक यह आपसे पृथक् होता, तो आपको जमती हुई प्रतिष्ठाका नाश कर डालता। उस समय न मालूम कितने-कितने चक्र होते, पर यह सब जल्दबाज़ी करनेसेही होते।"

भूपसिंहने नरमीसे जवाब दिया। "हाँ, यह बात सच है!!" बुद्धिधन मनस्वी था; उसने राजपूतकी गरमीको ठण्डा कर दिया और अब उसे धीरे-धीरे अपने ढर्रेपर लाने लगा।

"अब इसकी गहरी जड़ोंको उखाड़कर अपनी स्थिति दृढ़कर

लेनी चाहिये। इस बातके लिये बहुत समय और बड़े भारी धीरजकी आवश्यकता है।"

इतना कहते-कहते राणाके मुखमण्डलपर कुछ निराशाके चिह्न देख पड़े।

बुद्धिधन—"पर अब ज़ियादः रुकावट नहीं है। अपना काम बहुत कुछ हो चुका है। इमारतकी नीव तैयार होगयी है; उसपर ईंटें भी चुनी जा चुकी हैं; अब केवल ऊपरका काम बाक़ी है।"

भूपसिंह फिर सम्हल कर बैठ गया, पूछा,—"अच्छा और?"

अब बुद्धिधनने अलङ्कारका-आडम्बर छोड़ दिया और असल मतलबकी बातें कहने लगा। बोला,—"मेरा और आपका सम्बन्ध अब छिपाया नहीं जा सकता; मैं जबसे आपके साथ आया हूँ तबसे इस बातको सब जानते हैं। स्वाभाविक रीतिसे शठराय का मेरे ऊपर विश्वास नहीं है। मैं इसके काम-काजमें अबतक कभी नहीं बोला; इसलिये यह खटपट आजतक शान्त रही है पर यह सदा इस तरह नहीं रह सकती। और ऐसे उपाय अपनी ओरसे करही दिये गये हैं, कि यदि यह अपनी ओरसे कुछ झगड़ा उठाये, तो वह इसीके सिर पड़ सकता है। निर्भयराम इसके सेक्रेटरीकी जगहपर है। वह इसके स्वभावके अनुसार काम करता है। जब मेरी निन्दा होती है, तब वह भी उसमें शामिल हो जाता है। इस प्रकार वह अब शठरायका पूरा विश्वासी बन गया है; पर आपको तो यादही होगा, कि वह अपनाही आदमी है। उसकी मित्रता मेरूलासे भी है; इसलिये दुष्टराय अपनी और अपने बापकी जो-जो बातें अपनी स्त्रीसे कहता है, वे भी अपनेको सुनाई दे जाती हैं। न्यायाधीश करवटराय दोनों भाई दीवान और फ़ौजदार दुष्टराय, सब मिलकर आजकल

दीन प्रजापर बड़ा अत्याचार करते हैं, तथा अपने हस्तक्षेप न करनेपर और भी अधिकताके साथ करते हैं। इसलिये जहाँ उनके पापका घड़ा भरा, कि उसका फूटना अवश्यम्भावी है; ज़रासी ठोकरसेही वह फूट जा सकता है। इसके निरंकुश होनेके कारण प्रजा इसके विरुद्ध है। अब सबका यह सिद्धान्त बन गया है, कि राजा अच्छा है, पर दीवान बुरा है। उनको पुकार एक चुटकीके सहारे आगकी तरह जल उठेगी। दीवानका निकालना कुछ लोगों और साहबको नज़रोंमें खटकेगा।

"दो एक बार अख़बारोंमें भी दीवानकी बदनामी छप चुकी है। एकबार जब दीवान बम्बई गया था, तब पीछेसे निर्भयरामने मेकलासे एक चिट्ठी बम्बईके "टाइम्स" अख़बारको भिजवा दी थी। अपनी तरफ़से बहुतसे आदमी बम्बईमें रहते हैं, जिन्हे यहाँसे ख़र्च दिया जाता है। दूसरे, शठराय अभिमानी है और वह सबके साथ रावणके समान व्यवहार करता है; इसलिये उससे मिलकर कोई प्रसन्न नहीं होता और बहुतसे बाहरसे आये हुए भले आदमियोंको तो निर्भयरामने उससे मिलनेही नहीं दिया। और सिपाही भी उसका अनुकरण करते हैं। इन सब बातोंका अब उचित फल मिल रहा है। अब इसके लिखनेका मूल्य सरकार और सर्वसाधारणमें कितना है, यह फिर कभी बताऊँगा।

"रसेल साहब फ़ौजी आदमी नहीं हैं। बस्किन साहबकी तरह इनकी थाह नहीं मिल सकती। किसीका व्यर्थ अपमान करना या बुरेको बुरा कहना—इनकी प्रकृतिसे बाहर नहीं है। शठरायपर उनका विश्वास है; इस बातको सब जानते हैं, पर साहबका हृदय इतना गहरा है, कि उसका पता किसी तरह नहीं लगता। मुसलमान लड़केके विषयमें जो षड्यन्त्र रचा गया

था, उसका तमाम कच्चा चिट्ठा एजेन्सीके दफ्तरमें रखा है। साहब उसे अच्छी तरह जानता है। इस विषयमें लीलापुरसे एक पत्र आया है, उसे फिर कभी देख लीजियेगा।

"प्रजाकी पुकार साहबके पास पहुँच गयी है। जब आप जायेंगे, तब साहब यही चर्चा चलायेगा। दीवानकी निन्दा करनेके सिवा और क्या-क्या बातें करनी होंगी, सो मैं सोचकर कल कहूँगा। अबतकके तमाम कामोंका उत्तरदायित्व एकमात्र शठरायपरही है।

"पर जिस सेठपर करवटरायने अत्याचार किया था, उसे साहबके पास भेजनेकी युक्ति सोची गयी है। इससे उस सेठको तो कुछ लाभ न होगा, पर सरकारसे वह मुक़द्दमा फिर आपको मिलेगा—यह भी ठीक होगा।

"धीरे-धीरे दरबार और महलमेंसे इसके जिन-जिन आदमियोंको दूर किया गया है और उनके स्थानपर अपने आदमी रखे गये हैं; उन सबको शठराय फिर अपनी ओर कर रहा है, यह ख़बर उसीके यहाँसे आयी है।

"गड़बड़दासके साथ कैसा व्यवहार किया जा सकता है—यह आपको मालूमही है। उस व्यवहारका समय, यदि आपकी इच्छा हो, तो शीघ्र आ सकता है। आप जब साहबसे मिल जायेंगे, तभी यह बात उठानी अच्छी होगी।"

अस्तु, तमाम कच्ची रिपोर्ट पूरी हो गयी। राणाजीने अँगड़ायी ली और मुसकुराते हुए खड़े हो गये। खड़े होकर बोले,—"अपने पास सब साधन तैयार हैं। हाँ, एक अँगरेजी पढ़े हुए आदमीकी ज़रूरत होगी।"

"ख़ैर, यह तो हो जायेगा, पर अब यह ख़याल रखना चाहिये, कि अब शठरायको ज़ियादः अवसर न मिले।"

"राणाजी धीरज धरो, समय आनेपर सब कुछ हो जाता है ; पर पहलेसे कोई कुछ नहीं जानता। लीलापुरमें कितने बरस रहनेके बाद राज्य मिला ?"

"हाँ, यह बात तो परमात्माके अधीन थी।"

"शठरायने पर्वतसिंहका जो कुछ किया, यदि वही जड़सिंह-का भी किया होता, तो वह एकदम आपके हाथमें था।"

राणाजीकी आँखें झुक गयीं। उन्होंने कहा,—"ठीक है, भाई! पर अब वह समय शीघ्रही लाओ। आप जानतेही हैं, कि प्रसवसे पहले पेट दीखने लगता है।"

"पर यहाँ तो बिना पेटकेही बच्चा पैदा होगा!"

राणा फिर हँस दिया। उसने कहा,—"जो कुछ तुम कहो, सो सच सच है।"

अब आगे-आगे राणाजी और पीछे-पीछे अमात्य बाहर चले। जाते-जाते बुद्धिधनने कहा,—"राणाजी! थोड़ेही दिनोंमें सब कुछ आपही मालूम हो जायेगा। फिर धीरे-धीरे कानमें कुछ बातें कहीं।

इस बातको सुनकर भूपसिंहका चेहरा खिल उठा। इसके बाद वह बाहर निकला "घणी खमा अन्नदाता" की आवाज हुई। राणाजी गाड़ीपर जा बैठे और गाड़ी तेज़ीके साथ चल पड़ी। उनके साथ सवार भी चले गये। बुद्धिधन फिर मन्दिरमें वापस आया। मन्दिरकी सीढ़ीपर खड़ा हुआ बुद्धिधन अपने आप कहने लगा, "परमात्मन्! मैं कुछ नहीं करता। सब कुछ तुम्हीं कर रहे हो। मैंने आजतक किसीका नुक़सान नहीं किया,— बिना कारण किसीको हानि नहीं पहुँचायी और न आगे भी कभी पहुँचाऊगा। योग्य कारणोंके होनेपर क्या तुम नुक़सान

नहीं करते ?" यह सोच हृदयमें शान्ति हुई। दिलका खुटका निकल गया। मानो उसका हृदय साफ़ हो गया हो—इस भावसे चारों ओर देखकर पुजारीको आवाज़ दी—"दत्त, दत्त।"

मूर्खदत्त झटपट आ पहुँचा। उस समय वह रसोई कर रहा था। राणाजी घण्टेभर बैठे रहे; इसलिये उसे भी दबका रहना पड़ा था। भीतर जानेपर उसे याद आया था, कि वहीं नवीनचन्द्र है और वहीं मन्त्रीके परिवारकी स्त्रियाँ भी गयी हैं। यह सोचकर पुजारी घबरा उठा; उसने रसोईकी एक खिड़कीसे बाग़की ओर देखा। सौभाग्यवश नवीनचन्द्र बाग़में अधिक समय तक न ठहरा था; उस वक्त वह स्नान करनेके लिये तालावपर चला गया था। पुजारीने उसे आवाज़ न दी, पर दीवारसे लेसी हुई मिट्टी उखाड़कर उसकी ओर फेंकने लगा। पर जालीमें मोटे-मोटे लोहेके छड़ लगे हुए थे; इसलिये वे लीपनके लेवड़े दूर न जा सके। अन्तमें एक मिट्टीका ढेला स्नान किये हुए नवीनचन्द्रके शरीरपर लगा और फूट गया। नवीनचन्द्र चौंककर पीछेकी ओर देखने लगा। उस समय उसने जालीसे पुजारीको अपनी ओर देखते पाया अतएव वह धीरे-धीरे पुजारीके पास गया। उसने बड़े धीमे स्वरसे राणाजी और अमात्य-कुटुम्बके आनेकी बात कही और कहा, कि "जबतक वे चले न जायँ, तबतक बाग़ और मन्दिरमें मत जाना। यदि राणाजीको देखना हो, तो पीछेसे घूमकर दरवाज़ेपर आ जाना।" नवीनचन्द्रने इन सब बातोंमें समय खोना व्यर्थ समझकर अपनी गठरीमेंसे एक किताब माँगी। पुजारीने नाक भौं सिकोड़कर उसकी माँगी हुई किताब निकालकर दे दी। नवीनने पहले अपनी धोई हुई धोतीको एक पेड़पर सूखने डाल दिया और आप उसके पास बैठकर

किताब पढ़ने लगा। उस समय वह बीच-बीचमें इधर-उधरके प्राकृतिक दृश्योंको देख लेता था। उधर मूर्खदत्त अपनी रसोई बनानेमें लगा और जब अमात्यने आवाज़ दी, तब "हाज़िर हुआ सरकार!" कहकर बाहर आया।

पुजारीके आ जानेपर बुद्धिधनने उससे पूछा—"क्यों, क्या आज कोई नहीं आया?"

पुजारीने कहा—"अलक बहन और भाभी साहबा आयी हैं।"

"कहाँ हैं?"

"पीछेवाले बाग़में। आप भी पधारिये। राणाजी आये थे, इसलिये मैंने वहाँ ताला लगा दिया था।"

आगे-आगे पुजारी और उसके पीछे-पीछे बुद्धिधन चला।

बुद्धिधन,—"क्या आजकल धर्मशालामें कोई मुसाफ़िर नहीं है?"

पुजारी,—"आज एक आदमी आया है, इस समय वह तालाबपर होगा या बाहर गया होगा।"

ताला खुला। बुद्धिधनने बाग़के भीतर प्रवेश किया।



सातवां परिच्छेद।

बाग़में।

मन्दिरके पीछे जो छोटा और कच्चा अहाता खिंचा हुआ था, उसमें थोड़े दिनसे गुलाब, मोतिया, जुही, मोगरा और चम्पा आदिके पेड़ लगे थे। बीचवाली जमीनपर घास भी एक तरीक़ेसे लगायी गयी थी; इसलिये अब हम उस बाड़ेको बाग़के नामसे लिखेंगे। इन दिनों सभी पुष्पवाले पेड़ोंकी कलियोंके चटखनेका समय था; इसलिये वह बाड़ा और भी अधिक सुन्दर मालूम होता था। बीचमें सुतलीका बुना हुआ पुजारीका एक पलँग पड़ा था। जब वह अकेला रहता, तब उसीपर पड़ा हुआ ज़ोर-ज़ोरसे अपने अशुद्ध श्लोकों और स्तोत्रोंका पाठ किया करता था। आज जब अलककिशोरी और कुमुदसुन्दरी बाग़में आयीं, तब उन्होंने उसी पलँगपर अपना आसन जमाया। और साथवाली सहेलियाँ इधर-उधर बैठ रहीं। इसके बाद अलककिशोरीने फूल तोड़कर सबको दिये। उसने कुमुदसे कहा—"भाभी! तुम कौनसा फूल लोगी?"

"जौनसा तुम दे दोगी।"

"नहीं नहीं; जो तुम्हें पसन्द हो।"

"नहीं, जो तुम दोगी, मैं उसेही पसन्द करूंगी।"

"यदि सब बातोंमें योंही किया करोगी, तब तो तुम्हें बड़ी कठिनाई होगी!"

"तुम्हारे पसन्द किये [हुएको तुम्हारे भाई भी पसन्द करेंगेही।"

"अच्छा तो तुम ये गुलाबके फूल लो। ये तुम्हारे जैसेही कोमल हैं और रङ्ग भी तुमसे मिलता-जुलताही है।" हँसते-हँसते कुमुदसुन्दरीने अपने कोमल हाथोंमें फूल ले लिये। उसके कोमल हाथोंमें पड़कर फूलोंका रङ्ग छिप गया, केवल उनके हरे-हरे डण्ठलही दिखाई देते थे।

अलकिशोरी,—"देख वनलीला! मेरी भाभीके सुन्दर हाथोंमें ये फूल जितने अच्छे मालूम होते हैं, उतने क्या और किसीके हाथोंमें अच्छे लग सकते हैं?"

राधा,—"बहन, आखिर ये हैं भी तो तुम्हारीही भाभी!"

वनलीला,—"तुमने ये फूल दे तो दिये; पर मेरे मनमें तो ऐसा आता है, कि इन फूलोंसे जूड़ा गूँथा जाये। अहा! आजकल वसन्तके दिन हैं!"

राधा०,—"वसन्त भी नया और भाभी साहबा भी नयी हैं।"

अलक०,—'हाँ, गुलाबकी वेणी गूँथूँगी और इनके पलँगके चारों ओर मोतियेके हार सजाऊँगी।"

वन०—"और चम्पा-मोगरा बीच-बीचमें लगा दिये जायेंगे; तब तो बहार चौगुनी हो जायेगी।"

अलक०—"तब तो मेरे भाई बिना मोलके... हो जायेंगे।"

राधा०,—"फिर भाभीजी मुजरा करेंगी।"

कृष्णकालिका,—(हँसकर) "जाओजी, तुम भी क्या बातें करती हो? मुजरा तो रण्डियाँ करती हैं।"

अलक०—"अरी जा मर भी !"

कृष्णकलिका काले रंगवाली और चेचकके दाग़ोंवाली थी। यह ओछी बुद्धिवाली और नासमझ भी थी। उसने अपने मनमें यही सोचा, कि इसमें मैंने क्या बुरा कहा। इसकी बात सुनकर कुमुदसुन्दरीका चेहरा उदास हो गया। उसके मनमें होने लगा, कि क्या मेरा जन्म केवल भोग-विलासोंकेही लिये हुआ है या मैं ओछी और नीच संगतिमें बैठी हूँ ! फिर वह अपने और प्रमाद-धनके विषयमें तर्क करने लगी। उसके मनमें हो आया, कि यह जो कुछ कह रही है, वह वास्तवमें सत्य है। उसे सब गुणोंकी खान अपनी किताबें याद हो आयी। फिर उसे याद हो आया, कि यदि उसका सम्बन्ध सरस्वतीचन्द्रके साथ हुआ होता, तो उसकी सब इच्छाएँ पूरी होजातीं। उसे सरस्वतीचन्द्रके सारे गुण स्मरण हो आये ; हृदय भर गया और मुखकी वह दशा हो गयी, जो रोनेके पहले हो जाती है। साथवाली और-और सहेलियोंने समझा, कि कृष्णकलिकाको बातसे इसका चित्त उदास ह गया है; इसलिये सब उसे खरी-खोटी सुनाने और इसे सन्तोष देने लगीं। कुमुदसुन्दरीने अपनी आँखें पोंछी और कहा, कि 'मुझे कृष्णकलिकापर क्रोध नहीं आया।' परन्तु इसके साथही वह अपने हृदयके विकारका और कोई कारण भी न बता सकी। इसका मतलब सबने यही समझा, कि उसे कृष्णकलिकाकी बात बुरी लगी है; पर वह मुँहसे उसे नहीं कहती। कुमुद सरस्वती-चन्द्रसे अपने जीवनमें एकही बार मिली थी और उस अर्सेको भी बहुत समय हो चुका था। इधर प्रमादधनसे उसका बहुतही घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था और उसका स्वार्थ भी देखा था, किन्तु चन्द्रमाकी याद जैसे चकोरीको विह्वल कर डालती है,

वैसेही कुमुदके मनमें रह-रहकर सरस्वतीचन्द्रकी याद हो आती थी। सरस्वतीचन्द्र सुन्दर भी था, किन्तु कुमुदको उसकी सुन्दरताका उतना ख़याल न था, वह तो उसके पत्र-व्यवहार, बर्त्ताव और वचनामृतपर मुग्ध थी। इधर प्रमादधन सुन्दर, प्रमादी और भोगी था; इसलिये कुमुदके मनको वह हृदयसे आकृष्ट नहीं कर सकता था। वास्तवमें विद्या, बुद्धि, चतुराई और गुणोंमें स्त्री अधिक न होनी चाहिये; क्योंकि पुरुष यदि स्त्रीसे गुणोंमें कम होता है, तो वह स्त्रीके हृदयका अधिकारी नहीं हो सकता। ऐसी दशामें पड़ी हुई स्त्रियोंके दुःखका पार नहीं रहता। वे पतिसे सन्तुष्ट और तृप्त नहीं हो सकतीं; उनका मन पतिको उच्च श्रेणीवाला स्वीकार नहीं करता; उसे वे हृदय नहीं अर्पणकर सकती, उससे प्रेम नहीं कर सकतीं और हृदयसे वे स्त्री-पुरुष एक नहीं हो सकते। यदि ऐसी स्त्रीके हृदयमें निरन्तर उच्च वृत्तियाँ न जागृत रहें, तो वे पतिका तिरस्कार भी करती हैं। कुमुदसुन्दरीमें परमात्माने उच्च वृत्तियोंकी नदी बहा दी थी, वह योग्य माता-पिताकी पाली हुई सन्तान थी और उत्तम विद्याने उसके हृदयको सुन्दर बनाया था। किन्तु बुद्धिधनके घरसे विद्याचतुरका घर बहुतही ऊँचा था। कुमुद सबको चाहती थी, सबकी मङ्गलकामनाके लिये प्रार्थना करती थी और एक सुशीला स्त्रीमें जितने गुणोंकी आवश्यकता होती है, वे सब उसमें थे। किन्तु इस संसारमें सभी बातोंकी सीमा है। विद्वानों और उच्च विचार वालोंकी संगतिसे निकली हुई कुमुदसुन्दरी, बुद्धिधनके मूर्ख और अभिमानी घरमें पानीके बिना मछलीके समान तड़पती थी। बड़ी मुशकिल-से हृदयकी दबी हुई ज्वाला शान्त हुई थी, पर आज वह कृष्ण-

कलिकाके वचनोंसे फिर जाग उठी; फिर सरस्वतीचन्द्रकी याद होआयी। उसका लिखा हुआ पत्र इस समय भी उसके पास था। पर सबके सामने उसे वह निकाल न सकी। हृदयसे मस्तिष्कमें तार पहुँचा। उसे उस काग़ज़के स्पर्शका मानों अनुभव हुआ, हृदय धड़क उठा। फुरहरी आयी और एक सेकेण्डमें शरीर भरमें मानों बिजली दौड़ गयी। यह सब कुछ पलक मारते होगया; पर किसीको इसका ज्ञान न हुआ। मुख-पर फिर बनावटी प्रसन्नताकी छाया आगयी। बीचमें जो नीर-सता पैदा होगयी थी, वह जाती रही। फिर सब वैसेही हँसने-बोलने लगीं। खाटकी रस्सियाँ चुभने लगीं और सब उठकर बाग़में इधर-उधर टहलने लगीं। वनलीला और कुमुदसुन्दरी तालावकी ओर चलीं। अलककिशोरी कृष्णकलिकाके गलेमें हाथ डालकर एक ओर टहलने लगी। राधा मोगरेकी डाल हिलाकर उसे देखने लगी।

अलककिशोरी कृष्णकलिकाके साथ बातोंमें लग गयी। उस-ने कहा,—"अच्छा सखी! सच-सच बता, जब कल नदद-भौजाई जा रही थीं और उनके आगे जमाल और मेरुला जा रहा था, तब मैंने उन्हें देखकर मुँह बिगाड़ा था, इसपर उन्होंने क्या कहा?"

"नहीं, कुछ नहीं।"

"कालीमाता, सच-सच बता।" कहकर अलकने कृष्णकलि-काके गलेमें हाथ डाल, उसके गालपर हलकीसी चुटकी ली।

"तुम तो ऐसी बेदर्दीसे चुटकी ले रही हो, जैसे सुवर्णपुरका राज्यही तुम्हारे घरमें हो।"—यह कहकर कृष्णकलिकाने अलक-की ओर आँखें घुमायीं। अलकने उसे दोनों हाथोंसे अपने आलिङ्गनमें बाँध लिया।

"मानिनी ! अब तो मान जा।"

"तुमने जैसा किया, उसने साही कहा।"

"क्या कहा, बता ?"

"खलकनन्दाने कहा, कि यह कलकी छोकरी सती बन बैठी है, जो मैं इसका मान न उतार दूँ, तो मेरा नाम नहीं।"

"मर राँड़ ! तू क्या उतारेगी ? अच्छा फिर ?"

"बहूने कहा, कि जैसे यह सबकी हँसी कर रही है।"

"समझी, समझी; पर जब बाँस होगा, तब न बाँसरी बजेगी ? यदि मुझमें खोट होगाही नहीं, तो वे क्या करेंगी।"

"कोई कहे सच और कोई कहे झूठ। पर सच-झूठको किसने परखा है ?"

"जो मेरी बात करें, तो जीभ खींच लूँ।"

"वह दीवानकी लड़की है।"

अलकने अभिमानसे कहा,—"दीवानी कैसे रहती है, सो मैं भी देखूँगी।"

"पर बहन, हमे इतना नहीं सोचना चाहिये। फिर भी वह बडे घरकी है।"

"हाँ सच तो है। यदि वे मुझसे न बोलें, तो मुझे क्या गरज पड़ी है ?"

एक ओर इस प्रकारकी बातें होरही थीं एवं दूसरी ओर कुमुदसुन्दरी और वनलीला टहल रही थीं। टहलते-टहलते वनलीला धीमे स्वरसे गुनगुनाने लगी,—

"मधुप तुम हो स्वरथके दास,
कली-कली रस पियत, करत नहिं एकहु याम निवास"

वनलीलाके मधुर पदका अर्थ समझकर कुमुदसुन्दरीके हृदय-

पर चोट लगी। वनलीलाका साथ छोड़कर वह अकेली तालाब की ओर बढ़ी। वह बार-बार वनलीलाके पदको दुहराने लगी पदको दुहराते-दुहराते उसे एक पद और याद आगया,—

"क्षितिज तज चन्द्र भयो हा! अस्त,
अन्धकार छा गयो कुमुद-वन, भयो हाय अति त्रस्त।
अहो विनेकी भ्रमर तुम्हारे हृदय यही अभ्यस्त,
दीन कमल तज दिये रहे ये रोते हाय! समस्त"

चित्तकी वृत्तियोंमें आग धीरे-धीरे प्रज्वलित हो रही थी और उसकी लपटें कल्पनाके प्रवाहको तेज करती जाती थीं। विचार बन्द हुए, कोमल हृदय दुर्भेद्य शोकसे घिर गया, आँखों और कानोंने अपना-अपना काम बन्द कर दिया। जागती हुई हालतमें सपनेके समान उसके सामने, सरस्वतीचन्द्रको मूर्त्ति खड़ी हो गयी। एकबार उसे मालूम हुआ, कि वह बड़े भारी जङ्गलमें एक वृक्षकी छायाके नीचे बैठा है। दूसरी बार उसे जान पड़ा, मानो वह थककर एक गाँवमें एक दीन किसानके घर अतिथिके रूपमें बैठा है। फिर उसके मनमें आया, कि वह एक बड़े भारी नगरमें है, जहाँ भीड़ लग रही है, पर न वहाँका कोई आदमी उसे जानता है और न वही किसीको पहचानता है। फिर उसे ऐसा ज्ञात हुआ, कि वह एक अनजान शहरकी धर्मशालामें बीमार पड़ा है, वहाँ न कोई उसकी सेवा करनेवाला है और न दवा देनेवाला। फिर उसे जान पड़ा, मानों वह वेश बदलकर उसके पासही खड़ा है और उसके मुखकी ओर देख रहा है। ऐसी जागती अवस्थाके सपने अक्सर उसे आया करते थे, पर वह सोचती थी, कि यह सब पातिव्रत धर्मके विरुद्ध है, इस प्रकारके विचारोंको मनमें लाना भी पाप है। बुद्धिधनके घर आनेके बाद उसकी शारीरिक

और मानसिक अवस्था बहुतही कमज़ोर होगयी थी। बहुतोंका ख़याल था, कि सुवर्णपुरकी आब-हवा अभी उसे प्रकृतिस्थ नहीं कर सकी है। दवाई और वैद्योंका इन्तज़ाम किया गया था, पर उनसे उसे कुछ भी लाभ न हुआ था। बुद्धिधनकी धारणा थी, कि यह अभी अपने बापके घरसे आयी है; इसलिये यहाँ शरमके मारे दबी जाती है। उसका कहना था, कि इसके साथ हँसते-खेलते रहो और फिर घूमनेमें इसका दिल बहलाओ; क्योंकि बुद्धिधन जानता था, कि विद्याचतुरके घरमें स्त्रियोंको स्वाधीनता है और वे बागों और गाँवोंमें टहलने जाती हैं। इस आज्ञाका पालन अलककिशोरी बडी हमदर्दीसे करती थी। पर इस रोगको कुमुदसुन्दरी अच्छी तरहसे जानती थी, और इसका उपाय करनेके लिये उसने प्रमादधनसे कुछ पुस्तकें मँगा देनेके लिये कहा था। उसने सोचा था, कि पुस्तकोंमें ध्यान रखने से पर-पुरुष, सरस्वतीचन्द्रकी चिन्ता मिट जायेगी। किताबोंका पारसल बम्बईसे अभीतक न आया था और वह बीच-बीचमें सरस्वतीचन्द्रके ध्यानमें डूबही जाया करती थी। पर आज उसके हृदयपर जैसी बीत रही थी, उसे वही समझ सकती थी, ऊपरसे देखनेवालोंको इसका गुमान भी नहीं हो सकता था। इसी समय वन-लीला गीत गाती-गाती उसके पास आगयी,—

"सखी हो बैर जतायो आज,
सुखके स्वमसे हाथ हटायो, पियसे बिगायो आज।"

कुमुदके पास आकर उसने गाना बन्द कर लिया। "भाभी साहबा! देखो यह क्या है?" कुमुदसुन्दरीके मस्तिष्कमें एक धक्का लगा। सबसे पहले उसे गानेके शब्द मालूम पड़े और उनसे उसके हृदयकी तन्त्री झनझना उठी।

"भाभी साहबा, यह देखो क्या है" वनलीलाने फिर कहा। "सखी हा वैर जतायो आज" को दुहराती हुई, कुमुदसुन्दरी वनलीलाको एकटक देखती रही। फिर मानो सचेत होगयी। उसने कहा,—"क्या है?"

"आओ, तुम्हें एक तमाशा दिखाऊँ। देखो तालाबके किनारे घासपर वह एक आदमी लेट रहा है। और पढ़ते पढ़ते उसे नींद आगयी है, किताब छातीपर खुली पड़ी है।"

"होगा। हमें पर-पुरुषकी चिन्तासे क्या काम?"

"पर वह ऐसा तालाबके किनारे सोया है, कि जहाँ ज़रा भी करवट बदली, कि पानीमें गिरा।"

"अच्छा, तू उसे जगा दे।"

"ओ भाई! सोनेवाले!!"

कानमें आवाज़ पड़तेही नवीनचन्द्र बैठ गया और उसने पीछे-की ओर घूमकर देखा। वनलीलाने कहा,—"ज़रा सम्हलकर उठना। तुम नींदमें करवट बदलते समय कहीं तालाबमें न गिर जाओ; इसलिये जगाया है।"

"तुमने बहुत अच्छा किया है, बहन!"

नवीनचन्द्र उठ बैठा। कुमुदसुन्दरीकी उससे चार आँखें हुईं।

मानो नवीनचन्द्रने कुछ देखाही नहीं—ऐसे सहजभावसे, उसने उधरसे आँखे हटा लीं और फिर अपनी किताबोंके पृष्ठ उलटकर देखने लगा। इसी समय "घणी क्षमा अन्नदाता" की आवाज़ उसके कानमें पड़ी। उसने सोचा, कि राणाजी जारहे हैं। उन्हें देखनेके लिये वह झपटकर मन्दिरके दरवाज़ेकी ओर चला और वह खुली हुई किताब वहीं छोड़ गया।

नवीनचन्द्र उठकर चला गया ; कुमुदसुन्दरीकी आँखें भी उसीके पीछे गयीं। वनलीला और कुमुद पीछे लौटीं, पर कुमुदकी आँखें उस जानेवालेके मार्गकोही देखती रहीं। कुमुद सोचने लगी,—"जिसका ध्यान मैं निरन्तर करती हूँ, बिल्कुल वही सूरत तो इसकी भी है। क्या यही सरस्वतीचन्द्र हैं? क्यों नहीं? घूमते-घूमते यहीं आगये हों, तो क्या आश्चर्य है। पर नहीं, ऐसा तो कभी हो नहीं सकता।

"शायद मेरीही दशा देखने आये होंगे,—नहीं, यह भी नहीं हो सकता। ये ऐसे नहीं हैं, जो अब मेरी हँसी उडाने आये हों। पर हैं तो वेही। अब चाहे अपने आपको प्रकट न करें।" अबके कुमुदने लम्बी साँस ली। फिर सोचा, कि यदि सचमुच ये सरस्वतीचन्द्रही हों, तब भी मेरा इनके साथ क्या सम्बन्ध है? इस विचारको तो अब हृदयसे निकालही डालना चाहिये। यदि ये स्वयं सरस्वतीचन्द्र हों, तो क्या और यदि कोई औरही हो तो मुझे क्या? परमात्माने जिसके साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ दिया, वही मेरा है। मुझे संसार भरके सब मनुष्योंसे अब क्या वास्ता है? ऐसा विचारकर धीरे-धीरे पाँव उठाती हुई वह वनलीलाके साथ चली। फिर उसने सोचा, इस विचारसे दिलमें एक तरहका दर्द होता है। यदि येही सरस्वतीचन्द्र हों, तो अच्छा है। मेरा अब इनके साथ और तो किसी प्रकारका स्वार्थ नहीं है, पर यदि ये यहीं रहें, तो कभी किसीसे बातें ज़रूर करेंगे; उस समय बैठकर मैं इनकी बातें सुनूँगी। मेरा प्रेम विवाहके बन्धनमें बँध चुका है। पर इसमें क्या हर्ज है? अगर ये वेही हों, तो अपनेको चाहे लाख छिपायें, पर इनको विद्या इन्हें न छिपने देगी। इस मूर्ख देशमें भी इनकी संस्कारी विद्याके अपूर्व वचन मुझे सुनाई देंगे।

फिर विरुद्ध विचारकी धारा बहने लगी। सोचा—"नहीं, सम्बन्ध तो सदा खोटा होता है, फिर वह चाहे जैसा हो।" फिर सोचा कि, 'ऐसे पवित्र मनके द्वारा इस अशरीरी सम्बन्धमें हानिही क्या है?' फिर सोचती 'यह पता कैसे मालूम हो, कि येही सरस्वतीचन्द्र हैं?' हृदयने उत्तर दिया, कि 'मुख तो वही है। पुस्तक उनके पास है ही। वही निरभिमानी स्वभाव भी है।' फिर सोचा, कि 'ये यहीं रहें, तो अच्छा है। मैं इनके सुन्दर और प्रसन्न मुखको देखकर प्रसन्न हूँगी। मेरी यह बीमारी चली जायेगी। मैं भी प्रसन्न रहूँगी। बस, मुझे और चाहिये क्या? यदि इतनाही सम्बन्ध बना रहे, तो इसमें दोषही क्या है? बस, मैं केवल इनका मुख देखूँगी और जब दूसरोंसे बोलेंगे, तब इनके मीठे शब्द सुनूँगी और मैं स्वयं इनसे कभी न बोलूँगी। मैं कभी इनसे आँखें न मिलाऊँगी। इनका प्रसन्न मुख देखकर मेरी सारी चिन्ता भाग जायेगी।'

विचार-मालाका अन्त हो गया। दोनों जनी चलती-चलती अलककिशोरीके पास पहुँच गयीं। अलककिशोरीने कुमुदके कन्धे-पर हाथ रख दिया। थोड़ी देरतक उसके मुँहकी ओर देखकर अलकने कहा,—"क्यों भाभी, आज कौनसे गहरे विचारोंमें पड़ी हो? विचार तो राजा या दर्बारी लोग करते हैं। तुम बताओ, कि तुम्हारी माँ याद आयी है या मेरा भाई?"

"परमेश्वर जाने क्यों मुझे आज ऐसा मालूम होता है, मानों मैं बहुत थक गयी हूँ।"

इसी समय दरवाज़ा खुला और आगे-आगे बुद्धिधन और उसके पीछे-पीछे ताला-कुञ्जी लिये पुजारी बाग़में आया।

अलककिशोरी, कुमुदसुन्दरी, वनलीला, कृष्णकलिका आदि

अमात्यको देखकर सब एक जगह इकट्ठी होगयीं। राधा अकेली घूमती हुई तालाबके किनारे जा पहुँची थी। वहाँ उसने एक किताब पड़ी हुई देखी। उसने सोचा, कि न जाने कौन अपनी किताब भूलसे यहाँ डाल गया। यह सोच, उसने उसे उठा लिया और पृष्ठ उलटकर देखने लगी। फिर उसने सोचा, कि इसे सबको दिखाऊँगी। इसलिये वह उसे उठा लायी। उस समय सब सखियाँ एक जगह इकट्ठी हो गयी थीं। राधा भी कुमुदके पास आकर खड़ी हुई।

"राधा कहाँ गयी ?" कहकर अलककिशोरीने पीछेकी ओर देखा। इसी समय कुमुदसुन्दरीने राधाके हाथसे किताब ले ली।

कुमुदके हाथमें किताब देखकर बुद्धिधनने पूछा,—"यह कौन सी किताब है ?" कुमुदने कहा,—"इसका नाम 'सरस्वती' है। यह मासिक पत्रिका है। इसमें प्रति मास अच्छे-अच्छे लेख छपते हैं। मेरे पिताजीके यहाँ प्रतिमास आती है। यह अभी मैंने राधाके हाथसे ली है।" सब स्त्रियाँ मुँह देखने लगीं, कोई कुछ न समझी, कि उसके कहनेका मतलब क्या है।

राधा,—"यह तो तालाबके किनारे पड़ी थी, मैं लाई ।"

पुजारी,—"जो अतिथि आज धर्मशालामें ठहरा है, उसीकी है। वह खोजता होगा।"

बुद्धिधनने किताब हाथमें ली और नवीनचन्द्रको बुलानेके लिये कहा। पुजारी दौड़ा हुआ नवीनचन्द्रको बुलाने गया। नवीनचन्द्र लौटकर अपनी किताब तलाशकर रहा था। पुजारीने उससे कहा,—"तुम्हें मन्त्रीजी बुला रहे हैं। मिलनेका यह मौका बहुत अच्छा है। तुम्हारी किताब उन्हींके पास है। चलो।" दोनों आदमी मन्त्रीके पास आये। नवीनचन्द्रने उन्हें

सादर प्रणाम किया। बुद्धिधनने गम्भीरतासे उसका उत्तर दिया। सब स्त्रियाँ कुछ संकुचित हुईं—और कुमुदसुन्दरीका शरीर काँपने लगा। पुस्तक देखकर उसकी शङ्का और भी दृढ हो गई थी। वह सबसे पीछे खड़ी थी; इसलिये नवीनचन्द्रको भली भाँति देखनेका उसे अच्छा अवसर मिला था। उसके मनमें हो रहा था, कि यदि मेरी शङ्का ठीक होगी, तो जब इनकी आँख मुझपर पड़ेगी, तब इन्हें अवश्य क्षोभ होगा।

बुद्धिधन,—"तुम कहाँके रहनेवाले हो और यहाँ किस कामके लिये आना हुआ है?"

नवीनचन्द्र,—"मैं बम्बईसे आ रहा हूँ। देशी रजवाड़ोंके देखनेकी इच्छासेही इधर आया हूँ।"

"बम्बईमें तुम क्या काम करते हो?"

"अपने देशमें कहावत है, कि 'सबेरे सब भूखे उठते हैं, पर विधाता रातमें किसीको भूखा नहीं सोने देता। वह चींटीको कन और हाथीको मन देता है,' इसीकी परीक्षा करनेके लिये मैं निकला हूँ। पहले मैं विद्यार्थी था और अब अनुभवार्थी हूँ।"

"तब क्या काम करोगे?"

"एक काममें एकही प्रकारका अनुभव होता है, पर मुझे सब प्रकारके अनुभवोंकी आवश्यकता है।"

बुद्धिधनको यह मनुष्य कुछ विचित्रसा मालूम हुआ। उसे हँसी आगयी। उसने कहा,—"इस कामको तुम कैसे पूरा करोगे?"

"मैं बिना कहे सुन सकता हूँ; सुने हुएको मनमें रख सकता हूँ और बिना किसी रङ्गमें रँगे उसे देख सकता हूँ।"

बुद्धिधनने अपनी हँसी कठिनतासे रोकी। पूछा,—"पुस्तक तुम्हारी है?"

"जी हाँ।"

"तुम क्या-क्या पढ़े हो?"

"अँगरेज़ी और संस्कृत।"

"कहाँ सीखी है?"

कुमुदसुन्दरी उत्तर सुननेके लिये आतुर हो रही थी।

"बम्बईमें।" पर छोटेसे उत्तरसे वह सन्तुष्ट न हुई।

"लो, यह पुस्तक। जातिके कौन हो?"

"जी, मैं आपहीकी जातिका हूँ।"

"जबतक यहाँ रहो, तबतक मेरेही यहाँ जीमना होगा, भला?"

"जो आज्ञा।"

कुमुदसुन्दरीकी चित्त-वृत्तिको यह बात अच्छी मालूम हुई; पर उसकी पतिव्रता-वृत्तिको यह बात पसन्द न आयी।

बुद्धिधनको विचित्र बुद्धिवाले मनुष्योंसे मिलकर प्रसन्नता होती थी। अपने नये अतिथिके सत्कारका भार बुद्धिधनने अलककिशोरीको दिया। अलकने भी उसे स्वीकार किया। पुजारीको आज्ञा हुई, कि वह भोजनके समय नवीनचन्द्रको उसके घर ले आये।

कुमुदसुन्दरी बराबर उसे देख रही थी। वह भी कभी-कभी कुमुदको देख लेता था और फिर मानो अपनी दृष्टिको खींच रहा हो—इस भावसे दूसरी ओर देखने लगता था। कुमुदकी परीक्षा समाप्त हुई। वह सरस्वतीचन्द्रही है, यह विचारती हुई कुमुद अलकके साथ गाड़ीमें बैठकर घर गयी। बुद्धिधन भी अपनी गाड़ीमें बैठ गया।

आठवाँ परिच्छेद।



वह कुछ न बोलता, तब अपने आप चर्चा चलाता और इतनी सीधी तरहसे बातें करता, कि उसकी बातोंमें अभिमानका लेश भी नहीं जान पड़ता था। भोजन करनेके लिये साथ बैठा हुआ प्रमादधन, अतिथिको आदरसे और चीज़ें लेनेके लिये कहता और उसकी प्रत्येक सुविधापर पूरा ध्यान रखता था। सौभाग्यदेवी, अलककिशोरी और कुमुदसुन्दरी चुपचाप जीमनेवालोंके सामने बैठती और पान लगातीं थीं।

बुद्धिधनने शठरायके घर अतिथि-सत्कार और भोजनके समय औरही दृश्य देखे थे। खलकनन्दा और बहू मकानमें एक ओरसे दूसरी ओर भागती रहती थीं ; नौकरोंके साथ कभी हँसतीं और कभी लड़ती थीं; शरीरपर ख़ूब गहने लादे रहती थीं, जिनकी झनझनाहटसे उनके आनेकी सूचना मिलती रहती थी—बस, उनके बड़प्पनकी सीमा इतनीही थी। घरको सम्हालना या कोई काम देखना, उन्हें आताही न था। उनकी आधी साड़ी कभी तो ज़मीन चूमा करती थी और कभी बेअदबीसे सिरपर दीखती थी। बैठते-उठते उनके कपड़े किधर जाते हैं—इसकी न उन्हें ख़बर थी और न ख़बर रखनेकी आवश्यकताही जान पड़ती थी। बड़े घरकी बहू-बेटीको कोई उनकी भूल नहीं बता सकता था और बतानेकी किसीको ज़रूरत भी न थी। बुद्धिधनने यह सब अपनी आँखों देखा था और ऐसा हाल उसे ख़राब जँचा था ; इसलिये वह इस बातकी ख़बर रखता था, कि मेरे यहाँ वह हाल न हो। नवीनचन्द्र युवा था और उसकी गिनती बड़े आदमियोंमें नहीं की जा सकती थी ; इसलिये बुद्धिधनके घरकी स्त्रियाँ भोजन करते समय इसके सामने बैठी रहती थीं ; पर बातोंमें कभी भाग न लेती थीं।

नवीनचन्द्र स्वयं लज्जीला मनुष्य था, स्त्रियोंसे परिचय करने-को उसे आदतही न थी और जहांतक होता, वह ऐसा वर्ताव करता था, जो किसी घरवाले और नौकरको जरा भी न अखरता था। उसकी सुशीलताके कारण तीन चार दिनोंमेंही लोग उसे घरके आदमीके समान मानने लगे। पहली बारके मिलनेमें बुद्धिधनको वह कुछ विचित्र आदमीसा मालूम हुआ था, पर पीछे उनका वह विचार बदल गया। भोजन करनेके बाद प्रमादधन उससे बातें किया करता था। प्रमादधनको उसकी 'अँगरेज़ीकी योग्यता' बहुत बढ़ी-चढ़ी मालूम हुई और उसने यह बात अपने पितासे कही। यह भी मालूम हुआ, कि यह बम्बईसे निकलनेवाले प्रसिद्ध अँगरेजीके दैनिक और मासिक पत्रोंमें लेख भी देता है। ऐसे घूमते-फिरते हुए मनुष्यकी इतनी योग्यता बुद्धिधनने पहले स्वीकार न की।

एक दिन नवीनचन्द्र अपने नियमित समयसे कुछ पहले आ-गया था। उस दिन किसी सरकारी कामके कारण बुद्धिधनके खानेका समय बीत जानेपर भी वह न आया था और कितनी देरमें आयेगा, इसका कोई ठिकाना भी न था। नवीनचन्द्र प्रमादधनके साथ एक कमरेमें बैठा था। और भी पाँच-सात आदमी प्रमादधनसे मिलनेके लिये आये थे। वे भी उस समय वहीं बैठे थे। नवीनचन्द्रके आतेही उन सबने उठकर इसका स्वागत किया। वह दुपट्टा और कोट आदि उतारकर बैठा।

इसी समय डाक आगयी। चपरासीने चिट्ठियाँ और अख़बार प्रमादधनके सामने रख दिये। सबसे पहले उसने एक अँगरेज़ी दैनिकका कवर फाड़ा और झट पट पृष्ठ लौटकर उसने हर्षसे कहा,—"नवीनचन्द्र! वह लेख सबसे पहले नम्बरपर छपा

है।" प्रमादधनने अपने पिताका समाधान करनेके लिये नवीनचन्द्रसे एक लेख लिखवाकर उस पत्रके सम्पादकके पास भेजा था, वही इस समय छपकर आया था।

एक मित्रने कहा,—"हाँ, हाँ, यही है ; पढ़ो।"

नवीनचन्द्र उसे पढ़ने लगा। इसी समय बुद्धिधनके आनेकी ख़बर आयी। सब अपने-अपने घर गये। प्रमादधन और नवीनचन्द्र भोजन करनेके लिये गये। उस समय अलककिशोरी रसोईके पासवाली एक खिड़कीपर हाथका सहारा लिये बैठी थी, उसी जगह खिड़कीपर हाथ रखे कुमुदसुन्दरी भी खड़ी थी। उसी जगह एक अँगीठीमें आग रखे हुए सौभाग्यदेवी ताप रही थीं। चार-पाँच और युवतियाँ भी बैठी थीं और आपसमें बातें कर रही थी। वृद्ध दयाशङ्करकी स्त्री और एक जमना कहार सौभाग्यदेवीके साथ आग ताप रही थीं। प्रमादधनने पिताके आनेकी ख़बर सबको दी, इसलिये सब उठ-उठकर अपने-अपने घर चली गयीं। केवल घरकी स्त्रियाँ रह गयीं। बुद्धिधन बैठ गया और उसके बराबरही नवीनचन्द्र और प्रमादधन भी बैठे।

जिस ओर कुमुदसुन्दरी खड़ी थी, उधर भोजन करनेवालोंकी पीठ थी। अलककिशोरी उसके पास जाकर थोड़ी देरतक खड़ी रही और फिर उसे दोनों हाथोंसे लिपटाकर कहने लगी,—"भाभी, इन जाड़ोंमें भी तुम्हारा बदन इतना गरम है?" कुमुदसुन्दरीने उसकी ओर देखकर मुसकुरा दिया और वह उसे छोड़कर खड़ी होगयी। कुमुदसुन्दरीको नवीनचन्द्रके देखनेसे बढ़ता हुआ दुःख कम होता मालूम होता था।

भोजन करते समय प्रमादधनने नवीनचन्द्रके लेखकी बात

छेड़ो। बुद्धिधनने कहा,—"हाँ, साहबके सरिश्तेदारने भी बहुत तारीफ़ की है। अब नवीनचन्द्र! यदि तुम्हें सब प्रकारके अनुभव प्राप्त करने हों, तो यहीं रहो। हमें एक अँगरेज़ीके अच्छे लेखककी आवश्यकता है। मैं अवसर देखकर राणाजीसे कहूँगा।"

जब सब भोजन कर चुके, तब रात बहुत चली गयी थी। इस लिये नवीनचन्द्रके लिये वहीं सोनेका इन्तज़ाम किया गया। प्रमादधन अपनी बैठकमें चला गया। अलककिशोरी भी रात अधिक बीत जानेके कारण अपने श्वशुरके घर न आयी। कुमुदने कहा,—"वहाँ कहला भेजो।" पर उसने कहा —"वे जान तो जायेंगेही, कि रात अधिक बीतनेसे नहीं आयी। फिर कहलानेकी क्या ज़रूरत है?" प्रमादधनके सोनेमें अभी देर थी, इसलिये ननद-भौजाई अँगीठीके पास बैठकर बातें करने लगीं। नवीनचन्द्र सो रहा था।

बुद्धिधनको आज कुछ असाधारण घटनाओंपर विचार करना था। इसलिये बाप-बेटे बैठकमें जाकर बैठे।

"पिताजी! आपने शठरायके समाचार सुने?"

"मुझे मालूम होता है, कि अपना भेद कुछ उधर वालोंको मालूम होगया है। पर किसके द्वारा और कैसे हुआ?"

इसी समय आज्ञा लेकर एक सिपाही-वेशधारी मनुष्य भीतर आया। यह निर्भयराम था। यह शठरायके पास विश्वासी बनकर रहता था; पर वास्तवमें बुद्धिधनका आदमी था। वह दोनोंके सामनेही जा बैठा।

"बुद्धिधन भाई! भेद कुछ-कुछ पहुँच गया है।"

"कैसे?"

"आजतक तो आपके और राणाजीके सम्बन्धके विषयमें वह अन्धेरेमें था। पर आजकल आप दोनों बार-बार मिलते हैं और राणाजी जब शिकारके लिये गये थे, तब आप राजेश्वरके मन्दिरमें मिले थे, इसकी ख़बर शठरायको लग गयी है।"

"बस, इतनाही या और कुछ?"

"जिन-जिनपर इसे सन्देह होता है, उन्हें दूर कर देनेकी इसकी आदत है।"

"तब?"

"आपके और राजवाके सम्बन्धके झूठे ख़त उसने तैयार कराये हैं और वे राणाजीको दिखाये जायेंगे।"

बुद्धिधनको कुछ क्रोध आगया! उसने कहा,—"उन्हें दिखाने का भार किसने लिया है?"

"राणाके पुराने खवास महावीरने।"

"ठीक है।"

"और काग़ज़ लिखे हैं मैंने।" यह कहकर उसने पन्द्रह बीस काग़ज़ अमात्यके सामने रख दिये।

"कब दिखाये जायेंगे?"

"जब आप दरबारसे वापस लौटेंगे, उसके बाद।"

"अभी इन्हें मेरे पासही रहने दो। कल बारह बजे मैं दे दूँगा।"

इस समयसे निर्भयरामपर बुद्धिधनका विश्वास औरभी अधिक बढ़ गया। इसी प्रकार दर्बारियों और अमलोंमें इसने बहुतसे अपने जासूस लगा रखे थे, पर ऐसा प्रसङ्ग बहुत थोड़ोंको मिला था, जो वे कुछ अपना कर्त्तव्य दिखा सकते। निर्भयराम कसौटीमें सच्चा निकला और उसपर बुद्धिधनका

प्रेम और भी अधिक बढ़ गया। हाँ तो अबसे राणाजीके विश्वास-पर सावधानी रखनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। जिस राणा-को वह अपना मानता था, उसके विषयमें वह सावधान होगया और उसने सोचा, कि जो राजवाके विषयमें राणाके चित्तमें किसी प्रकारकी शङ्का बैठा दी जायेगी, तो फिर उसका नि-कालना महाकठिन हो जायेगा और 'काता-पींदा फिर कपास' हो जायेगा। अबतक दरबारके सब भेद स्वयं राणा कह देता था, पर अब इस बातकी आवश्यकता हुई, कि राणाके पास भी एक अपना आदमी रखा जाये। अपने आदमी कौन हैं?—गड़बड़-दास और निर्भयराम। यदि निर्भयरामको राणाके पास रखा जाये, तो इसके उपकारका भी बदला हो जायेगा। एक पल भरमें जैसे बिजलीकी चमकसे तमाम आकाश चमक उठता है, उसी प्रकार इस ढंगके सब विचार बुद्धिधनके मस्तिष्कमें झट-पट घूम गये। और जो बहुतसे मामले समझमें न आते थे, उनका भी मतलब समझमें आगया। युद्ध-सामग्री तैयार होनेपर भी अपनी ओरसे पहला हमला करनेके लिये जो जीमें कचाई थी, वह निकल गयी। संशयका समय बीत गया और निर्णय-का समय आगया।

"निर्भयराम! अब भिड़ जानेका समय आगया। इन काग़-ज़ोंको देखकर राणाजी शठरायपर अवश्य विश्वास दिखायेंगे और मुझपर नाराज़ होंगे। तब वे शठरायके विश्वासी आदमीको अपने पास रखनेके लिये कहेंगे। उस समय शठराय तेरा नाम ले, ऐसा उपाय कर। बता, यह हो सकता है कि नहीं?"

"हाँ, हो क्यों न सकेगा? मेरे जैसा विश्वासी आदमी आज उसके पास और हैही कौन?"

"अच्छा, और गड़बड़ अब इसके पास आता है या नहीं ?"

"मैं वह बात तो कहनाही भूल गया था। दुष्टरायकी स्त्री रूपालीका वह प्रेमपात्र होगया।"

"अच्छाही हुआ। पर उसे होशियार रखना। उसके साथ उसको और फिर अपनेको रखनेकी ज़रूरत है। दो धार-की तलवार होनी चाहिये। इसे ठीक कर लेना।"

"पर क्या उसका कुछ अविश्वास होनेका भी कारण है ?"

"दीवान और अमात्यकी लड़ाईमें यदि दोनों हानि उठाकर निकम्मे होजायें, तो यह दीवान बने—अपने आपको वह राणाका विश्वासी समझता है।"

"बहुत ठीक है। अच्छा अब आज्ञा चाहता हूँ।"

"अच्छा ; पर मुझसे फिर मिलना।" निर्भयराम गया। इसके पूरे सिपाही वेशको देखकर अमात्य मुसकराया।

"प्रमाद ! अबसे इस बातकी ख़ूब होशियारी रखना, कि दीवानके घरसे कोई खाने पीनेकी चीज़ आये, तो आदरके साथ लेना ; पर उसे ज़मीनमें गड़वा देना।"

"क्या जहर देनेका डर है ?"

"इसमें तो सन्देह नहीं, कि पर्वतसिंहकी उसने हत्या की, और राणा जड़सिंहको भी उसने मारा ऐसा लोग कहतेही हैं फिर उसका विश्वास क्या ? अच्छा, अब तुम जाओ, सो जाओ।"

प्रमादधन खड़ा होगया और आश्चर्यमें डूबता उतराता वहाँसे चला गया। बुद्धिधन भी खड़ा हो गया और उस लम्बे कमरेमें अकेला टहलने और मन-ही-मन तर्क करने लगा।

"अच्छा, तो दीवान अब अपनी कार्रवाईपर तुलही गया। ख़ैर

मेरे साथ उसने चाहे जितनी बुराई की हो, पर मैंने उसे अपना सगा-सम्बन्धी और भाईही समझा था।

"ठीक है, अब बिना मैदानमें निकले काम नहीं चल सकता। अबतक यह दुश्मनी छिपी थी; पर अब प्रकट होगी।

"गड़बड़की चाल भी ख़ूब है, मैंने भी एक बार यही चाल चली थी, पर मुझमें और उसमें अन्तर है। मैंने किसीका ख़ून नहीं कराया—मुझे परमेश्वरका डर है,—यदि किसीने मेरे कहे बिना किसीका ख़ून किया हो, तो इसमें मेरा दोषही क्या है? पर्वत मरा; पर इसमे मेरा अपराध नहीं है।

"पर तू मेरा भी गुरु बना चाहता है। मेरा भी ख़ून?

"यदि यह राजपूत हाथसे निकल गया, तो फिर तेरा नहीं होगा। एक बार रमाबाईके हाथसे निकालनेमें बड़ी मुश्किलका सामना करना पड़ा है, अब जो इस कलावतीके हाथका खिलौना बना, तो बड़ी मुश्किल होगी। फिर तो भूपसिंह अपने हाथका नहीं रहेगा।" एक घोर बियाबान जङ्गलमें जैसे मनुष्य उसकी थाह लेनेको खड़ा होजाता है, वैसेही उस बड़े कमरेमें अमात्य खड़ा होगया। उसका माथा गरम होगया और कलेजा धड़कने लगा। वह फिर सोचने लगा,—"हाँ, ख़ूनी! मेरा भी ख़ून?

"तेरा सत्यनाश जाये, शठराय! तुझे कलावती कहाँसे सूझी। राजबाकी बात जानकर कलावतीका भेद समझा। यह भूत तो ख़ूब भरा, वाह! मुझे और राणाको दूर करनेका कैसा रास्ता निकाला है?

"राजबा!" गयी-गुजरी बातें प्रत्यक्ष होगयी। मरी हुई राजबा मानो सामने आकर खड़ी होगयी और प्रेमसे उसका हाथ पकड़ने लगी है।

"भूत !" बुद्धिधन घबरा गया ; पाँव काँपने लगे ; दिल धड़कने लगा ; जीभ तालूसे सट गयी। वह काँपकर तकियेके सहारे गद्दीपर बैठ गया। वह राजसिंहका वेश धरकर आयी है। मानो उसने कन्धेपर हाथ रखा, उसका बोझ बुद्धिधनको मालूम हुआ। सुवर्णपुरका अमात्य दीन क्षुद्र बन गया और अपने विस्मय-विस्तारित नेत्रोंसे अदृष्ट घटनाको देखने लगा। उस समय अमात्य प्रायः मूर्च्छितसा होगया।

इसी समय कमरेकी एक ओरका दरवाज़ा हिला, फिर खुल गया और सौभाग्यदेवी भीतर आगयी। उस पवित्र सतीपर दृष्टि पड़तेही वह मलिन स्वप्न दूर होगया। वह उसकी ओर श्रद्धाकी देवीके समान देखता रहा।

"मेरे प्राणप्यारे! तुम जैसे-जैसे राजकाजमें फँसते जाते हो, वैसेही हमसे दूर होते जाते हो। इस तरह अकेले जाग-जागकर रातें बिता देते हो और हमारे साथ बातें करनेकी भी फुरसत नहीं ? जब छोटे थे, तब तो रातको बारह-बारह बजे तक बातें करते थे, पर अब तो तुम हो और तुम्हारा काम है।"

हँसती-हँसती देवी आयी और पतिके शरीरको छूकर बैठ गयी। फिर गलेमें हाथ डाल दिया और उठाकर शयनागारमें ले गयी। दो बच्चोंके बाप होनेपर भी उनका भाव तरुण था और अवस्था अभी उनपर जय न पासकी थी।

दोनों लिहाफ़में आरामसे लेट गये। धीरे-धीरे निद्राने दोनोंको अचेत कर दिया। पर पुरुषकी वह अवस्था अधिक समयतक न रही। फिर स्वप्न प्रारम्भ हुआ।

"शठराय! यदि मेरेही ख़ूनसे मुझे सन्तोष हो जाता, तो मैं इतना झगड़ा उठाताही नहीं। पर तेरा इरादा राणाको भी

साथही मार डालनेका है। अस्तु; यही मेरे लिये अनुकूलता है। बस, यही रास्ता है, जिससे राणा मेरा होकर रहेगा।

"तेरा यह इरादा होगा, कि बुद्धिधनको ख़तमकर राणाको मुट्ठीमें करूँ। और यदि राणा हाथमें न आये, तो उसे भी खपा डालूँ, क्यों? वाह वाह!

"पर यह बात भी ठीक है, कि दुष्टराय कलावतीके घर जाता है।"

इसी प्रकार विचारोंके धूमकेतु सिरमें चक्कर मारते थे। उन्हें देखनेवाला वहाँ कोई न था। दीपक उज्ज्वल भावसे अपना प्रकाश कमरेमे फैलाता था और जाड़ोंकी लम्बी रात इसी प्रकार छोटीसी जान पड़ती थी।



नौवां परिच्छेद।

उन्मत्तताका परिणाम।

शीलापुरसे आनेके बाद बुद्धिधनने राणाकी सहायतासे बहुत अच्छा घर बनवाया था। उसके मकानका सदर फाटक बहुत विशाल था, दरवाज़ेके बाद चौक था, इस चौकके दोनों ओर दो भाग किये गये थे,—एक ओर रसोई घर, भोजनकी जगह और खाद्यसामग्रीकी जगह थी। दूसरी ओरके भागमें स्त्रियोंकी बैठक थी। पीछेकी ओरके कमरे सोने-बैठनेके काममें आते थे। सदर दरवाज़ेके पास एक अँगरेज़ी ढंगका बेडिङ्ग रूम था। बाहरकी ओर नौकर-चाकरोंके बैठनेकी जगह थी। स्त्रियोंकी बैठकके ऊपर वाला कमरा प्रमादधनका शयनगृह था। दूसरी ओरका कमरा बहुत बड़ा था; इसलिये वह बुद्धिधनकी बैठकके काममें आता था। प्रमादधनके शयनगृहसे बुद्धिधनकी बैठकतक जो स्थान था, उसमें मित्रोंके ठहरने और बैठनेकी जगह बनायी गयी थी। बैठकके ऊपर बुद्धिधनका शयन-गृह था और वहाँसे बैठकमें भी रास्ता गया था।

चारों ओरके कमरोंके सामने रविशें बनायी गयी थीं, जिससे कमरोंमें आसानीसे जाया जा सकता था। नवीनचन्द्रके सोनेका प्रबन्ध प्रमादधनकी बैठकमें किया गया था। नवीनचन्द्र छिराग़

बुझाकर सोनेकी तैयारी कर रहा था, इसी समय दो ओरसे दो आवाज़ें उसे सुनाई दीं। एक ओर बैठकमें अमात्य, निर्भय-राम और प्रमादधन बातें कर रहे थे और दूसरी ओर अलक-किशोरी और कुमुदसुन्दरी बातें कर रही थीं। बम्बईसे किताबोंका पार्सल आ गया था, उन्हें पढ़कर उसे बहुत कुछ सन्तोष हुआ था, पर अकेली उससे तृप्त न होकर कुमुद एक अंगरेज़ीकी पुस्तक लेकर पढ़ रही थी और उसका अनुवाद करके अलकको समझा रही थी। अलक उसे एकाग्र चित्तसे सुन रही थी और उसका चित्त खिन्न हुआ जाता था।

"देखो, अलक बहन! यह एक उपन्यास है। बेचारी स्त्रीको छोड़कर उसका पति चला गया है, शोकसे व्याकुल होकर स्त्री मन-ही-मन रोती है। उसके मानसिक विचारोंको पढ़कर आँसू आ जाते हैं। सुनो।"

"कोई दुःख और कोई दशा चिरकाल तक नहीं रहती। तूफान चलता है और शान्ति विराजने लगती है। चाहे जैसे पाप किये गये हों, पर ईश्वर उन्हें अन्तमें भुला देता है"—

"इसका मतलब क्या?"

"इसका अर्थ यही है, कि हमने चाहे जैसे पाप किये हों, उससे पश्चात्ताप होता है, पर वह सदाके लिये नहीं। एक लम्बे समयके पीछे सब बातें विस्मरणकी ओटमें हो जाती हैं और उस समय ऐसा जान पड़ता है, मानो परमात्माने मनुष्यके हृदयसे दुःखका बोझ हटा लिया।"

"वह बेचारी दुःखिनी कहती है, कि जब पापी मनुष्योंकी यह दशा है, तब मेरे इस दुःखका अन्त परमात्मा कब लावेंगे! मैं तो निर्दोष हूँ। मेरे हृदयका दुःख कभी दूर होगा या नहीं?

और मेरी इच्छाएँ परमात्माके निकट अपरिमित नहीं हैं। मैं जो कुछ चाहती हूँ, वह उसके विश्व-साम्राज्यकी एक बहुतही छोटी चीज़ है। मैं इतनाही चाहती हूँ, कि यदि और भी दुःख-पर-दुःख आना हो, तो मुझे मालूम हो जाये,—मैं जान जाऊँ, कि इसकी सीमा यहाँतक है। इसके पीछे यदि परमात्मा दया करे, तो मेरा हृदय फट जाये, बस।"

"यह इसने क्या कहा?"

"यदि अब कभी मैं उनसे न मिल सकूँ, उनकी पवित्र मूर्त्तिको देखकर अपने नेत्रोंको तृप्त न कर सकूँ—यदि कभी ऐसा अवसर न आवे, तो मुझे मालूम हो जाना चाहिये। अन्तिम भेंटकी आशा दूर नहीं होती और अब भेंट हो नहीं सकती, इसलिये हृदय कैसा हुआ जा रहा है। यदि आशा उसीके साथ चली जाये, तो यह सूना हृदय आसानीसे फट सके, बस सब झगड़ा तय हो जाये।" * कुमुदसुन्दरीने कुछ विचार किया और फिर एक लम्बी साँस ली। अलककिशोरीने कहा,—"ठीक है, मैं इसे समझती हूँ और यह बहुत अच्छा लगता है। पर जो तुम गा रही थी, वह इससे भी अच्छा लगता था यद्यपि उसका मतलब तो मैं नहीं समझती हूँ। उसे ज़रा फिर गाओ।" कुमुद गाने लगी,—

"रुरुदिषा वदनाम्बुरुहश्रियः
सुतनु सत्यमलंकरणायते।
तदपि संप्रति सन्निहते मघा।
वाधिगमं धिगमंगलमश्रुणा ॥†"

---

*वर्ड्सवर्थ कृत—"दी फोर-सेकन्"

†माघ—सर्ग ६

"इसका मतलब यह है, कि हे सुन्दर अङ्गवाली, पतिके वियोगसे तेरा मुख-कमल रुआसा हो गया है, ऐसे समयमें आँसू गिराकर अमङ्गल न कर।"

फिर मेघदूतसे यक्ष और मेघकी बात-चीतमेंसे कुछ श्लोक सुनाकर कुमुदने उसका अर्थ अलकको समझाया।

"इत् तेरेकी, तुम तो बड़ी सरस हो।" यह कहकर अलकने कुमुदका आलिङ्गन किया। फिर उसके मुँहकी ओर देखकर कहने लगी,—"भाभी, सचमुच तुम बड़ी अच्छी हो। यदि तुम स्त्री न होकर पुरुष होतीं, तो मैं तुम्हारेही साथ विवाह करती और एक घड़ीके लिये भी तुम्हें न छोड़ती।

"भाभी, जो ऐसी-ऐसी बातें पढ़ते हैं वे रङ्गीले क्यों न हों! हम समझती तो सब हैं, पर अपने दिलकी बातें दूसरोंको नहीं समझा सकतीं। पर तुम कैसी उस्ताद हो। अच्छा अब तुम पढ़ो, मैं सुनूँगी।"

बातें करते समय दोनोंमेंसे किसीको यह स्मरण न रहा, कि आज प्रमादधनकी बैठकमें नवीनचन्द्र सोता है, इसलिये धीरे-धीरे बातें करें। आँखसे कुछ नहीं दिखाई दे सकता था, पर उस जगहसे सब बातें सुनी जा सकती थीं। इसके अलावा निर्भयरामकी आवाज़को छोड़कर बाक़ी सबकी आवाज़ नवीनचन्द्र पहचानता था। दोनों ओरके आकर्षणसे उसका मन खिंचता था। शय्यासे उठकर वह कभी इस ओर कान लगाकर सुनता और कभी उस ओर। सुनी हुई बातोंको किसीसे कह देनेके लिये वह इतना उत्सुक नहीं था, बल्कि गुप्त बातोंके सुननेका अपना कौतूहल वह दूर कर रहा था और इसीलिये इसे वह निर्दोष समझता था।

ननद-भौजाईकी बातें सुनकर उसका चित्त प्रसन्न हो रहा था और अमात्यकी बातें सुनकर वह चौंक उठता और उसे बड़ा आश्चर्य होता था। कुमुदसुन्दरीकी कवितासे, रागसे और उसके प्रत्येक शब्दसे अपनी जागृत होती हुई मनोवृत्तिसे, और कुछ गुप्त कारणोंसे नवीनचन्द्रका मन पिघल रहा था। यदि उस समय उजाला होता और कोई उसके मुखके उतार-चढ़ाव-को देखनेवाला होता, तो वह उसपर तर्क कर सकता। पर यह दशा झट बदल जाती और अमात्यकी राजनीतिक चालें जाननेके लिये उसका मन घबरा उठता था।

नवीनचन्द्र ऊपरसे देखकर बुद्धिधनको सुखी और सौम्य समझता था, पर उसकी गुप्त चिन्ताका एक पट खुलतेही उसे मालूम हुआ, कि वह चिन्ताके समुद्रमें आकण्ठ डूबा हुआ है। निर्भयरामके कहे हुए समाचार और बाप-बेटेकी बातें सुनकर उसके मनमें हो आया, कि राजाओंके स्वर्ण-जटित मुकुटके नीचे भयङ्कर चिन्ता-सर्पिणी बैठी रहती है। दीवान और मुत्सद्दी-अहलकारोंकी चिन्ता वे ही जान सकते हैं—दूसरोंको इसकी हवा नहीं लग सकती। सोनेमें कलियुगका निवास है, इस समस्याको वेही समझ सकते हैं। बुद्धिधनको अमात्य-पदवीसे सन्तोष न होकर अब दीवानगीरोपर नज़र दौड़ानी पड़ती है। उसके लिये इतनी शङ्का, इतनी युक्तियाँ, इतनी चिन्ता करनी पड़ती है। ऐसेही विचारोंमें नवीनचन्द्र डूब गया और सोचने लगा, कि सचमुच—

"अतिलोभाभिभूतस्य चक्रं भ्रमति मस्तके।"

राजबाकी बात नवीनचन्द्रकी समझमें न आयी। सौभाग्यदेवी-की बात सुनकर उसे कुछ अचम्भा हुआ, उसे ख़याल हुआ

कि इस अवस्थामें पहुँचनेपर भी मनुष्यके मनमें विषय-वासना नहीं निकलती। फिर सोचा, कि बड़े भारी व्यवहारसे जालमें फँसकर मनुष्य गृहस्थीका सुख नहीं भोग सकता। ऐसे-ही-ऐसे विचार नवीनचन्द्रके मस्तिष्कमें चक्कर मारने लगे।

"हा, यह दीवानगीरी किस लिये है? इतने खून क्यों किये जाते हैं? इतने कपट-जाल किसके लिये हैं? आदमीका मस्तिष्क इतना बोझ कैसे सहता होगा? यह तो वैसीही बात है, कि बाहरसे तड़क-भड़क और भीतरसे मैल। परमात्माकी सारी रचनाएँ ऐसीही विचित्र हैं। सुन्दर और दर्शनीय शरीरमें भी मल और मांस है। सूर्योदयके समयकी सुहावनी पृथ्वी रात्रिके घोर अन्धकारसे निकलती है। बड़प्पनके इतिहासको देख डालो—वह कितनी कठिनाई और कैसे ऊबड़-खाबड़ मार्गसे जाता है। पढ़े-लिखे शिक्षितोंको असन्तोष रहता है, कि वे इतना करके भी निर्धनताकी गोदमें लोटते हैं और दीवान, मुत्सद्दी धनके ऊपर बिछौना करके सोते हैं। पर यह सोचनाही तो बुरा है। यह चिन्ता, यह जाल, ऐसे नीच मार्गोंका अनुसरण और ऐसे घोर कर्म कभी मानसिक शान्ति नहीं दे सकते। यदि इन मार्गोंसे बड़े-बड़े पद मिलते हैं और धन प्राप्त होता है, तो हुआ करे। दीवान और मन्त्री लोगो! तुम्हारा सुख तुम्हींको मुबारिक हो।"

"पर यदि मन्त्री विद्वान् हो, तो यह दशा न हो।"

"नहीं यह व्याधि तो सबके पीछे है। विद्वान् मन्त्रीके पीछे विद्वत्तासे भरे दुःख होंगे।".

"और इस सौभाग्यदेवीकी जैसी शिकायतें, तो सभी मन्त्रियोंकी स्त्रियाँ करती हैं। इन बेचारे मन्त्रियों और बड़े-बड़े

सेठोंकी भी यह दशा है। वे स्त्रीसे बात नहीं कर सकते। रात-दिन अपने कामकी धुनमेंही लगे रहते हैं।"

"मन्त्रियो! तुम राज्य चलानेमें कौन-कौनसे पराक्रम दिखाते हो? तुम मूर्खोंको मदारीके बन्दरकी तरह नचाना चाहते हो और बदमाशोंके साथ पक्के बदमाश बनकर चाल-चलते हो। यदि कोई तुमसे यह कहे, कि तुम बुद्धिमान् और उत्तम विचारवाले नहीं हो, तो वही मूर्ख कहलायेगा। पर तुम्हारी दुनियाकी आब-हवाही गन्दी है और उस गन्दगीका असर तुम्हारे मन और बुद्धिपर कैसे न पड़ता होगा? इसे परमेश्वरही जाने। इस गन्दगीका असर पढ़े-लिखोंपर कितना पड़ता होगा, यह भी परमात्माके सिवा और कोई नहीं जान सकता। मैं इस अनुभवमें बच्चा हूँ और मैंने आज जो कुछ जाना है, वह इसका पहला पाठ है। परमात्मा जाने, इसके पीछे मुझे किस नाटकका दृश्य देखना होगा।"

"पर कुमुदसुन्दरी! चाहे कुछ हो, तेरा दर्शन इस देशमें न होनाही अच्छा था। कमल! तू सरोवरमेंही शोभा पा सकता है। विद्याचतुरकी सुशीला बालिका! तेरी क़ीमत बहुत है, दीवानगीरीके ओहदेपर चढ़े हुए ये क्षुद्र मनुष्य क्या तुझसे बढ़कर हो सकते हैं?

"गिरिशिखरगतापि काकपंक्तिः
"नंहि तुलनामुपयाति राजहंसैः ॥"

"राजहंसिनी! तू बालिका है, स्त्री है पर,

"राजहंसिनी! तेरे दिन यहाँ कैसे बीत रहे हैं? पवित्रताकी खान इस अपवित्र और मलिन देशमें! आह! दिव्य उत्कर्ष इस गन्दी जगहमें!

"खिला है कुसुम विपिनमें आय,
"रङ्ग मनोहर सरस कलीसे फूट रहा है धाय।
"मन्द बयारी, लचक रहा है कीकरके ढिग हाय॥
"प्रति झोंकेसे कोमल कलियाँ छिद-छिदकर छितरायें।
"हाय, अभागे कुसुम विपिनमें दु:ख न देखें जायँ॥

"हाय! हाय!! स्वार्थमें परमार्थ डूबना चाहता है। सरस्वती-चन्द्र! यह ख़बर न थी, कि ऐसा होगा। बहुत बुरा किया। तेरी विद्यापर धूल पड़ गयी।"

धड़कते हुए कलेजे और विचारोंकी तेज़ीसे दौड़ते हुए मस्तिष्कमें एक हलकी सी बिजलीका असर हुआ और इसी आवेशमें अपने मनको दौड़ाता हुआ विदेशी यात्री, नवीनचन्द्र, सुवर्णपुरमें, सुवर्णपुरके अमात्यके घरमें, एक अन्धेरे कमरेमें एक मोटी रजाईमें सो गया। अमात्यके घरमें सब लोग भी सो गये; मानो सुवर्णपुर शान्त होगया। कुमुदसुन्दरी अपने शरीरके श्वासोंके साथ सो गयी और दु:ख भोगता हुआ उसका मन भी निद्राकी गोदमें जा बैठा। अलककिशोरी भी अपने घरके सब दरवाज़े बन्द कर लिहाफ़ ओढ़कर सो गयी। सपनेमें मानो डरता डरता पति पूछ रहा है,—"आज तुम यहाँ क्यों सोयी थीं?" उसे बिना किसी प्रकारको मकानकी या कारण बताये, वह उत्तर दे रही थी—"वैसेही सो गयी थी, यहाँ या वहाँ सोनेमें तुम्हें क्या?" इस सपनेके पूरा होते-न-होते वह दूसरा सपना देखने लगी। उसमें वह कृष्णकलिकाके साथ मेघ-

दूतके सुने हुए श्लोकोंकी हँसी कर रही थी। इसी समय वह भी हँसी करने लगी और इससे अलक उसपर नाराज़ होगयी।

एक घण्टेतक यह शान्ति निर्विघ्न रही। किन्तु इसमें विघ्न उपस्थित होनेवाला था। घरके पीछेकी ओर एक गली थी और उस गलीमें एक खिड़की थी। उसी गलीमें चार-पाँच आदमी घूम रहे थे। उनका सरदार जमाल खाँ था। कृष्णकलिकाने डरते-डरते अलककिशोरीको बहुत कुछ सिखाया था, पर अमात्य-नन्दिनीने अभिमानसे उसका तिरस्कार किया था। छोटी-छोटी बातोंका परिणाम बड़ा भयङ्कर होजाता है, इस बातकी इसे ख़बर न थी। ख़लकनन्दा और रूपानीको उनके यारोंके साथ जाते देखकर इसने तिरस्कारकी दृष्टिसे मुँह मरोड़ा था और वैसा भाव इसने क्यों दिखाया था, यह भी इसने कई औरतोंके सामने कह सुनाया था। इस बातका इसे तो ख़याल भी न था, पर ख़लकनन्दा इसे न भूल सकी थी। वह भी दीवानकी लड़की थी और सौभाग्यदेवीसे कम उमरकी न थी, इसलिये यह दुधमुँही छोकरी उसकी आँखोंमें गड़ गयी थी। ख़लकनन्दाके मुँहपर कोई कुछ न कह सकता था, पर एक स्त्रीने उससे कहही दिया, कि अलककिशोरीने तुम्हारे विषयमें ऐसे विचार प्रकट किये हैं। अमात्यको दीवानगीरी मिलनेवाली है—यह बात कभी-कभी उसके मुँहसे निकल जाती थी और इस प्रकार बड़ोंका वैर बच्चोंमें भी आ गया था।

सौभाग्यदेवी पवित्र थी। उसकी पवित्रताका अंश अलक-किशोरीके भी बाँटे पड़ा था; पर अन्तर इतनाही था, कि उसे अपनी पवित्रताका अभिमान था और दीवानके चरित्र-भ्रष्ट बच्चों-को देखकर वह अपनी मानसिक घृणा प्रकट किये बिना न रहती

थी। वह अपने पतिको भी अपनी दाबमें रखती और किसीको कुछ न समझती थी। रूपानीने ज़ोर दिया और खलकनन्दाने सोचा, कि इस अभिमानको चूर करना आवश्यक है। उसने जमालको इस कामके लिये तैनात कर दिया। उसके एक पंथ दो काज सिद्ध हुए। अलककिशोरीकी सुन्दरता देखकर वह मोहित होगया था और खलकनन्दाकी तरह वह भी अपनी हो जाये, यही चाहता था। वह इस विचारमें था, कि जिस समय यह अपने सासरे जाये, तब इसे पकड़ना ठीक होगा; पर वह उस दिन सासरे न गयी। उसने अपने साथियोंको लौटा दिया। खुद जमाल एक बजेतक वहीं रहा। अन्तमें वह सोचने लगा,—"इतनी मिहनत करके ख़ाली हाथ फिरना तो अक़्लमन्दी नहीं। अगर यह हत्थे न चढ़ी, तो बस हो चुका! चलो जी, फ़ौजदारके साथ रोज़ चोरोंका सबक़ मिलता है, आज उसकी आज़माइश-का दिन है।"

बुद्धिधनके घरमें घुसनेके विचारसे जमाल दीवारके पास गया। ऊपर एक खिड़की नज़र आयी। उसपर छज्जा था। जमालने छज्जेपरसेही जानेका निश्चय किया। फिर मूँछोंपर-हाथ फेरता हुआ सोचने लगा—"यह जन्नत तो बन्देहीकी क़िस्मतमें है। दोस्तोंकी क़िस्मतेंही बन्द रहीं।" अपने सौभाग्यकी कल्पना करता हुआ जमाल छज्जेपर चढ़ गया। फिर धीरे-धीरे सम्हल-कर आगे बढ़ने लगा। इसी समय पासके पीपलपर बैठा हुआ उल्लू ज़ोरसे बोल उठा। फिर सन्नाटा छा गया। जमाल फिर आगे बढ़ा। चलते-चलते वह बुद्धिधनके कमरेके पास पहुँचा, वहाँ कुछ देर खड़े रहनेके बाद फिर आगे बढ़ा। जिस घरमें अलककिशोरी सोयी थी, उसकी एक खिड़की खुली रह गयी

थी ; बस, जमाल उसी राहसे भीतर जा घुसा और अमात्य-कुमारीके पलंगके पास पहुँच गया।

एक कोनेमें उज्ज्वल प्रकाशवाला दीपक जल रहा था। अलककिशोरी नींदमें पड़ी थी; मानो नदीके किनारे बालूपर मस्त बाघिन सो रही हो। जाड़ेके दिन होनेपर भी छातीतक केवल साड़ीकी पतली कोर पड़ी थी। दीपकके प्रकाशमें वह दृश्य बहुतही सुहावना जान पड़ता था। जब हवासे दीपककी लौ काँप उठती थी, तब उसके मुखपर मानो तेजकी लहरें छा जाती थीं, देखनेवालेको काठ मार जाता था। पक्षी आकाश-से उतरते समय जैसे अपने पङ्खोंको फैला देता है, उसी प्रकार अलकके दोनों हाथ तकियेपर पड़े थे। जमाल बहुत देरतक पलंगके पास खड़ा रहा, अलकको छूनेकी उसकी हिम्मत न पड़ी। स्त्रियो! यदि तुम अपने भावोंको शुद्ध बनाये रहो, तो तुम्हारी शक्ति अदम्य हो सकती है। पुरुषकी इतनी शक्ति नहीं है, जो वह तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध तुम्हारे स्त्रीत्वका लाभ उठा ले। तुम्हारी एक टेढ़ी नज़र दुष्ट पुरुषोंको रोक सकती है—वे तुम्हारे पासतक नहीं फटक सकते। तुममें यह शक्ति वर्त्तमान है। इसे काममें लाना या न लाना तुम्हारे हाथकी बात है। अलक-किशोरी आँख मीचे हुए निद्राकी गोदमें पड़ी थी, किन्तु उसका पवित्र पातिव्रत-धर्म मानो उसके मुखपर विराज रहा था। उस-का सती-धर्म उसके सिरहाने खड़ा होकर मानो उसकी रक्षा कर रहा था ; उसकी मौन आज्ञासे जमाल अपनी जगह खड़ा रह गया और वह आगे बढ़नेमें आगा-पीछा सोचने लगा। पवित्रता-पर आक्रमण करनेमें भी देर लगती है।

जमालने इस ढँगके कपड़े पहने थे, कि उसे चोर भी कहा

जा सकता था। उसने सिरपर एक काली टोपी पहन कर, काले रूमालसे उसे ढक लिया था। दाढ़ी-मूँछें कटी हुई थीं और इतरकी खुशबू आरही थी। जाड़ेके कारण काली बानात-की शेरवानी पहने था। कमर एक काले दुपट्टेसे कसकर बँधी हुई थी, जिसमें एक छोटीसी कटार छिपी थी। पैरमें वह बिना काँटोंवाला अँगरेज़ी बूट डाटे हुए था। जमाल अपनी सुन्दरतापर आपही मोहित था और समझता था, कि अलककिशोरी देखतेही मुग्ध होजायेगी। आँखोंमें सुरमा और जेबमें गुलाब-जलकी शीशी थी। उसने साबुनसे मुँह धोकर उसपर खुशबू मलली थी, और मन ही-मन निश्चय कर लिया था, कि यदि ऐसे खूबसूरत जवान-को देखकर औरतोंकी तबियत फिसल पडे, तो इसमें अनोखापन ही क्या है? पर खलकनन्दाने यह भी कह दिया था, कि यदि वह राज़ी न हो, तो बलात्कार करना। मर्दके आगे औरत करही क्या सकती है? यह बात भी उसके जीमें जमी हुई थी। मियाँ साहब कुछ आगे बढ़कर अलकके खुले हुए अङ्गोंका देखने लगे। उसके गोरे और साँचेमें ढले अङ्गोंको देखते-देखते उनकी कामाग्नि भड़क उठी। धीरे-धीरे जमालकी लालसा वृत्ति इतनी बढ़ गयी, कि समय, स्थल और सत्ताका ज्ञान उसके कमज़ोर और कामी हृदयसे दूर हो गया। उसके सुडौल अङ्गों और सुन्दर मुखको देख-देखकर वह खुशीसे फूल उठा। वह मन-ही-मन विचार करने लगा—"खुदाने कैसी-कैसी नाज़नियाँ रूए ज़मीनपर पैदा की हैं! क्या ग़ज़बकी खूबसूरती है—ये गुलाबकी कलियोंका मात करनेवाले गाल——या खुदा! खलकनन्दा तो इसके सामने कुछ भी नहीं है। उमर भी अभी कुछ नहीं है। यही मेरी माशूक़ा होगी।" इतना सोचते-सोचते जमालने हाथ

बढ़ाया, फिर पलंगपर चढ़ने लगा ; पर हिम्मतने सहारा न दिया। फिर देखने लगा और सोचने लगा—देखते-सोचते उसकी कामाग्नि भड़क उठी—दिल धड़क उठा—गरम ख़ून नसोंमें दौड़ने लगा। दिमाग़ कमज़ोर पड़ गया। लालसावृत्ति प्रबल हो उठी। तमाम बदन मानो कामकी आगसे, मोमकी तरह गलने लगा। मनमें आया, कि एकदम पलंगपर चढ़कर बैठ जाऊँ। उस जगह उसे रोकनेवाला कोई न था, पर उस सतीकी पवित्रताके प्रतापसे वह कामी बार-बार हिचक जाता था। पहले बहुत बार अलकने जमालको विविध आज्ञाएँ दी थीं और उसका नौकर होनेके कारण उसे उनका पालन करना पड़ा था।

अलककिशोरीके पास जानेके विचारसेही उसका हृदय काँप उठता था। कई बार उसने पलंगपर पैर रखनेकी हिम्मत की, पर हर बार उसकी हिम्मत उसका साथ छोड़ देती थी। वह एक पैर आगे बढ़ाता और तुरन्तही पीछे हटा लेता था। वह स्वयं भी इस चिन्तामें था, कि मेरी हिम्मत इसके पास जानेकी क्यों नहीं होती? कभी-कभी उसे यह भी ख़याल हो आता, कि यहाँ मेरी मदद करनेवाला कोई नहीं है और यह घर बुद्धिधनका है; यदि वह जान लेगा, तो मेरा बुरा हाल होगा?

इसी समय नींदमें अलककिशोरीने करवट बदली। जमालके मनका क्षोभ दूर हुआ। उसे खलकनन्दाकी आज्ञा पालनी और अपनी विषय-वासना पूरी करनी थी। पाँवसे बूट खोलकर जमाल पलंगपर चढ़ गया और अलकके साथ लेट गया—उसे स्पर्श करनेमें फिर उसका हृदय काँप उठा; पर अन्तमें उसका अपवित्र हाथ उस पवित्रताकी मूर्त्तिपर जाही पड़ा।

मानो अलकके शरीरसे कोई सर्प लिपट गया हो—इस तरह

चौंककर वह जाग उठी। जागनेसे पहले वह चौंकी और उसी चमकमें वह लिहाफ़को लिये हुए उठ खड़ी हुई। दूसरेही क्षण लिहाफ़ फेंककर एकही छलाङ्गमें पलंगसे नीचे जा पहुँची। यह सब एकही पलमें हो गया और मियाँ साहब कुछ भी न कर सके। नीचे पहुँचतेही अलककिशोरी चिल्ला उठी—"प्रमाद भाई! चोर, चोर! चोर है, चोर।"

भय और क्रोधसे अलकका चेहरा लाल होगया। जमालने आगे बढ़कर कहा,—"मेरी माशूक़ा, यह तो मैं हूँ, जमाल! डरो मत। मेरा दिल तुम्हारी ख़िदमतके लिये तरस रहा था, इस-लिये इस अन्धेरी रातमें आया।"

अलकका डर कुछ कम हुआ। पर उसका क्रोध अब और भी भड़क उठा,—"जमाल! लुच्चे, बदमाश कमीने कहीके। अभी निकल बाहर। तूने मुझे भी ख़लकनन्दा समझ लिया है, क्यों?"

"धीरे-धीरे—आशिक़-माशूकोंकी—"

"लुच्चे कहींके, अब जो बोला, तो जीभ कटवा लूँगी—मैं अभी सबको बुलाये लेती हूँ—" यह कहकर अलक खिड़कीको ओर बढ़ी। अब मियाँ साहबने सामदाम छोड़कर बल-प्रयोग करनेका विचार किया। उसने खिड़कीके पास जाती हुई अलक-किशोरीको हाथ बढ़ाकर रोका।

"आप मुझे ताक़तसे काम लेनेपर क्यों उतारू करती हैं?"

"हट उधर" कहकर अलककिशोरीने हाथ फटकारा। पर जमालने अब देर करना ठीक न समझा और उसे दोनों हाथोंसे जकड़ लिया।

करवट बदलकर अलककिशोरीने उसके हाथोंको झटकार

दिया। उसकी आँखोंसे इस समय आगकी ज्वाला निकल रही थी। क्रोधमें आकर उसने हाथका एक मुक्का जमालकी नाक और ओठपर मारा। जमाल थोड़ी देरके लिये सब कुछ भूल गया, पर दूसरेही क्षण फिर आगे बढ़ा और फिर उसे दोनों हाथोंसे ज़कड़कर पकड़ लिया। अबतक लड़ते-लड़ते अलक-किशोरी हाँफ गयी थी और उसका बदन ढीला पड़ गया था। इस बार वह ज़ोर करके भी अपने आपको न छुड़ा सकी, पर उसकी हिम्मत नहीं हारी थी। रह-रहकर उसके मुँहसे ज़ोरकी चीख़ निकल जाती थी। जब जमालके हाथ कुछ ढीले पड़ते, तभी वह ज़ोरसे चिल्ला उठती थी।

बड़ी धर-पकड़ हुई। अलकके शरीरमें न मालूम कहाँका बल आगया था, कि वह मियाँके क़ाबूमें न आयी। तमाम कमरे भरमें दोनोंके चक्कर होने लगे। जमाल भी बीच-बीचमें हाँफने लगता था। कई बार जमालकी नाकपर अलकने अपना सिर ज़ोरसे दे मारा था। कभी जमाल उस चोटको बचा जाता और कभी उसके लग जाती थी।

अलककिशोरकी पहलीही आवाज़से घरवालोंकी आँख खुल गयी थी। अब सब आहट ले रहे थे, कि आवाज़ किस ओरसे आयी है। बुद्धिधनके मनमें हुआ, कि शठरायने मेरे घरमें किसीका ख़ून करनेके लिये किसी घातकको तो नहीं भेजा है? नवीनचन्द्रने भी 'चोर' 'चोर'की पुकार सुनी; कुमुदसुन्दरी झट-पट उठी और उसने प्रमादधनको भी उठा दिया। उसने समझा, कि घरमें आग लगी है। कुमुदसुन्दरीने अलककिशोरीका स्वर पहचाना और दरवाज़ा खोलकर वह नीचे उतरी। नीचेसे नौकर लोग चौकमें आगये थे और वे ऊपरकी ओर देखने लगे

थे। नीचे सोनेवाले सब चौकमें इकट्ठे हो गये, प्रमादधनने किवाड़ खोलकर सबको ऊपर बुलाया। अब सब अलककिशोरीके कमरेके सामने इकट्ठे हो गये और "खोलने"के लिये कहने लगे। सौभाग्यदेवी किवाड़ हिलाती थी, पर वे भीतरसे बन्द थे। बुद्धिधनने पुकारकर कहा,—"बेटी! डरे मत, हमलोग आगये।" सबसे पीछे कुमुदसुन्दरी खड़ी-खड़ी काँप रही थी और नवीनचन्द्र सबसे आगे जाना चाहता था। घर भरमें हल्ला मच गया। प्रमादधनने नौकरोंसे दरवाज़ा तोड़नेको कहा। इसी समय कुमुदसुन्दरीने एक ऊपरवाली खुली खिड़की देखकर कहा,—"उसमेंसे आदमी भीतर भेजो।" नवीनचन्द्रने यह बात सुनी, उसे ड्रिल, जिमनास्टिक और देशी कसरतका खूब अभ्यास था। उसका बदन फुर्तीला और गठा हुआ था, वह झट ऊपर चढ़ गया और अपने सधे हुए शरीरको मोड़कर उस खिड़कीकी राह नीचे उतर गया।

भीतर गुत्थमगुत्थी बड़े ज़ोरसे हो रही थी। अलककिशोरी मर्दकी ताक़तसे हार गयी थी और थककर हाँफने लगी थी। जमालने देखा, कि आदमी आ पहुँचे और बाहर जानेका रास्ता रुक गया। यह सब सोचकर उसने अपना भविष्य दैवाधीन छोड़ दिया और विशेषताके साथ बल प्रयोग करने लगा। इधर अलक लड़ती-लड़ती बहुत थक गयी थी और बीच-बीचमें ढीली पड़कर दम लेने लगती थी। इस समय दोनों चिराग़के नजदीक आ गये थे। अलककिशोरीके मस्तिष्कमें बुद्धिको चिराग़ रोशन हुआ। उसने झपटकर जमालको शेरवानीका पल्ला दीपकपर डाल दिया। थोड़ी देरके लिये कर्त्तव्य भूलकर जमालने अलकको छोड़ दिया और कटारसे अपने जलते हुए दामन-

को काट डाला। अपने कामपर प्रसन्न हो कर अलककिशोरी खिड़कीके पास दौड़ गयी। पर इस समय जमालको फिर क्रोध हुआ और दौड़कर उसने फिर उसे दोनों हाथोंसे पकड़ लिया। अब अलकिशोरीमें बल नहीं था, वह प्रतिपल शिथिल होती जाती थी। उसका मुँह खुल गया, धीरे धीरे वह बेहोश होने लगी। छातीपरसे साड़ी हट गयी थी और बहुतसे अङ्ग दूषित हो चुके थे। धीरे-धीरे उस विवश दशामें उसकी नज़र ज़मीनमें गड़ी जा रही थी। अवसर देखकर जमालने उसे ज़मीनपर बैठा दिया,—लिटा दिया। उसे ज़ोरसे दाबते हुए जमालने कहा,—मेरी माशूका! डरे मत।" मानो चन्द्रमाको राहु ग्रास करना चाहता है।

ज़मीनपर गिरते-गिरते अलकिशोरी उस निरुपाय और निराश दशामें बड़े ज़ोरसे चीख़ उठी। वह चीख़ सबके कानोंको भेदती हुई निकल गयी। ऐसी भयानक चीख़ आजतक किसीने न सुनी थी। सबका खेद और दुःख सीमापर पहुँच गया। पर सब बेफ़ायदे था। कोई भीतर न पहुँच सका। अब राक्षसी अत्याचार बढ़ने लगा। निर्बल अबलाके हारे हुए हाथ और सबल यशस्वीके जीते हुए हाथोंमें फिर लड़ाई होने लगी। थकी हुई अबला हार चुकी थी। उसके घरवाले और नौकर दरवाज़ेके बाहर खड़े एक-दूसरेका मुँह देखते हुए अफसोस कर रहे थे। सौभाग्यदेवी बावली बनकर देख रही थी। यदि एक पल और बीत जाता, तो उस सतीका सतीत्व अवश्य नाश हो जाता, पर इसी समय बिजलीकी तरह वेगसे नवीनचन्द्र वहाँ पहुँच गया और उसने बड़े ज़ोरसे जमालकी छातीमें लात मारी, दूसरे हाथसे उसके गलेमें पड़े हुए रूमालको इस तरह-

से खींचा, कि गलेमें फाँसी लग जानेसे छटपटाकर जमालने अलककिशोरीको छोड़ दिया। अब दूसरी ओर पलटकर फिर नवीनचन्द्रने एक लात उसकी पसलीपर मारी। अब अलक-किशोरी सर्वथा मुक्त हो गयी। तब नवीनचन्द्रने पुकारकर कहा,—"चिन्ता मत करो—मैं नवीनचन्द्रने बहनको छुड़ा दिया है।" बाहर वालोंके जी-में-जी आया। आवाज देनेमें जितनी देर लगी, उतने समयमें जमाल फिर अलककी ओर लपका। अब कातर होकर अलक पुकार उठी,—"ओ नवीन! मुझे बचा।" अलककिशोरी भागकर नवीनचन्द्रके पीछेकी ओर हो गयी। नवीनचन्द्र दाँव काटता हुआ डरी हुई हरिणीको सिंहके पंजेसे बचाने लगा। जमाल थककर निराश हो गया। ज़मीनपर पड़ी हुई कटारकी ओर लपककर उसने उठाना चाहा,—इसी समय लपककर अलककिशोरीने दरवाज़ेकी साँकल खोल दी। जमाल उचककर खिड़कीपर चढ़ने लगा,—नवीनचन्द्रने उसका पैर पकड़कर खींचा, वह नीचे गिर पड़ा; पर गिरते-गिरते उसने अपनी कटारका वार नवीनके कन्धेपर कर ही दिया।

दरवाज़ा खुलतेही सब एकदम भीतर चले गये। अलक-किशोरी सौभाग्यदेवीसे लिपट गयी। उसने भी बेटीको छातीके नीचे छिपा लिया। बुद्धिधन और प्रमादधनने उसे आश्वासन दिया। नौकरोंने ज़मीनपर पड़े हुए जमालको मारना-पीटना शुरू किया। कटारके लगनेसे नवीनचन्द्र ज़मीनपर गिर गया था, उसके कन्धेसे लगातार ख़ून निकल रहा था, आँखोंके आगे अन्धेरा छा गया था, पर उसकी ख़बर किसीको नहीं थी। पिटता हुआ जमाल फिर भी करुण दृष्टिसे उसकी ओर देख रहा था। बड़े और छोटेकी लड़ाईमें छोटेका कुछ नहीं बिगड़ता।



प्रतिहिंसाकी चेष्टा ।

"गिरते-गिरते जमालने अपनी कटारका वार नवीनचन्द्रके कन्धेपर करही दिया !"

[पृष्ठ—१४६]

Burman Press, Calcutta

यदि वह जीते, तब तो जीत है ही, किन्तु हारनेपर भी विशेष हानि नहीं होती। पानीमें पड़ा हुआ कूड़ा घुल नहीं सकता, किन्तु यदि घुले भी तो पानीही मैला होगा।

सबने मिलकर जमालको बाहर खींचा ; फिर नीचे चौकमें ले गये। पूछनेपर उसने कहा, कि मुझे तो अलककिशोरीने बुलाया था। इस बातके सुनतेही सबका क्रोध भड़क उठा और बड़े ज़ोरसे मार पड़ने लगी। अन्तमें घिघिया और हाथ जोड़कर रोते-रोते उसने सब कथा सुनायी, उसे किसने किस मतलबसे भेजा था, इसका सविस्तर हाल सुनाया। ऊपर अलककिशोरी सौभाग्यदेवीकी गोदमें पड़ी हुई हिचकियाँ ले रही थी। कुमुद-सुन्दरी और प्रमादधन उसे प्रबोध दे रहे थे और बुद्धिधन विचार-में लीन होकर वहाँ टहल रहा था। जमालकी कही हुई बातें ऊपर अलककिशोरीके कानमें जा रही थीं। इन सब उपद्रवोंका कारण जानकर उसके शरीर और मनकी वेदना बढ़ रही थी। बिचारे विदेशी नवीनचन्द्रकी खबर अबतक किसीने न ली थी, उसके शरीरसे बहुत रक्त निकल चुका था और बदनके ठण्डे पड़नेपर दर्द भी बढ़ गया था ; इसलिये वह हिल-डोल भी नहीं सकता था। अलककिशोरीके पास बैठी हुई कुमुदसुन्दरीकी आँखें उसे चारों ओर तलाश करती थीं, पर वह उसे न दिखाई दिया। अन्तमें उसके मुर्देके समान शरीरको देखकर उसे दुःख हुआ और अमङ्गलकी आशङ्कासे उसका दिल धड़क उठा। पर लोकलाजसे वह अपने हृदयका एक शब्द भी मुँहसे न निकाल सकी।

"हाय हाय! वह नवीनचन्द्रही तो नहीं पड़ा है?" पीछे घूमकर कुमुदसुन्दरीने कहा। अपनी अवस्था भूलकर अलक-

किशोरी भी मानो जाग उठी। एक विदेशी प्रवासीने उसका कितना उपकार किया और उसे वह याद भी न रहा, इसलिये वह पछतायी और नवीनचन्द्रके पास दौड़कर गयी।

"मा, इनके कटार लगी है, इससे ख़ून निकल रहा है।" सब चमक उठे और पास पहुँचे। नवीनचन्द्रके पासही अलक-किशोरी बैठ गयी। और सब उसे चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। कुमुदसुन्दरीने चिराग़ लाकर उसके पास रखा। उसकी दशा देखकर कुमुदकी आँखोंसे आँसू टपक पड़े। वह नवीन-चन्द्रकी दूसरी ओर बैठी और उसके घावको हाथ लगाकर उसके गर्म कपालको छुआ।

बुद्धिधन बाहरसे भीतर आया। उसने प्रमादधनको एक कपड़ा लानेके लिये कहा और सिपाहीको वैद्य बुलानेके लिये भेजा। प्रमादधन कपड़ा तलाश करता हुआ इधर-से-उधर घूमने लगा, पर उसे कपड़ा न मिला। बुद्धिधन इससे नाराज़ हुआ। अलककिशोरी भी उठकर तलाश करने लगी। पर बड़े आदमियोंके घरमें तो चीथड़ोंका अभाव होता है। अलकने अपनी साड़ीको फाड़नेका विचार किया, पर इससे पहले कुमुद-सुन्दरीने अपनी साड़ीकी कोर फाड़ डाली। फटनेकी आवाज़ हुई, बुद्धिधनने उसकी ओर देखा। फिर बुद्धिधनने अपने हाथसे पट्टी बाँधी। इसी समय वैद्य भी आ पहुँचा। सवेरे तक उपचार होता रहा। नवीनचन्द्रके होशमें आनेमें अधिक समय न लगा। पर यह निश्चय हुआ, कि अमात्यके घरमें कई दिनतक उसके आराम करनेकी ज़रूरत है। सब उसे उठाकर ऊपरवाले कमरेमें ले गये। उसकी सेवा करनेका काम अलकने स्वीकार किया।

अब जमालको विशेष बातें सुननेका अवसर था। पर इस बातको इस रूपमें प्रकट होने देना, तो अपनीही बदनामी थी—ऐसा कभी सङ्गत न था। समरसेन नामक सिपाही बुद्धिधन-का विश्वासी आदमी था। उसे बस्क्रिन साहबके क्रोधसे बुद्धिधनने बचाया था। वह भी राजपूत था और हृदयसे इसका उपकार मानता था। उसे रहनेके लिये वहीं एक कोठरी दी गयी थी। उसी समरसेनको आज्ञा हुई, कि वह जमालको अपने पास रखे।

कुमुदसुन्दरीने आज कृष्णके साथ द्रौपदीके समान व्यवहार किया था। अभीतक उसे कोई पक्का सबूत न मिला था, कि नवीनचन्द्रही सरस्वतीचन्द्र है। परन्तु बलवती कल्पना मनो-वृत्तियोंका अनुसरण करती थी। फटी हुई साड़ी उसने न्यारी रखी।

"भाभी! अब तुम जाओ, मैं और मा सब कर लेंगी।"

परपुरुषके लिये आग्रह जताना असङ्गत था। इसलिये अपने मनको रोकती हुई कुमुद अपने शयनागारमें गयी। प्रमाद-धन भी उसी समय लौट आया था। फिर दोनों सो गये। पलंगपर पड़ी हुई कुमुदसुन्दरीने तमाम रात मन-ही-मन परमे-श्वरकी प्रार्थना की। सवेरेके समय उसकी आँख कुछ लग गयी। फिर वह 'गजेन्द्र-मोक्ष' गाती-गाती उठी। नवीन-चन्द्रकी दशा उस समय बहुत कुछ सुधर गयी थी, यह देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई।



दसवां परिच्छेद।

झगड़ेका हथियार और मंत्रियोंकी युद्ध-कला।

नवीनचन्द्रका सब काम अलककिशोरीके जिम्मे पड़ा। पुजारी मूलदत्त आता और उसे नित्य देख जाता था। वैद्य दोनों वक्त देखने आता और ओषधि देता था। नौकर-चाकर अपने योग्य काम करते थे। सौभाग्यदेवी नीचेसेही उसकी तबियतका हाल पूछ लेती थी और दिनमें एक बार ऊपर आकर देख जाती थी। प्रमादधन आकर ताज़ा अख़बार पढ़कर सुना जाता और अपने मित्रोंके साथ उसके आस-पास बैठकर बातें करता था। बुद्धिधन भी दिनमें एक बार कुछ समयके लिये उसके पास बैठता और बातें करता था एवं वैद्यसे कह रखा था, कि वह नित्य उसका हाल कह जाया करे। दूसरोंके मौजूद रहते हुए कुमुदसुन्दरी भी आना न भूलती थी और उसे आराम होता देखकर उसकी प्रसन्नता बढ़ती थी। बराबर वाले कमरेमें बैठकर वह उसकी बातें सुनती थी। जब और कोई न आता, तब भी अकेली अलककिशोरी उसकी शय्याके पास बैठी रहती थी। वह हृदयसे उसकी सेवा करती, उसका मन बहलानेके लिये बातें करती, और कोई न होता, तो अपनी भाभीको बुला लेती और उसके साथ बातें करके रोगीका जी

कहलाती। बहुत बार ननद-भौजाई, अतिथि और प्रमादधन बैठकर शतरञ्ज खेलते थे। थोड़ेही दिनोंमें अतिथि एक घरके आदमीके समान होगया और जैसे-जैसे उसको प्रकृति सुधरती गयी, वैसे-ही-वैसे उसे भी वह पराया घरसा नहीं जान पड़ता था। जिस समय अमात्यके घरमें ऐसी स्वर्गीय शान्ति विराजती थी, उसी समय दरबारमें घोर राजनीतिक चक्र चल रहे थे। उन्हें नवीनचन्द्र नहीं देख सकता था ; इसलिये वह अपने आपको अभागा समझता था। बाहर बातें होती थीं और उनकी एकाध चिनगारी इसके पास भी उड़ आती थी।

जमालकी घटनासे बुद्धिधनकी चिन्ता बढ़ गयी थी और इस घटनाकी जड़ जितनी दिखाई देती थी, वह इसे उससे भी अधिक गहरी समझता था। जमालके मामलेमें गड़बड़ देखकर ख़लकनन्दाने अपने भाईको कुछ-कुछ भड़काया था। बुद्धिधन इसके परिणामके परिणामको निकालनेके लिये उत्सुक था। उसे मालूम होता था, कि अब शठरायके साथ मैदानमें उतर पड़नेका दिन आगया। अपनी माता और सौभाग्यदेवीके अपमानका वृक्ष अभी उसके हृदयमें सूखा न था, शठरायकी चालों-से अबतक उसपर पानी गिरता रहा था और वह हरा होकर खड़ा था। अलककिशोरीके अपमानसे वह धीमी आग और भी प्रबल वेगसे धधक उठी। शठरायका कुटुम्ब और बुद्धिधनकी बुद्धि उसे और प्रचण्ड बना रहे थे। बुद्धिधनने सोचा, कि यह आग चारों ओर फैल जायेगी और बीचवाली चीज़को भस्म कर डालेगी। फिर अपना भाग्याकाश ठीक मध्याह्नमें दिखाई देता था। फिर उसे स्मरण होता, कि रोगकी शय्यापर उसने दुःखसे छटपटाते हुए एक प्रतिज्ञा की थी। उस प्रतिज्ञाकी सत्यतापर वृद्ध दया-

शङ्कर हँसा था—आज वह दिन आनेवाला है, जब वह उसे सर्वथा सत्य करके दिखा सके। दयाशङ्कर बहुत बूढ़ा होनेपर भी अभी जी रहा था। फिर उसके मनमें होता, कि इस समय माता नहीं है, यदि वह होती तो देखकर कितनी प्रसन्न होती। मानो तूफ़ान आरहा था, उसमें अपनी प्यारी पुत्रीके घोर अपमानने झंझावातका काम किया। जिस वक्त चौकमें जमालकी मरम्मत की जारही थी और अलककिशोरी अपनी माताकी गोदमें बैठी सिसक-सिसक कर रो रही थी, उस समय बुद्धिधन चाँदनीमें टहल रहा था और भौंहें चढ़ाकर मन-ही-मन कह रहा था,—"शठराय! अब तू देख, मैं निःशस्त्र नहीं हूँ।" उन हृदयके शब्दोंको किसीने सुना न था और उस चढ़ी हुई भृकुटिको किसीने देखा भी न था।

इस प्रकार अमात्यका मन वैरकी चरखीपर चढ़ गया था और छोटी छोटी घटनाओंसे वह निरन्तर ऊपरकोही चढ़ता जारहा था। एक दिन बुद्धिधन कुछ सवेरे उठा। और दिन देवी सवेरे उठा करती थी, पर उस दिन वह देरसे उठी। उठकर रज़ाई ओढ़े हुए बुद्धिधन पलंगपर बैठ गया। बैठकर उसने पतिव्रताके मुखकी ओर देखा। उसके मनमें हो आया, कि अबतक उस सतीके अपमानका बदला नहीं लिया गया। कमलकी बन्द कलियोंके समान मुँदी हुई आँखें, मुख कमलके चारों ओर बिखरे हुए लम्बे और काले केश, दमकता हुआ उन्नत कपाल, पके हुए बिम्बके समान ओठ, सुन्दर कपोल आज भी सुन्दर और मनोमोहक थे। देखते-देखते लालसावृत्ति जाग उठी, बचपनके और आजके दिखावमें अन्तर अवश्य था, किन्तु सुन्दरतामें कमी न थी। जब-तक शत्रुता पूरी न हो, तबतक सब विडम्बना मालूम हुई। बुद्धि-धनने यह कलङ्क अपने सिरसे उतारनेका निश्चय किया और

मन-ही-मन देवीको सन्तोष दिया। फिर उसके सुन्दर मुखको चूम लिया। देवी जाग उठी, आनन्दसे उसका मुख खिल उठा, उसने इसे मङ्गल समझा। फिर बुद्धिधन उठा और अपने दैनिक कर्त्तव्यमें लगा। दीवान बननेका नया उत्साह उसके हृदयको आनन्द देने लगा।

शठरायने भी निश्चय कर लिया था, कि अब बुद्धिधनको हटा देनाही अच्छा है। बहुत वर्षसे वह दीवान था और उसने निष्कण्टक सत्ता भोगी थी। अब इस काँटेको बीचसे हटाकर रास्ता साफ़ करना था। उसके मनसे भूपसिंहका डर जाता रहा था, पर बुद्धिधनसे अभी वह भय खाता था। यह भय था, तो पहले सेही; पर जबतक राणाका डर उसे था, तबतक अमात्यका डर नहीं जान पड़ता था। अब उसे भूपसिंहका उतना डर न रहा पर बुद्धिधन उसे अपना शत्रु दीखता था। शठराय सोचता था, कि अब इस काँटेको निकालही डालना और जो भूपसिंह बीचमें पैर अड़ावे, तो उसे भी साफ़ कर डालनाही ठीक है।

एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकतीं। जबतक शठराय और बुद्धिधन एक दूसरेसे नम्र बनकर बरतते थे, तबतक सब ठीक तरहसे चला जाता था; किन्तु अन्तमें विरोध अपना फल लाया।

विरोध तो बहुत पुराना और गुप्त था, किन्तु अपना भाग्य सबल देखकर बुद्धिधनने नयी इमारत खड़ी करनाही उचित समझा। इसकी चालोंको शठराय ताड़ रहा था। बुद्धिधनकीही बुद्धिसे भूपसिंह शठरायके हाथमें जाता हुआ मालूम पड़ा, इसे समझकर शठरायने सोचा, कि बुद्धिधन और भूपसिंहमें अब भेद पड़नेमें देर नहीं है। अब शठरायके मनमें होने लगा, कि

बुद्धिधनको मसल डालनेमें विशेष कठिनाई न होगी। वह दुश्मनीका आदी था। इसका उसे पूरा अनुभव था। किसी कामको करते हुए उसके हृदयमें शङ्का न उठती थी। उसके पास धन और जनकी कमी न थी। बुद्धिधनके पास परमात्माकी दी हुई बुद्धि, भूपसिंहकी कृपा, थोड़ेसे सच्चे मनुष्य और साधारण द्रव्य था।

राज्यका सबसे बडा न्यायाधीश या जज शठरायका भाई करवटराय था। अमात्यके आनेके बाद इसके फ़ैसलोंकी अपील भूपसिंह और अमात्यके पास जाती और भूपसिंह अमात्यके कहनेके अनुसारही फ़ैसला करता था। कचहरीका समय दोपहरका रखा गया था और उस समय स्वाभाविक रीतिसे अमात्य और राणाको अकेले रहनेका मौक़ा मिलता था। पहले तो बुद्धिधन झगडेमें पड़ताही न था, पर धीरे-धीरे मैदानमें निकलनेका अवसर आया और करवटरायके सब मुक़दमोंकी अपील उसके फ़ैसलेसे ख़िलाफ़ होने लगी, इसलिये करवटरायको मिलती हुई घूस भी बन्द होगयी। इस हमलेकी ख़बर शठरायके पास पहुँची; अब वह इसकी दवा तलाश करने लगा। दुष्टराय बम्बईसे एक वेश्या लाया था और उसे सुवर्णपुरमें बसा दिया था। उसका नाम कलावती था, वह नाज़ुक पतली, गोरी और अच्छी गानेवाली थी। एक दिन उसे दरबारमें गानेका निमन्त्रण दिलवा दिया। राणाजीको उसका गाना पसन्द आया। वह महफिलके उठ जानेपर भी राणाजीकी कुछ अनिच्छाका सङ्केत देखकर, दरबारियोंके इशारेसे ठहर जाती थी। उस समय थोड़ेही आदमी रह जाते थे। सीखे हुए दरबारी उसके गानेकी तारीफ़ करने लगते, गानेकी तारीफ़ करते-करते

उसके हावभाव और अङ्गोंकी तारीफ़ करने लगते थे। मूर्ख राजा उन मतलबी दरबारियोंकी लच्छेदार और चापलूसो भरी बातें सुनता और हावभाव करती हुई वेश्याके जान-बूझकर खोले हुए अङ्गोंको देखता और देखकर निर्लज्जकी तरह टकटकी बाँधकर ताकता रहता। देखते-देखते उसे बुद्धिधनका ख़याल आ जाता और उस ओरसे नज़र हटा लेता। एकदिन जब बुद्धिधन मह-फिलमें न था, तब उसकी तारीफ़के फव्वारे छूटने लगे; राजा-जीने मन लगाकर तारीफ़ सुनी; शठरायके सिखाये हुए ख़वास महावीरने उसे राणाजीके महलमें पहुँचा देनेका ज़िम्मा लिया। एक दिन उस वेश्यासे वह राज-मन्दिर अपवित्र हुआ—सुवर्ण-पुरके राजाका शरीर एक तुच्छ और रास्तोंपर बैठनेवाली वेश्याके स्पर्शसे अपवित्र बना। सुवर्णपुरकी प्रजाके पिता-स्वरूप राजाका मन एक वेश्यासे कलुषित हुआ। दोपहरमें राजाजी अमात्यके साथ कचहरीमें बैठनेको तैयार हुए—पर उनका मन रातके पाप-से कलुषित होरहा था। अवसर देखकर उनके प्राइवेट सेक्रेटरी नीचदासने कहा,—"अन्नदाताको परमेश्वरने इसलिये थोड़ेही पैदा किया है, कि हुजूर ऐसे काममें लगे रहें। आज अमात्य यह काम कर लेगा।" अमात्यके कानतक यह ख़बर भी न पहुँची। नीचदासने शठरायको सब समाचार सुना दिये। बुद्धिधनके सामने शठरायके सिखाये हुए चारण जगाभाईने राणाजीकी तारीफ़में ये कवित्त सुनाये,—

"भलो-भलो भूप-भूप, गुण हैं अनूप रूप
रात-दिन राज-काज साजको घिरयो समाज।
मौज शौकको विलास छोड़के सभी विहार
भलो-भलो भूपसिंह सिंह सो बन्यों है आज॥

ऐल गैल घौलमें छिप्यो विलासिनी समाज
भाग-भाग मांगती हैं देवी देवतान काज।
अस्त सस्त चुस्त पस्त नैननकी ज़राक कोर
एक बार भूपकी सद्दृष्टि चाहियतु आज॥"

कवित्तोंकी झड़ी लगाते हुए जगाभाईने हाथ जोड़कर कहा,—"दीनानाथ! मेरे जैसे भी रात-दिन काम करते हैं और अन्नदाता भी; फिर फरकही क्या हुआ?"

बुद्धिधन चौंक उठा और चारणकी ओर देखता रहा।

अब शठरायने कहा,—"क्यों, जगाभाई! तो क्या अन्नदाताजी राज-काज न करें, बैठे रहें? इनसाफ़ न करें?"

जगाभाई,—"जब अन्नदाताजीही इतनी मिहनत करेंगे, तब ऐसे विश्वासी अमात्य क्या करेंगे?"

ऐसी चापलूसीके मीठे जालसे पत्थर घिस गया और भूपसिंहका मन राज-काजसे विरत हुआ। जब बुद्धिधन जाकर कचहरीमें बैठता, तब राजाजी कहला भेजते, कि तुम काम शुरू करो, मैं आता हूँ। अन्तमें जब आते, तब कुछ काग़ज़ोंपर दस्तख़त करके झट लौट जाते थे। बुद्धिधन सोचता था, कि मुझपरसे नज़र उठकर शठरायपर नहीं गयी है, पर यह उसका रास्ता है। कलावती रोज़ आती थी, यह बात भी इसे मालूम होगयी। कलावतीका इतिहास भी मालूम होगया। दिनमें कलावती राणाजीके पास रहती थी और रातको शठराय कलावतीके पास जाता था। राणाजीका धन ख़र्च होता था और शठराय बिना कुछ दियेही मज़ा उड़ाता था। मेघलाने निर्भयरामसे ये सब बातें कहीं और निर्भयरामने अमात्यको यह संदेशा पहुँचाया। धीरे-धीरे निर्भीकता बढ़ती गयी और जब राणाजी और कलावती बैठे रहते,

तब राधा खवासिन ख़िदमतमें हाज़िर रहती थी। राधा कलावतीकी भी सेवा करती थी और दोनों इसे मानने लगे थे। महावीर और राधाका गुप्त सम्बन्ध था और बदमाश होनेपर भी महावीर राधासे बहुत कुछ भेद कह देता था। महावीर लम्पट था और राधा पैसेकी भूखी थी। अपनेको बहुत होशियार समझनेपर भी महावीर राधाके पास मूर्ख बन जाता था। राधा भी बहुत उस्ताद न थी, पर गरज देखकर महावीरको लूटती, उससे हँसती-बोलती और हाव-भाव दिखाकर उसका मन मोह लेती थी। दोनोंको राजमहलमें मिलने, बातचीत करने और बैठने-उठनेके लिये यथेष्ट स्थान था। बड़े आदमियोंके घर भी इतने विशाल होते हैं, कि वे न मालूम कितनोंका परदा बनाये रहते हैं। शठरायके घरमें राधासे सभी हँसी-मज़ाक किया करते थे और इनमें निर्भयरामका नम्बर सबसे ऊँचा था। राधाके मनमें भी होता था, कि निर्भयराम मेरा भला चाहनेवाला है। निर्भयरामने उसे सिखाया—"जब राणाजी और कलावती हों, तब वहाँ हाज़िर रहा कर। इससे तुझे बहुत धन मिलेगा और जो तेरी तक़दीर खुली, तो किसी दिन रानी भी बन जायेगी।" राधाने इस सलाहको पसन्द किया और वह इसीके अनुसार काम करने लगी। पर वह महावीरकी बातें किसीसे न कहती थी। एकदिन निर्भयरामने राधासे कहा,—"देख अब महावीरकी परीक्षाका अवसर है। रानीने उसे एक नथ दी है। अब अगर वह तुझे प्यार करता होगा, तो तुझे वह ज़रूर ही देगा। राधाने बड़े उत्साहसे कोशिश की, पर निष्फल हुई। महावीरने राधाको समझाया और कई बहाने निकाले। दूसरी ओरसे निर्भयरामने महावीरकी स्त्री फूलीको समझाया, कि

समय आनेपरही परीक्षा होती है। इसका फल यह हुआ, कि महावीरसे राधाका सम्बन्ध तो नहीं टूटा, पर मनमुटाव ज़रूर हो गया। अब राधा महावीरकी बातें निर्भयरामसे कहने लगी। राणाजीका एक रणजीत नामक काना चोबदार था। मेरुलासे पहले रूपालीका उसके साथ भीतरी सम्बन्ध था। यह बात दुष्टरायको मालूम हो गयी थी; इसलिये उसने उसका जिलावतन करना सोचा था। राजा जड़सिंहके ज़मानेमें बुद्धिधन शठरायके यहाँ जाता था, उसे यह बात मालूम हो गयी थी, इसलिये उसने उपाय बताकर रणजीतको सावधान कर दिया था। रणजीतने शठरायसे शिकायत की,—"हुजूर! मेरे दुश्मन दुष्टरायसे हमेशा मेरी शिकायत करते हैं। इसलिये मेरी बदली कर दी जाये।" दुष्टरायसे असल बात न कही गयी, अन्तमें उसे दूसरी जगह बदल दिया—वह चोबदार हो गया। वह भी बुद्धिधनका उपकार मानता था और भीतर-ही-भीतर उसके लिये कोशिश करता था। बुद्धिधनने समरसेनसे कहलाकर रणजीतको राधासे हँसी मशखरी करवानेका प्रबन्ध किया और जब दोनोंका गुप्त सम्बन्ध हो गया, तब महावीरका भेद फूटने लगा। राधाको रानी भी बहुत मानती थीं, वहाँका भेद भी वह लाती थी। बुद्धिधनकी बुद्धि और रणजीत और निर्भयरामकी कमान चढ़ी हुई थी; इस प्रकार राजाजीके ज़नाने महलका और दरबारका सब भेद बुद्धिधनके पास पहुँचता था। कलावतीकी कही हुई और की हुई छोटीसे लगाकर बड़ी बाततक बुद्धिधनके पास ज्यों-की-त्यों जाती थी। अबतक शठरायने उसे राजाको बिगाड़नेके सिवाय और किसी कामका साधन नहीं बनाया था; क्योंकि ऐसा करनेका अभी कोई मौक़ाही न आया था।

अब समय देखकर वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। "मुझे तो विश्वास नहीं होता, कि मेरे कानोंने जो कुछ सुना है, वह सच है। ईश्वर जाने रानियोंकी बात कौन करे!" "राजबाकी बात सुननेमें आयी है।" इसी प्रकार भूमिका बँधने लगी।

अन्तमें निर्भयरामने काग़ज़ तैयार किये। सवेरे उन्हें लेकर बुद्धिधन कचहरी गया। राणाजीके आगे काग़ज़ डालकर उसने कहा,—"मैंने राजबाको अपनी माताकी जगह माना है। इन काग़ज़ोंको देखकर मुझे क्रोध आता है। इन्हें आप पढ़ लें। इन्हीं काग़ज़ोंको शठराय महावीरके द्वारा आपको दिखलायेगा। मैं इस्तीफ़ा देकर आपके सौभाग्य-सुवृद्धिको देखता हुआ प्रसन्न रहूँगा।" राणाका हृदय पहलेके उपकारोंको स्मरण करके भर आया। आँसू पोंछकर उसने कहा,—"बुद्धिधन! मुझे तुम्हारा पूरा विश्वास है। तुम्हारेही कारण मेरे ये दिन टिक रहे हैं। अब इन जाली काग़ज़ोंको मेरे पास आने दो। लानेवालेको मैं फाँसी-पर चढ़ा दूँगा। तुम शठरायका उपाय क्यों नहीं करते?"

काग़ज़ोंको अपनी जेबमें डालकर बुद्धिधनने कहा,—"महावीर ख़वास आपको यह काग़ज़ दिखायेगा। उस समय आप मुझपर नाराज़ी दिखाकर शठरायके प्रति प्रसन्नता प्रकट करें।" इत्यादि और भी बहुतसी आवश्यक सूचना देकर बुद्धिधन अपने घर चला आया।

ठीक समयपर महावीरने राणाको काग़ज़ दिखाये। काग़ज़ देखकर राणाका क्रोध भड़क उठा, वह बुद्धिधनपर दाँत पीसने लगा; उसी समय शठरायको बुलाया और उसने तमाम बातें कहीं, सुनकर शठरायके देवता प्रसन्न हो गये। उसने कहा, कि मैं शीघ्रही बुद्धिधनको पायमाल किये देता हूँ। राणाने कहा,—

"एक आदमी ऐसा तैयार रखो, जो अमात्यका काम कर सके और यह सब इतना छिपकर हो, कि बुद्धिधनको ज़रा भी पता न चले।" शठरायने सोचकर कहा,—"मेरे पास एक विश्वासी आदमी है। उसका नाम निर्भयराम है। उसे आप अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लें। क्योंकि बुद्धिधन पहले इसी जगहपर था।" सब बातें इसी प्रकार पक्की हो गयीं।

दो चार दिनमेंही चैती दरबार भरनेवाला था। उसीमें तमाम जाल रचना निश्चित हुआ। बुद्धिधनसे रिशवत लेनेवाला—न्यायके स्थानपर अन्याय करनेवाला—बेशरम गँड़बड़दास दरबारमें बुद्धिधनकी चुगली खानेके लिये तैयार हुआ। महावीरका भाई खुदीराम लीलापुरमें थोड़े दिन डाकके महकमेमें रह चुका था, उसने राजबाके विषयके काग़ज़ प्रकट करनेका ज़िम्मा लिया। उसने इसकी भी एक कहानी बना ली, कि उसके पास काग़ज़ कैसे आये? राजबाके बारेमें गवाही देनेका काम निर्भयरामके जिम्मे किया गया। राणाजी जब गुस्से हों और बुद्धिधनको पकड़ने और उसका घर जब्त करनेका इशारा करें, तो दुष्टराय फ़ौजदार इस कामके लिये तैयार रहेगा। बुद्धिधनकी जगह करवटरायको देनी निश्चित हुई। दुष्टरायने राणाके कानमें कहा,—"बुद्धिधनके पकड़े जातेही, तीन बहिश्तकी हूरें आपकी नज़र कर सकूँगा।" राणाका बदन काँप उठा। दरबारसे निकल कर शठराय अपने भाई करवटरायसे मिला। उसने कहा,—"अब तुम भी अपने काममें होशियार रहो। देखो, यह राजनीतिकी कठिन समस्या हल करनी है। लोग समझेंगे, कि इसने आत्मघात किया और राणासे कह दूँगा, कि यदि राजबाकी फ़जीहत कचहरीमे होती, तो आपहीकी बदनामी थी। साँप

मरे और लाठी बचे।" पाप करते-करते उसकी मनोवृत्तियाँ उसमें इतनी लिप्त हो गयी थीं, कि उसे ऐसा विचार एक बार खटका तक नहीं। "बुद्धिधन मर जायेगा, राजा कलावतीमें फँसा पड़ा रहेगा, रानीके एक बेटा करवा दूँगा—बस और फिर चाहिये क्या ?" अबकी बार ऐसा किया जायेगा, कि रानीकी दो तीन दासियाँ हमलवाली रखी जायेंगी; इसमें झटपट अदला-बदली हो जायेगी और जड़सिंहके समयमें जो गड़बड़ हो गयी थी, वह न होगी। शठरायने सोचा, कि मेरे और मेरे बेटे दुष्टरायके हाथमें तो सदाके लिये सुवर्णपुरकी दीवानगीरी आही गयी; क्योंकि खोटा बेटा लेनेसे रानी और उसका बेटा दोनों हाथमें आ जायेंगे। इस प्रकार बिना बीजकेही वह फलकी आशा करने लगा।

चैत वैसेही नया सालका पहला मास था और फिर उसमें विशेषता यह थी, कि राणाकी सालग्रह भी उसमें होती थी। उस दिन दो बार दरबार होता था, एक सवेरे और एक शामको। सवेरेके दरबारमें बुद्धिधनको पदवी-भ्रष्ट करनेका विचार पक्का रहा। दुष्टरायको सूचना दी, कि—"तेरे सिपाही सवेरेसेही इसके साथ रहें। और बड़ा सम्मान और भक्तिभाव दिखायें। पर रहें होशियार! और उसे दरबारके पीछेवाले हिस्सेसे ले जायें।" दरबारके पीछेवाले भागमें एक बड़ा बाग़ था और वह सूना और सघन था। उस बाग़में कई जगह बेलें चढ़ाकर अन्धेरा कर दिया गया था और वहाँ कुछ पक्षी भी रखे गये थे। राणा जयसिंहके समयमें इस बाग़मे रानियों, दासियों और मन्त्रियोंके न्यारे-न्यारे संकेत-स्थल थे। बाग़के पिछले हिस्सेमें एक महादेवका मन्दिर था; उसमें जो सुन्दरी कुलीन स्त्रियाँ दर्शन करने आती थीं, उन्हें बहला-फुसलाकर, लालच देकर, धमकाकर, राज़ी

और ज़बरदस्तीसे उन अन्धेरी कुञ्जोंमें लाते थे और वहाँ मन्त्री और उनके साथ राजा जड़सिंह कुकर्ममें प्रवृत्त होता था। भूप-सिंहके राजा होनेके बाद बुद्धिधनके डरसे यह सब काम बन्द हो गया था; सिर्फ़ कलावती वहाँ आती थी। उन सघन कुञ्जोंके बीचमें एक छोटा, पर गहरे पानीका तालाब था। बुद्धिधनके विषयमें यह जाल रचा गया था, कि जब वह टहलता हुआ तालाबके किनारे आये, तब महावीर और रणजीत, कुञ्जोंमेंसे निकलकर, उसपर टूट पड़ें और गला घोटकर उसे बेदम कर दें; फिर पानीमें डालकर उसे बाहर खींच लें, मानो उन्होंने उसे पानीमें डूबतेसे बचाया है। इसी समय दरबारमें बुद्धिधनके आत्मघात करनेकी बात पहुंचायी जाये। उस समय शठराय उसके लिये बहुत आंसू गिरायेगा और ऐसा दुःख प्रकट करेगा, मानो उसका सगा भाई मर गया है।

राधा खवासिनने रणजीतसे यह सब बात कही और रण-जीतसे बुद्धिधनको सब मालूम हो गया। अब बुद्धिधनने सोचा, कि रणजीतका कितना विश्वास करना चाहिये, पर यह भी शङ्का-की बात है। राणा चाहे जितना हो, फिर भी है तो जागीरदार! और जागीरदार किसका दोस्त—इसपर वह एक बाज़ारू औरत कलावतीके हाथका खिलौना बन रहा है। निर्भयराम भी कहीं मौक़ा पड़नेपर दुश्मनका साथ तो न देगा? इसी सोच विचार-में अमात्य सूखकर आधा रह गया। देवी और बच्चोंको देखकर उसके मनमें हो आता था, कि यदि शठरायकी चाल पूरी उतर जाये, तो फिर इनका क्या होगा? चिन्तासे चूर बुद्धिधनने सुना, कि सौभाग्यदेवी और चनलीला एक 'हिन्दी मासिक-पत्रिका' पद्य गागाकर पढ़ रही हैं। उसने उसे ध्यानसे सुना,—

"लोरी देती थी जब माता,
तब कैसा था स्वर्ग दिखाता।
बार-बार मुख चूम-चूमकर,
आँख मींचना घूम-घूमकर॥
ताल-तालपर थिरक नाचना,
मृदु-मृदु हँसकर फिर रिझाना।
हाय! काल वह बीत गया है,
अब कैसा यह हाल हुआ है॥
सोच-सोचकर मर मिटते हैं,
फिर भी धीर न धर सकते हैं।
यदि वह समय हाय! फिर पाऊं।
तो सब सम्पति शीघ्र लुटाऊं॥"

इसे सुनकर बुद्धिधनका हृदय भर आया; आँखोंमें आँसू आ गये। फिर कुछ सोचकर, मुँह धोकर काममें लगा। ऐसे मौक़े आज-कल बहुत आते थे। बीमारीको दशामें पड़ा हुआ नवीनचन्द्र यह सब देखता और मन-ही मन सोचता था। बार-बार उसे आश्चर्य होता, फिर दया आती। मनको ऐसी ख़राब दशा होनेपर भी ऊपरसे बुद्धिधनके किसी व्यवहारमें अन्तर नहीं हुआ। उसका धैर्य वैसाही अचल था; प्रतिभा वैसीही जागृत थी और बुद्धि वैसीही तेज़ बनी हुई थी। कड़ाई-से मनके बलवान् होनेका पता नहीं लग सकता, किन्तु कोकिल बनकर संसारके सब दुःखोंको धैर्यपूर्वक सह लेनेमेंही उसको विशालता है। मनके विशाल होनेपर उसकी रसज्ञता बढ़ जाती है और मनुष्य मन कोमल हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियाँ तीक्ष्ण और कार्यपटु हो जाती हैं और रसेन्द्रियको भी

वही दशा होती है। विशाल मन पत्थरके समान कड़े नहीं हुआ करते; किन्तु उनकी स्थिति-स्थापकता विशेष होती है। कठोर पत्थरपर गिरा हुआ पदार्थ या तो वैसाका वैसाही रहता है या टुकड़े टुकड़े हो जाता है; किन्तु जब पानीमें कोई पदार्थ गिरता है, तब उसका हृदय फट जाता है और उसे वह अपनेमें स्थान देता है। अन्तमें उसी पानीमें, फटी हुई, वह जगह फिर नहीं दीखती—वह स्थान फिर ज्यों-का-त्यों बन जाता है। जो हृदय विशाल होते हैं, वे पत्थर नहीं, पानी होते हैं। उनके घाव अपने आप भर जाते हैं। बुद्धिधनके हृदयपर चोटोंकी कमी न थी, पर उसके हृदयकी स्थिति-स्थापकता बड़ी बलवती थी। उसका हृदय समुद्र था।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोऽत्र पारयितुं क्षमः॥"

वह हृदय कुटुम्बका विचार करके पुष्पसे भी अधिक कोमल बन जाता, कर्त्तव्यका विचार करके पत्थरसे अधिक कड़ा हो जाता, वैरका विचार करके सर्पके समान फुङ्कार मारता, शठराय-की दुष्टताका ख़याल करके क्रोधायमान हो जाता, भविष्यका ध्यान करके विचारमें पड़ जाता, युद्धका अवसर देखकर आतुर हो उठता, शत्रुकी स्थिति देखकर अपनी बाहें सिकोड़नेको तैयार हो जाता, अपने बलकी परीक्षा करनेके लिये बलवान् बन जाता, पुरानी इच्छाओंके पूरे होनेका अवसर देखकर उत्साहित हो उठता, समृद्धिकी गोदमें बैठनेकी इच्छासे प्रफुल्ल हो जाता और उदीयमान सूर्यकी सुनहली किरणोंसे बुद्धिको पिरोकर प्रसन्न होता था।

चैत्री पर्व जैसे-जैसे निकट आने लगा, वैसे-ही-वैसे बम्बईके समाचार पत्रोंमें सुवर्णपुरके इस पर्वकी प्रशंसा छपने लगी। शठरायकी दीवानगीरी, उसका अन्याय और उसमें सुधारकी आवश्यकता, प्रजापर जुल्म, भूपसिंहपर शठरायका कुत्सित प्रभाव, कलावतीकी बातें आदि विषयोंकी चर्चासे समाचार-पत्रोंके कालम भरे जाने लगे। अंगरेज़ीके प्रत्येक दैनिकमें लोगों-की लिखी हुई इस विषयकी दो-चार चिट्ठियाँ छपती रहती थीं। शठरायके गुप्त मण्डलमें ये सब लेख पढ़े जाते और इस विषयमें बुद्धिधन अपराधी ठहराया जाता। निर्भयरामने कहा,—"यह बात राणाजीसे कहनी चाहिये, अमात्यको यह उचित नहीं है।" शठ-रायने यह सलाह मान ली और निर्भयराम उन दैनिक पत्रोंको रोज़ राणाजीको सुनाने लगा। राणा क्रोधित होता और निर्भयरामको बहुत बार ऐसा मालूम होता था, कि वह सच-मुच क्रोध कर रहा है। कलावतीके विषयमें लेख सुन राणाको बहुत बुरा लगा, पर बात सच थी। राणा सोचता था, कि बुद्धि-धनने इसमेंसे कितना लिखा होगा—फिर बुद्धिधनमें इतना आन्दोलन करनेकी शक्ति देखकर राणाको आश्चर्य भी होता था। बुद्धिधनने राणासे कहा, कि मैंने कलावतीकी बात प्रकट नहीं की, पर राणाको इस बातपर विश्वास न हुआ और इसे बुद्धि-धनने ताड़ लिया। राणापर अविश्वास करनेका यह एक कारण था।

प्रजामेंसे बहुतसी अन्याय और अत्याचारकी अर्ज़ियाँ आती थीं, उन्हें शठरायको समझाकर निर्भयराम राणाके पास जाने न देता था और वे वहाँकी वहीं दबा डाली जाती थीं। इससे निर्भयरामपर शठरायका पूरा विश्वास हो गया।

एक सेठपर करवटरायने अन्याय किया था। उसने इसकी शिकायत बम्बई गवर्नमेण्टसे की थी; वहाँसे वह अर्ज़ी पोलिटीकेल एजेण्टके पास आयी और एजेण्टने दरबारसे उसका उत्तर माँगा था। दरबारका प्राइवेट सेक्रेटरी निर्भयराम था; इसलिये उसने वह अर्ज़ी शठरायको दी; निर्भयरामकी सलाहसे शठरायने उस सेठको क़ैद करवा लिया और उसपर ज़ोर-ज़ुल्म करके यह लिखवा लिया, कि अन्तमें दरबारसे मुझे सच्चा इन्साफ़ मिला। यह सेठका दस्तख़ती काग़ज़ एजेण्टके द्वारा सरकारमें पहुँच गया और सेठ क़ैदमेंही पड़ा रहा।

बुद्धिधनने यह भी इन्तज़ाम कर दिया था, कि प्रजाकी शिकायती अर्ज़ियोंकी नक़लें और समाचार पत्रोंके लेख साहबके पास पहुँचते रहें। उस सेठकी स्त्री लीलापुर भेज दी गयी थी और उसने वहाँ जाकर साहबको अर्ज़ी दी। बस्किन साहब इस वक़ दूसरे प्रान्तमें काम करते थे; बुद्धिधनने उनसे भी पत्र-व्यवहार शुरू किया और अपनी दशासे उन्हें जानकार कर दिया। उत्तरमें बस्किन साहबने आश्वासन देकर लिखा, कि मैं तुम्हारे लिये रसैल साहबको लिखूँगा। बस्किन साहबकी मेम विलायतसे आनेवाली थी और उसका रास्ता लीलापुर होकर था। बुद्धिधन प्रमादधनको साथ लेकर मेमसे मिला; मेमसे परिचय कराकर वह रसेल साहबसे मिला और राज्यकी बातें चलायीं। बातों-ही-बातोंमें उसने सुवर्णपुरकी भीतरी दशा साहबको समझा दी। साहबने सब कुछ सुनकर कहा,—"तुम समय आनेपर मुझसे कहना; मैं सब तरहसे तुम्हें आश्रय दूँगा।" फिर वह रसेल साहबकी मेमसे भी अच्छी तरह मिला और उनकी भी प्रसन्नता प्राप्त की। कलावतीके आनेके बाद रसेल साहब एजेण्ट बने थे; इस-

लिये राणाजी साहबसे मिलने न जा सके और उन्होंने बुद्धिधन कोही अपनी ओरसे ख़त लिखवाकर दिया था। जब साहबने राणाके ख़तका जवाब लिखा, तब उसमें बुद्धिधनका ज़िक्र किया और उसकी बहुत कुछ प्रशंसा भी लिखी। सुवर्णपुरकी ओरसे साहबके पास एक वकील रहता था; वह रोज़ सुवर्णपुरके विषयमें एजेन्सीकी रिपोर्ट शठरायके पास भेजता था। उसमें वह सदा बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें हाँकता और लिखता, कि आज साहबसे सुवर्णपुरके विषयमें दो घण्टेतक बातें होती रहीं; शठरायके सुप्रबन्धसे साहब बहुतही खुश हैं; आज उन्होंने दीवान साहबकी बहुत तारीफ की। जब बुद्धिधन साहबसे मिला, तब इसकी साधारणसी रिपोर्ट लिख दी और यह भी लिख दिया, कि साहबने बुद्धिधनको कुछभी सम्मान नहीं दिया। शठराय इससे बहुत प्रसन्न हुआ; पर बुद्धिधनने इस प्रसन्नतामें ज़रा भी बाधा न डाली। साहब और दोनों मेमोंने प्रसन्न होकर बुद्धिधनको अपने चित्र अपने हाथसे नाम लिखकर दिये थे और साहबने राणाजीके ख़तमें बुद्धिधनके विषयमें अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की थी। बुद्धिधनने वह काग़ज़ राणाजीको सुना दिया और शठरायके मण्डलसे उसे जो सम्मान मिला था, उसके लिये सन्तोष प्रकट किया। राणाके मनमें यह बात बैठ गयी, कि एजेंसीमें बुद्धिधनकी प्रतिष्ठा है और जो कुछ यह करेगा वही होगा। एजेन्सी और अख़बारोंकी ताक़त मालूम करा देनेपर राणा अपनी मुट्ठीमें रहेगा, यह बात बुद्धिधनने सोची थी—अब उसने उसे कर दिखायी। चैत्री पर्वसे ठीक पहले दिन अँगरेज़ी अख़बारमें बुद्धिधनके विषयमें लेख जाना आवश्यक था,—यह काम नवीनचन्द्रपर छोड़ा गया। उसमें अब बैठनेकी शक्ति आगयी

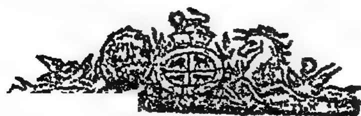
थी; उसने इस कामको प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया। प्रकृतिस्थ हो जानेपर, उसने अमात्यसे दरबारमें अपने जानेकी भी इच्छा प्रकट की थी।

अमात्यकी यह मंशा न थी, कि दीवानपर घात की जाये; बल्कि उसके खोदे हुए कुएमें उसेही गिरानेकी इच्छा थी। दरबारवाले दिनके लिये दीवानके षड्यंत्रके विरुद्ध, अपने बचावके लिये एक ढालकी भी ज़रूरत थी। लड़ाईके हथियार जैसे दीवानने रचे थे, वैसेही बुद्धिधनने भी तैयार कर लिये थे; पर सम्भव है, कि मौक़ेपर सिद्धि न मिली, तो दुष्टरायकी पुलिससे बचनेके लिये उसने और उपाय सोचे।

निर्भयरामके जिम्मे यह काम दिया गया, कि वह ऐसी युक्ति रचे, कि जिससे दरबारके ठीक मौक़ेपर दुष्टराय को अपने घर जाना पड़े; इसका फल यह होगा, कि फ़ौजदारकी आँखोंकी शरम न रहनेसे सिपाही बुद्धिधनका अदब मानेंगे और उसे गिरफ़ार करनेको उनकी हिम्मत न पड़ेगी। यदि यह युक्ति भी निष्फल सिद्ध हो, तो पुलिसको गिरफतार करनेके लिये रिसालेके सिपाही तैयार रहें। समरसेनका भाई विजयसेन रिसालदार था। यह रिसाला अँगरेज़ी अमलदारीके कारण केवल राज्यकी शोभा बढ़ाता था और सिर्फ़ दिखावटके लिये इसकी याद की जाती थी। जब दरबारके मौक़ेपर तोपें छूटतीं, तब उसी स्थानपर नंगी तलवारें लिये यह रिसाला शोभाके लिये खड़ा रहता था। इस समय ऐसी आज्ञा दिलवायी गयी, जिससे विजयसेनका रिसाला वहाँ मौजूद रहे। विजयसेन आगे आनेवाली घटनासे अनजान था। पर बुद्धिधनने समरसेनको समझा दिया था, कि दरबारके मौक़ेपर तुम मेरेही साथ

लगे रहना और उस समय विजयसेनको जैसी सूचना देनी थी, वह भी समझा दी गयी। पीछेसे घरकी रक्षाके लिये कई विश्वासी राजपूत तैयार किये गये और उन्हें सूचना दी, कि मैं जब तक दरबारसे न लौटूँ, तबतक तुम किसीको भीतर मत घुसने देना और फ़ौजदार या उसके किसी आदमीको मत आने देना। स्त्रियोंको सख्त हिदायत कर दी गयी, कि वे बाहर न निकलें। इन्तज़ाम सब मामूली था, किसीको कुछ ज्ञान भी न था, कि उस दिन क्या होगा। स्त्रियाँ और घरवाले सूचनाएँ सुन-कर हैरान और परेशान थे, पर उन्हें भी पता न चला, कि उस दिन क्या होनेवाला है।

चैत्रकी प्रतिपदाको दरबार था। उसके पहले दिन अमात्यके घरकी यही दशा थी। सबको यही सोच था, कि देखो कलकी रातमें क्या होगा। रात भर बुद्धिधनकी आँख न मिची, वह एकटक छतकी कड़ियोंको गिनता हुआ न जाने क्या-क्या सोचता था! सौभाग्यदेवीकी शय्या उसे नींद न ला सकी। अन्तमें प्रातःकालके समय उसकी आँखें झपीं। सोती हुई देवीका हाथ उसकी छातीपर पड़ा था। मानो वह टटोल रही थी, कि राज्य चिन्तासे घिरे हुए पतिके हृदयमें मेरे लिये अब कितना स्थान बाक़ी है?



ग्यारहवां परिच्छेद।

दरबारमे जानेकी तैयारियाँ।

लोग जिसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, वह चैती पर्व आ गया। अनेक प्रकारकी मनोकामनाके कारण दरबारियोंके मन चञ्चल हो उठे। शठराय नहा-धोकर तैयार होने लगा। दीवान साहबकी खिदमतमें निर्भयराम सबसे पहले पहुँचा। दरवाज़ेके सामने सिपाही इकट्ठे होने लगे। नहाकर शठराय गद्दीपर बैठा, नौकरोंने कपडे पहनाये; सामने आईना लाकर रखा गया, उसमें अपनी शकल देखकर वह "हे ईश्वर" कहता हुआ दूसरी ओर चला गया।

दुष्टरायके दरवाज़ेके सामने पुलिसके सिपाहियोंका ठट्ठ लग गया था। फ़ौजदार साहब भीतर रूपानीसे बातें कर रहे थे। रूपानी कपड़े देती थी और पतिके तैयार होनेमें मदद दे रही थी। दुष्टराय कपड़े पहनता-पहनता रूपानीसे छेड़-छाड़ भी करता जाता था; कभी-कभी बुद्धिधनके भाग्यकी भी मजाक करता था, वह बोल उठा,—"आज तो अलककिशोरी, कुमुद-सुन्दरी और सौभाग्यदेवीको भी मैं पकड़ूंगा; आज देखना मेरी बात।" अपने पर-स्त्री-गामी लम्पट पतिकी बातें सुनकर कुलटा प्रसन्न होती थी।

दीपान साहबके घरमें चारों ओर दरबारमें जानेकी हलचल मची थी; कोई कुछ ला रहा था, कोई किसीको आज्ञा दे रहा था, इस समय खोज-खाजकर निर्भयराम मेरुलाके पास पहुँच गया। एक एकान्त कमरेमें मेरुला एलकनन्दाके कपड़ोंकी तह कर रहा था। पासही एक मोढ़ा पड़ा था, निर्भयराम उसीपर बैठ गया। मेरुलाको बातोंमें लगाते हुए निर्भयरामने कहा,—"क्यों मेरुला! क्या बहनके कपड़े ठीक कर रहे हो?"

"हाँ निर्भय भाई, क्यों?"

"बहन तो सच्ची है न?"

"हाँजी, यह न भी हो, तोभी दिखावेके लिये तो कहायेही।"

"हाँ भाई, तू तो मौजकर। जमाल क्या गया, तेरा हिस्सा सबल हो गया। पर जमालका पता न लगा?"

"मियाँ मर गया। अच्छाही हुआ। बला टली।"

"अरे! पर तूने तो बातही उड़ा दी। अपनी बहनकी बात न कही!"

"बहन होगी जिसकी होगी। पर निर्भय भाई! मैं तो सच्चा आदमी हूँ, जो बड़ी हो सो माँ और छोटी हो, सो बहन।"

"और बराबरवाली?"

"बराबरवाली तो बराबरही है। जो जमालके बराबर सो मेरे भी बराबर।"

"ठीक, पर रूपानीसे भी पट तो जाती है?"

"उँह, उससे पटनेमें क्या हुआ? गड़बड़के साथ भी तो उसकी पटती है? उसके भी दो और मेरे भी दो।"

"पर गड़बड़ पहुँचा खूब?"

"निर्भय भाई! गड़बड़ने सचमुचही गड़बड़ की। खूब दीवान

साहब दीवानी करने जायँ और फ़ौजदार-फ़ौजदारीमें हों, तब यहाँ कोई नहीं रहता और गड़बड़ उस समय मिलने आता तथा उनके वापस आनेतक यहीं ठहरता है। बुद्धिधनको बिगाड़नेमें इसका हाथ सबसे आगे था, इसलिये इसके आने-जानेकी कोई मनाही न थी, इससे हम इसे कुछ नहीं कह सकते थे। यह अकेला बैठकमें बैठ, इधर-उधर टहलता और खिड़कीसे घरमें देखता था।"

"तब तू कहाँ मर गया था?"

"मैं औरही कामोंमें फँसा रहा और इधर इसने अपना काम निकाला। पीछे खलक बहन,—बहन होगी अपने भाईकी,—तो चली जाती थी सासरे और रूपाली रहती अकेली। वह वैसेही उघाड़े सिर चौकमें आया-जाया करती थी।"

"क्या जान-बूझकर आती-जाती?"

"नहीं; पहले तो अनजानमें। यह तो उसकी आदतही है! फिर एक दिन गड़बड़ने खाँस दिया—बस, फिर तो समझतेही हो। वह भीतर भी आने-जाने लगा।"

"यह बात तुझे कैसे मालूम हुई?"

"कुछ तो मैंने देखी और बाक़ी प्यारसे और धमका कर पूछ ली।"

"ठीक। आज तो ख़ूब मौक़ा मिलेगा।"

"हाँ, बड़े आदमी तो दरबारमें राजकी उथल-पुथल करेंगे। और मेरे जैसे आदमी इस घरका राज करेंगे। एक तरफ़ रूपाली और दूसरी तरफ़ खलक। पर आज दरबारमें कितनी देर लगेगी?"

"यही बारह बजेतक। तबतक तू यहाँ राज कर। पर तुझे वक़्त मालूम नहीं है?"

"मुझे तो शामको मालूम है, जब अलककिशोरी और सब पकड़ी आयेंगी। अच्छा, तो मैं बारह बजेतक घरका राजा हूँ।"

"मालिक वापस आते हुए सिपाहियोंके साथ आयेंगे। तू निर्भय रह। सबसे पहले मैंही आवाज़ दूँगा।"

"तब तो ठीक है।"

"बारहसे पहले तो आनेके नहीं।"

"फिर तो रूपाली और ख़लक दोनों मेरी हैं। उस समय तो शठराय भी चला आये, तब भी मैं नहीं डरूँगा।"

"पर दोनोंमें झगड़ा तो नहीं होगा?"

"झगड़ा? यद्यपि दोनों ननद-भौजाइयोंसे तमाम बस्ती काँपती है, पर मेरे सामने तो दोनों बकरियाँ हैं।"

जिस कुटुम्बके बड़े-बूढ़े बिगड़े हुए होते हैं, फिर उस कुटुम्ब-के बच्चे और छोटे कैसे सुधर सकते हैं? भले और बुरे चरित्रका प्रभाव बच्चों और नौकरोंपर अधिक पड़ता है; घरके नेताके आधारपरही घरवाले अपना चरित्र बनाते हैं, उसकाही दृष्टान्त उनके सामने होता है, उसका प्रभाव कुटुम्ब तकही संयत नहीं रहता, बल्कि जो उसकी संगतिमें रहते हैं; उनपर भी वही असर होता है। यदि यह नियम समान भावसे काम न करता हो, तो शठराय जैसे कट्टर राजनीतिज्ञकी बहू-बेटियोंपर एक मामूली नौकर इतना ज़ोर कैसे कर सकता था? स्वर्ग और नरक इस पृथ्वी-परही हैं। बुद्धिधन और शठरायका घर इन दोनों बातोंके नमूने हैं। इसी प्रकार विचार करता-करता निर्भयराम वहाँसे उठा।

इस समय सब तैयार हो गये थे। अब दीवान साहबका मण्डल दरबारके लिये चल खड़ा हुआ। निर्भयराम दुष्टरायके साथ चलने लगा। दोनों जने सबसे आगे आगे अकेले चलने

लगे। पीछे घरमें एक दो सिपाही रह गये। रूपाली खिड़कीसे सबको जाता हुआ देख रही थी। दुष्टरायने उसकी ओर देखकर ज़रा मुस्करा दिया। जब सब चले गये, तब रूपाली नीचे उतरी। मेरुला नीचे बैठा-बैठा कुछ काम कर रहा था। थोड़ी देरमें खलकनन्दा भी आ पहुँची। दोनों उसके गलेमें हाथ डालकर प्यार करने लगीं। शठरायका राजनीतिक मण्डल बुद्धिधनके नाशकी बातें सोचता-सोचता दरबारकी ओर बढ़ रहा था, उसे घरकी सुध भी न थी। आज पर-विनाशकी कल्पनासे सबके मुखोंपर अहंकार छाया हुआ था।

निर्भयराम—"क्यों फ़ौजदार साहब! आज तो पाँचों घी-में हैं?"

दुष्टराय—"इसमें भी क्या शक है?"

"जो कुछ जड़सिंहके ज़मानेमें था, वही अब फिर हो जायेगा।"

"ज़रूर। वही ज़माना आया समझो।"

"पर, पहले तो दरबारकोही रङ्ग महल बना डालते थे।"

"वह समय भी आयेगा।"

"आजही उसका भी श्रीगणेश हो जाये, तो कैसा अच्छा हो।"

"सो कैसे?"

"आज नाच होगा न?"

"हाँ होगा, फिर?"

"कलावती पोशाक बदलने दूसरे कमरेमें जायेगी। ... आप तो ताज़मी सरदार हैं ही, रोकनेको मजाल किसकी है?"

"पर आजही क्या, वह समय भी आयेगा।"

"इतनी भी हिम्मत नहीं है! दीवानी तो तुम्हारीही है? आज उसीकी शुरुआत कर डालो।"

"कहीं राणाने देख लिया तो बुरा होगा।"

"हो बुरा! यह बेचारा जागीरदार क्या देखेगा? यह तो बैठा-बैठा तम्बाकू फूँकता रहेगा।"

"तो ठीक है। हाँ, ऐसी आज़ादी भोगे बहुत दिन हुए।"

"उस समय मैं राणाका ध्यान दूसरी ओर फेर दूँगा।"

"ठीक है। पर जो दादाजीको मालूम हो जाये, तब!"

"उँहूं, इससे क्या, अपने बचपनमें उन्होंने क्या ऐसा नहीं किया? बच्चे तो सभी दङ्गाई होते हैं।"

"हाँ हाँ, समझ गया।"

निर्भयराम प्रसन्नतासे हँसने लगा। उसने मन-ही-मन कहा,—"अगर मौक़ा पड़े, तो मुझसे कहना, उस समय मैं वैसेही कहूँगा जैसे खड्डुमें गिरे हुए हाथीसे गीदड़ने कहा था—'भगवन्! मम पुच्छकावलम्बनं कुरु।" महाराज, मेरी पूँछके सहारे चढ़ आइये। मानो आपकोही राज मिल गया।" अहलकारों ओहदे-दारोंका मण्डल धीरे-धीरे हिलता-डूलता दरबारकी ओर चला जाता था और निर्भयराम मक्खीकी तरह चारों ओर घूम रहा था।

बुद्धिधनके घर भी दरबारमें जानेकी तैयारियाँ हो रही थीं। सवेरे चार बजे केवल दो घण्टेकी नींद लेकर बुद्धिधन उठा था और नहा-धोकर सन्ध्या-पूजनके बाद बैठकमें टहल रहा था। सौभाग्यदेवी भी नहा-धोकर भस्मका त्रिपुण्ड तिलक लगाये और बीचमें सिन्दूरका टीका लगाकर सवेरेसे पहले शिवपूजामें बैठ गयी। पूजाके बरतन चाँदीके थे, दोनों ओर घीके चिराग़ जला रखे थे, धूपकी सुगन्धि दूर-दूर फैल रही थी। उनके रङ्गीन आसनपर अपने काले और लम्बे केशोंको पीछेकी ओर

लटकाये पतिव्रता सौभाग्यदेवी योगियोंकी तरह ध्यान लगाकर बैठी। यह दृश्य देखकर नवीनचन्द्रको कादम्बरीकी महाश्वेताका स्मरण हो आया। वह कुछ समयतक उसके पवित्र और प्रतिमा-के समान मुखको देखता रहा।

कुमुदसुन्दरी अँगरेज़ी पढ़ी थी, पर धार्मिक विषयोंमें अभ वह कुछ न जानती थी। सासको पूजा करते और उस पूजाके ठाठको देखकर उसकी कल्पना भी प्रसन्न हुई थी। उसे अपनी सासका यह भाव बहुत पसन्द आया था, और वह साससे सूर्य-पूजा सीखने लगी थी। बेटीका ध्यान ऐसी बातोंमें न था, पर बहूका ऐसा रुख देख, सौभाग्यदेवी बड़ी प्रसन्न होती थी। अभी वह सब पूजा नहीं सीख सकी थी, इसलिये सासको पूजाकी सामग्रीमें मददही देती थी। बहूको अपनी सेवा करती देखकर सौभाग्यदेवीका हृदय मोम बन गया था। बुद्धि-धनको दरबारमें जाना था, इसलिये सब काम झटपट किये जा रहे थे। सासको पूजाका सामान तय्यार करके बहू सबके लिये सवेरेके खानेकी तय्यारीमें लगी। नवीनचन्द्र प्रातःकृत्यसे निंपटकर बैठकमें बैठ गया था और अमात्यके घरके काम देख रहा था। कुमुदसुन्दरी हाथमें दीपक लेकर इधर-उधर आती-जाती थी और कभी-कभी नवीनचन्द्रकी ओर भी देख लेती थी।

दूसरी ओर समरसेन और दूसरे आदमी बैठे थे। घरके नौकर सास-बहूकी आज्ञाके पालनमें लगे थे। प्रमादधनको जो कुछ काम सौंपा गया था, वह उसे चिरागके पास बैठकर समाप्त कर रहा था। इसी समय वृद्ध दयाशङ्कर और बहुतसे स्नेही आ गये। अलकिशोरी भी अपने घरसे नहा-धोकर आगयी और घरके काममें लग गयी।

दयाशङ्कर धीरे-धीरे लकड़ी टेकता-टेकता आया और बैठक-में बैठ गया; फिर स्कूलका हेड-मास्टर आकर बैठा। वह आकर अँग्रेज़ीका दैनिकपत्र पढ़ने लगा, जिसमें सबसे पहला लेख नवीनचन्द्रकाही था। पर लेखकके स्थानपर इसने अपना नाम लू दिया था। शास्त्रीजी श्लोक बोलते-बोलते सीढ़ीपर चढ़े और दयाशङ्करके साथ बातें करने लगे। काजी साहब बड़ा गम्भीर मुँह बनाये आये और हेड मास्टरके बराबर बैठ गये। नगर-का न्यायाधीश, जो डिस्ट्रिक्ट-प्लीडरशिप पास था—वह भी आकर बैठा। करवटरायके साथ इसकी खूब नाइत्तिफ़ाक़ी रहती थी। जब हुक्कामोंको राणा या किसी ऊँचे हुक्कामसे कोई खरी बात कहलानी होती थी, तब सब इसीको तैयार करते थे। इसकी विचार-प्रणाली प्रशंसनीय थी, पर वह टेढ़े रास्ते-से न चलकर सीधे रास्तेको अधिक पसन्द करता था—इसलिये रजवाड़ेमें इस सच्चे स्पष्टवक्ताका उतना आदर न था। पर वस्क़िन साहब इसकी नीयत और इन्साफ़-पसन्दी समझते थे और बुद्धिधन सदा इसकी रक्षा करता था। दरबारमें जानेके लिये जब और हुक्काम शठरायके घर इकट्ठे हुए, तब यह बुद्धि-धनके घर आया। यह बहुतही सच्चा और लापरवाह आदमी था। जब किसीको इससे काम निकालना होता, तब वह इसकी ईमानदारी और सचाईकी प्रशंसा करता था। इसका नाम तर्कप्रसाद था, पर राजनीतिक चालें चलनेवाले इसे बेवक़ूफ़ समझते थे और उन्होंने इसका नाम "भोंदू" रखा था। तर्क-प्रसादने सिद्धान्त बना रखा था, कि सत्यकी जय और असत्यकी हार ज़रूर होगी—बुद्धिधन एक दिन दीवान ज़रूर बनेगा। यह सदा बुद्धिधनकाही पक्ष लेता था और इसीमें उसका स्वार्थ

भी था। तर्कप्रसाद सबको सलाम और राम-राम करके एक कुरसीपर बैठा। इतनेमेंही बुद्धिधनका दामाद विदुरप्रसाद आ गया और वह तर्कप्रसादके बराबर बैठकर बातें करने लगा। यह हिसाबके महकमेमें गड़बड़दासके एसिस्टैंटका काम करता था। थोड़े दिन उसने पुलिसमें भी नौकरी की थी। यह सीधे स्वभावका था, पर माँ-बापके बहकानेसे कभी-कभी बुद्धिधनसे अपनी योग्यतासे अधिक याञ्चा कर बैठता और इस बातका इसे ख़यालही न था, कि राज्यमें बुद्धिधनके लिये भी प्रतिकूलता है। जब बुद्धिधन कोई इच्छा पूरी कर देता, तब इसके मनमें कभी-कभी उपकार-वृत्ति न जागती थी। पर अलककिशोरीसे बहुत दबता और उसके कारण सदा शान्त रहता था। वैसे सब प्रकारसे समझदार था और सदा अपने श्वसुरका पक्ष लेता था। जब कभी यह ऐसी-वैसी भूलें कर बैठता, तब रातमें अलककिशोरी इसपर बातोंके चाबुक उड़ाती थी और यह चुपचाप सुनता और सहता था। दयाशङ्करका बेटा जयशङ्कर भी आया। बुद्धिधनने इसे धनकी सहायता दी थी, जिससे यह बम्बईमें रहकर एण्ट्रेन्स पास हो आया था। इसका शरीर ख़ासा लम्बा-चौड़ा और प्रभावशाली था। यह शठरायके श्वसुरके नातेसे उसका रिश्तेदार भी था। इसे राणाजीके महल और रसोईख़ानेकी दारोगाई मिल गयी थी। यह बुद्धिधनसे मिलने न पाये, अतएव शठरायने इसे इसी कामपर लगा दिया था और इसका कारण निर्भयराम था। राणाने जयशङ्करको बुद्धिधनके बुलानेके लिये भेजा था। बुद्धिधनके पास जाकर उसने कानमें कहा,—"भाई साहब! आज कलावती तमाम रात राणाजीके साथ रही और सबेरे चार बजे अपने घर गयी है। रणजीतने कहलाया है, कि रात भर इसने राजबाकी बातें की हैं और राणा

को बहुत कुछ उभारा है। आप राणाका विश्वास करने न करनेके विषयमें सब कुछ सोच लें। कलावतीके जानेपर राणाने शठरायको चिट्ठी लिखी थी—यह नहीं मालूम हुआ, कि उसमें क्या लिखा था—पर यों बड़बड़ा रहे थे, कि—'इतना तो झूठ नहीं हो सकता'—'रमाबाई' या ऐसाही कुछ नाम लिया था।"

यह बात सुनकर बुद्धिधनने जयशङ्करको फिर वापस लौटा दिया और कह दिया, कि मैं अभी आता हूं। बुद्धिधन सोचने लगा,—"यह समझमें न आया, कि राणा शठरायको धोका दे रहा है या मुझे। चाहे कुछ भी हो, पर अब बहुत कुछ सोचने-विचारनेका समय नहीं है।" इस जल्दीमें एक बात नयी सूझ आयी। नवीनचन्द्रको इसने देखा था और यह भी समझ लिया था, कि यह बादल कोरा दिखावटीही नहीं है। इसका सम्बन्ध शठराय या दरबार किसीसे भी नहीं है; अतएव यह निर्भयरामसे भी अधिक विश्वास करने योग्य है। जयशङ्करके जातेही बुद्धिधनने अलककिशोरी और नवीनचन्द्रको बुलाया। अलककिशोरीको खाना रखनेके लिये कहकर भेज दिया और नवीनचन्द्रके कंधेपर हाथ रखकर अमात्य कुछ देरतक देखता रहा, अन्तमे बोला,—"नवीनचन्द्र! आज मैं तुम्हें एक काम सौंपता हूं, वह बहुतही विश्वासका है और बहुत गुप्त है। मैं अपने अमूल्य रत्न तुम्हारे हाथमें देना चाहता हूँ। तुम विद्वान् हो, कुलीन हो और सब बातोंमें विश्वासपात्र जान पड़ते हो। मैं जानता हूँ, कि जब मेरी आँखकी शरम न रहेगी, तब भी ये सब गुण तुममें रहेंगे?"

नवीनचन्द्रको कुछ आश्चर्य हुआ, बोला,—"अपने मुँहसे अपनी बड़ाई करना मुझे नहीं आता। पर इतना मैं ज़रूर कह सकता हूँ, कि आप मेरा जो विश्वास करेंगे, उसमें कसी रत्ती भर भी

अन्तर न आयेगा। आपने मुझे उपकारके पाशमें जकड़ लिया है। मैं परमात्माको प्रसन्न करनेके लिये चाहता हूँ, कि आपकी कुछ सेवा करूँ।"

"तुम्हें मालूम है, कि आज दरबारमें बहुत कुछ उलट-पलट होगी।"

"हाँ, पर सब नहीं जानता।"

"सब फिर मालूम होगा। अभी इतनाही जानना काफ़ी होगा, कि आज मैं या शठराय दोमेंसे कोई एकही बचेगा। यदि मेरे सिर कोई आपत्ति आ जाये, तो इशारेके साथही तुम दरबारसे निकल कर घर चले आना और यहाँसे सब कुटुम्बको लेकर उसी समय लीलापुर चले जाना। वहाँ कोई मकान भाड़े लेकर रहना। मेरे धन और गहनोंकी बात अलक जानती है और सब काम दयाशङ्करकी सलाह लेकर करना। लीलापुर जाकर साहबसे मिलना; विद्याचतुरको भी सब कुछ लिखना और जैसे वे कहें, वैसे काम करना। प्रमाद अभी बालक है; उसकी ख़बर भी तुम्हीं रखना। पासके नौहरेमें गाड़ी तैयार खड़ी रहेगी, बस दरबारसे निकलतेही चल देना। जो समरसेन आदमी साथ दें, तो उन्हें भी लेलेना।"

नवीनचन्द्र सन्न रह गया। विदेशमें आकर वह किसीका इतना विश्वास-पात्र हो जायेगा, क्या कभी ऐसा प्रसङ्ग भी आयेगा? यह उसने सपनेमें भी न सोचा था।

"शठराय या उसके सगे-सम्बन्धी और किसी अनजानका विश्वास मत करना। यहाँ एक दनभर भी न ठहरना। इन लोगोंके विचार बहुतही नीच हैं। मैं जानता हूँ, इसे तुम्हीं कर सकोगे।" अमात्य एकटक नज़रसे नवीनचन्द्रको देखने लगा।

"आप ज़रा भी सन्देह न करें। परमात्मा मेरी कुलीनताकी परीक्षाका पहला अवसर ला रहा है; मुझे पूरा विश्वास है, कि मैं इसमें उत्तीर्ण होऊँगा।"

कपालसे आँखोंपर और आँखोंसे मुँहपर हाथ फेरते हुए दीर्घ निःश्वास त्यागकर अमात्यने कहा,—"नवीनचन्द्र! मैं अपने अच्छे-से-अच्छे रत्न तुम्हारे हाथ सौंपता हूँ। आजतक मुझपर ऐसा समय नहीं आया था।"

"आप मुझे अपने भाईके समान या पुत्रके समान समझिये। मैं आपके चरणोंपर हाथ लगाकर कहता हूँ, कि आपके कुटुम्बसे मेरा कोई भिन्न भाव नहीं हैं। विशेष क्या कहूँ? कहनेकी अपेक्षा करके दिखा देना कहीं उत्तम है। आपका धन मेरे लिये शिवनिर्माल्य है। देवी मेरी माता हैं और अलक बहन मेरी बहन ——"

"मेरे और भी मित्र हैं। पर उनका सम्बन्ध राज्यसे है। लराय धनवान् हैं——"

"मैं सब तरहसे आपका विश्वासपात्र बनना चाहता हूँ। मैं कुपात्र नहीं हूँ। मैं किसीके धनके लालचमें नहीं आ सकता। मैं भी अपनी गुप्त बात आपसे कहता हूँ। मेरे पिता करोड़पति हैं।"

बुद्धिधनका भाव ऐसा मालूम हुआ, मानो वह इस बातको झूठ समझ रहा है। इससे नवीनचन्द्रको खेद हुआ। उसने कहा,—"अच्छा आप इसके सुबूतमें मेरी अँगूठी देखिये।" जनेऊमें बँधी हुई अपनी सोनेकी अँगूठी नवीनचन्द्रने बुद्धिधनके हाथमें दी। बुद्धिधन उसे देखता रहा। उसका हीरा दस हज़ारसे कम-दामका न था।

"इसके अलावा मैं आपकी बहुतसी गुप्त बातें भी जानता हूँ। दुष्ट शठरायने आपके प्राण लेनेका जाल बिछाया है, यह भी मैं जानता हूं। कलावतीके विषयमें भी मैं जानता हूं—"

बुद्धिधन चमक उठा, दृष्टि स्थिर हो गयी, एकटक नवीनचन्द्रको देखकर बुद्धिधनने कहा—"हैं!"

"आप आश्चर्य न करें। यह सब मैंने कैसे जाना, सो पीछे कहूँगा। मैंने इतनी बात जानली, पर किसीके मुँहसे—प्रमाद भाईके मुंहसे एक शब्द भी नहीं सुना है। मैं बातको अपने पेटमें रख सकता हूँ। आपकी किसी बातका दुरुपयोग मेरे द्वारा नहीं होगा,—यह मैंने इसीलिये कहा है, कि जिससे आप मुझे अपना विश्वासपात्र समझें।"

बुद्धिधन कुछ विचार करने लगा।

"यदि आप कोई काम मुझे आशंकासे न देना चाहते हों, तो मैं उसे लेनेके लिये आतुर नहीं हूँ। मैं तो विदेशी-प्रवासी हूँ। यदि आपको मेरे न रहनेसेही अनुकूलता हो, तो मैं अभी चुपचाप दूसरे देश जानेके लिये तैयार हूं। और आप जो काम मुझे दे रहे थे, वह चाहे जिसे दें।"

"नहीं, नहीं, यह बात नहीं है। मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ। यह काम तो तुम्हारेही द्वारा होगा। पर यह ख़याल रखना, कि जीभकी बात दाँत न सुन सकें। मेरे अमूल्य रत्न—"

"आप चिन्ता न करें।"

अलककिशोरी आ गयी। सब सबेरेका भोजन करने दामाद भी उस खानेमें शरीक हुआ। दयाशङ्कर भी एक पी पर बैठ गया। स्त्रियोंको चंचलता बढ़ानेके लिये आजतक बु घरने कभी उनके सामने राजनैतिक विषयकी चर्चा नहीं

थी ; पर आज कहनेकी ज़रूरत थी। अतएव उसने जो बात नवीनचन्द्रसे कही गयी थी, वही सबको सुना दीं और उसी प्रकारकी सबको आज्ञादी। सब चमक उठे ; चिन्तामें पड़ गये, पर वह समय शोक करनेका न था। भोजन करके कपड़े पहननेके लिये अमात्य शयन-गृहमें गया। पीछेसे चिन्तित सौभाग्यदेवी भी गयी।

"देवी! इस बक्समें काग़ज़ हैं। यदि नवीनचन्द्रके साथ लीलापुर जानेका प्रसङ्ग आही जाये, तो इन्हीं काग़ज़ोंके अनुसार काम करना।"

घबराकर देवीने कहा,—"पर यह सब क्या बात है? मैं तो कुछ भी नहीं समझी।"

"कुछ भी नहीं, तुम घबराओ मत। मैं जबतक लौटकर न आऊँ, तबतक दयाशङ्कर काकाको यहीं ठहराना।"

आँख पोंछते हुए देवीने कहा,—"नहीं, बात तो सहज नहीं जान पड़ती। तुम आजतक तो मुझसे कुछ भी नहीं छिपाते थे। मुझसे क्या अपराध होगया है, जो तुम मेरा विश्वास नहीं करते?" कुछ बात नहीं है। मैं लौटकर सब कहूँगा। अब कहनेका समय कहाँ है? बात इतनीही है, कि आज दरबारमें उथल-पुथल होगी और—"

"मैं तुम्हारे चेहरेसे देख रही हूँ, कि तुम्हारे हृदयमें बहुत दुःख भरा है।"

"हाँ, दुःख ज़रूर है। पर मेरा हृदय यह भी कह रहा है, कि आज मङ्गल होगा। मुझे डर नहीं है। कुछ औरही होगा—"

इतनेमें अलककिशोरी आगयी।

"अलक! यदि नवीनचन्द्रके साथ जाना पड़े, तो खूब होशियारीसे काम करना। अपनी भाभीको खूब अच्छी तरह रखना।"

इसी समय प्रमादधन भी आगया, उसने कहा, कि सब इकट्ठे होगये हैं और दरबारसे फिर बुलावा आया है। देवीने अलकको कुंकुं लाने भेजा। कपड़े पहनकर बुद्धिधन सीढ़ी पूरी कर गया, तब सामने अलककिशोरी कुंकुं लिये मिली।

"पिताजी, मङ्गल होगा। देखो, मैं कुंकुं लिये सामने मिली हूं।"

सब दीवानख़ानेमें इकट्ठे होकर नीचे उतरे। नवीनचन्द्र भी दरबारी कपड़े पहने तैयार था। अमात्यने नवीनचन्द्रकी उँगली पकड़ ली। वनलीला सवेरे अपने श्वसुरके यहांसे घर जारही थी, उसने अपने पतिके मुंहसे कुछ बातें सुनी थीं, उन्हेंही कहनेके लिये उसने कुमुदसुन्दरीको दरवाज़ेपर बुला भेजा था। दोनोंने खड़े-खड़े बातें कीं; वनलीला चली गयी और कुमुदसुन्दरी लौट रही थी, इसी समय अमात्य अपने मण्डल सहित बाहर निकले।

अमात्यने कहा,—"नवीनचन्द्र! शकुन तो सब अच्छे हुए। सीढ़ीपर अलक मिली और दरवाज़ेपर कुमुदसुन्दरी।"

"हां, शकुन शुभ हुए हैं। परमात्मा मङ्गल करें।" सब इसी प्रकार कहने लगे। फिर सब राजमार्गसे चलने लगे।

बुद्धिधनके मनमें शङ्का उठ रही थी,—"न मालूम अब यह घर देखना नसीब होगा या नहीं? अपने इस आनन्दमय कुटुम्बसे फिर मिल सकूंगा या नहीं, यही भेंट तो कहीं अन्तिम भेंट नहीं है? आते-आते देवीको अन्तिम स्नेहालिङ्गन भी न किया! परमात्मा अब क्या होगा? मेरी अलक और कुमुद फिर मिलेंगी? प्रमाद ....."

अपने स्वजनोंके विचारसे मोहित होता हुआ वह राज-नैतिक हृदय अपने घर और स्वजनोंको देखकर अदृश्य होगया।

बुद्धिधनके मनसे अब घरकी चिन्ता जाती रही; अब वह दरबार-के विचारमें लीन होगया। एक दीन मनुष्यको मन्त्रिपद पानेके लिये जिन-जिन साधनोंकी ज़रूरत होती है—उन सबको वह मन-ही-मन सोच गया। चारों ओर विचित्र दिमाग़वाला जन-मण्डल चला जा रहा था ; रास्तेमें शठरायसे भेंट होगयी। सब बड़े स्नेहसे मिले! बुद्धिधन शठरायसे बड़ी प्रसन्नता और हँसते हुए मुँहसे मिला। अब यह एक बड़ा गिरोह दरबार-भवनकी ओर बढ़ा। इनमें एकही व्यक्ति था, जो सबका मित्र रहकर भी सबकी परीक्षा कर रहा था—वह था नवीनचन्द्र।



बारहवाँ परिच्छेद

दरबार और राजनैतिक प्रपंच।

"इक ओर शशि सोलह कलायुत करत अस्त प्रयाण,
बाल रवि तब उदय-गिरिपर चढ़त तेज निदान।
संसारकी यह युग दशा अन्तर कहो या चित्र,
उदयास्तसे जकड़ी हुई माया बढ़ी यह मित्र॥

राणा भूपसिंहका राजमहल एक बाग़के बीचमें था और राजमहल तथा बाग़के चारों ओर एक मज़बूत कोट था। कोटमें जगह-जगह बुर्जें बनी थीं और बाक़ी कङ्गूरे थे। कोटकी ऊँचाई दस गज़से कम न होगी। महलके चारों ओरवाला बाग़ अच्छा सरसब्ज़ था, पर कहीं-कहीं जङ्गलका नज़ारा भी देखनेको मिलता था। बहुतसे ऊँचे आमके वृक्षोंपर बैठे हुए मोर बहुत भले मालूम होते थे। पेड़ोंके झुरमुटमें जैसे सफ़ेद फूल खिल-कर ऊँचा होजाता है, उसी प्रकार दूरसे राणाजीका महल बाग़-का फूल सा दीखता था। बाग़ और आसपासके कोटकी अपेक्षा महलकी सम्हाल अधिक रखी जाती थी। पहला महल दोही खण्डका था, पर राणा भूपसिंहकी इच्छासे उसपर दो खंड और चढ़ाये गये थे, वेही दूरसे दिखाई देते थे। गिरनेके डरसे

दूसरी मञ्ज़िलसे तीसरीका घेरा कम था और तीसरीसे चौथा-का कम था। चौथी मञ्ज़िलमें एकही शयन-गृह था और वह बुद्धिधनके कथनानुसार बम्बईके तर्ज़पर बनवाया गया था। इस-में दीवारोंकी जगह काँच जड़ा था। भीतर लाल रङ्गके पर्दे लटक रहते थे और कोई-कोई खिड़की खुली रहती थी। सूर्यकी किरणोंसे यह शयन गृह चमचमा उठता था और इधर-उधरसे देखनेवालोंकी आँखें चौंधिया जाती थीं।

इसके भीतरकी बस्ती चाहे जितनी हो, पर चैत्र मासमें आकाशके नीचे खड़े हुए इस अनुपम भवनकी ओर जैसे-जैसे लोग गर्मीसे घबराकर शीतल वृक्षोंकी छाया पानेकी आशासे आते थे, वैसे-ही-वैसे गर्मीकी बाधा उनके मनसे हटती जाती थी। जैसे प्रभातके समयमें खेलनेके लिये घरसे निकले हुए बालक भोजनके समयतक खेलसे थककर भूखके मारे घरकी ओर जाते हुए अपने माता-पिता और खानेकी चीज़ोंका ख़याल करके प्रसन्न होते हुए घरकी ओर बढ़ते हैं, उसी प्रकार तमाम हुक्कामों, अहलकारों और दरबारियोंका जमघटा राणा, राज-दरबार और उसमें होनेवाली उथल-पुथलका ध्यान करता हुआ, दरबार-भवनकी ओर बढ़ रहा था। गाड़ी घोड़ोंकी बड़ी भीड़ होनेपर भी राजाकी सवारीको जैसे सब लोग मार्ग दे देते हैं, उसी प्रकार अपने-अपने घरसे निकलकर अहलकार और दरबारी लोगोंकी ओर जाते थे और साधारण दर्शक-प्रजावर्ग उन्हें अदबके साथ हटकर रास्ता देता था।

राजमहलकी ड्योढ़ीका सदर दरवाज़ा विशाल था। दोनों किवाड़ोंमें पीतलके पत्तर जड़े हुए थे। दरवाज़ेपर एक नक़्क़ार-ख़ाना था, जो पहर-पहरमें बजता था और किसी ख़ास जलसे

या खुशीके दिन सब समय बजा करता था। चारों ओरकी फ़सीलपर इतना रास्ता था, कि वहाँ हलकी तोपें लगायी जा सकती थीं। जगह-जगह फ़सीलोंपर चढ़नेके लिये सीढियाँ थीं और नक्कारख़ानेसे भी रास्ता था। बाहरकी ओर चौकमें सिपाहियोंके रहनेकी जगह थी। वे वहाँ सोते-बैठते और बातें करते थे। अपनी तलवारों और बन्दूकोंका जङ्ग वे पत्थरसे घिस-घिसकर छुड़ाते थे और आसपासकी ड्योढ़ियों-पर पहरा देते समय शोभाके लिये वे उन्हें अपने कन्धोंपर रख लेते थे। आज वे भी अपनी पुरानी, फटी हुई और सम्हालकर थिगली लगाई हुई वर्दी पहनकर ड्योढ़ीके सामने रास्तेके दोनों ओर खड़े होगये थे और जैसे-जैसे बड़े हुक्काम भीतर जाते थे, वैसे-ही वैसे सबकी सलामी होती थी। दो-चार सवार इधर उधर आते-जाते और कोई-न-कोई सूचना दे जाते थे। सूखी रोटियाँ खाते-खाते सिपाहियोंके चेहरे सूख गये थे, थोड़ीही उमरमें उनके गालोंकी हड्डियाँ ऊपरको उठ आयी थीं। वे बेचारे किसी प्रकार अपने प्राण बचा रहे थे। सब बड़े-बड़े ओहदोंपर दीवानके सगे-सम्बन्धी और हिमायतीही भरे थे, वे सिपाहियोंकी वर्दीका, इनामका रुपया हजम कर जाते थे और दीन सिपाही अपने भाग्यको कोसते थे। भारतके देशी राज्य और उनके सिंहासनपर बैठनेवाले शराबी और ऐयाश राजाओंकी नजर क्या अपने दीन-हीन सेवकोंपर जाती है? जिस प्रजाके धनसे, जिनके पसीनेकी कमाईसे महाराजाधिराजके सिरपर शोभाके लिये अमूल्य मणियाँ ख़रीदी जाती हैं,—स्वार्थके अन्धे उन राजा-ओंको क्या कभी उनकी ख़बर होती है? क्या वे जानते हैं, कि उनपर कैसे ज़ुल्म होते हैं?

सदर दरवाज़ेसे भीतर घुसनेपर महलमें जानेके लिये जो रास्ता पड़ता था, वह बाग़की झाडियोंसे दोनों ओरसे घिरा था। बाग़को सींचनेके लिये जगह-जगहपर छोटे-छोटे पक्के हौज़ बनाये गये थे, जिनके किनारोंपर बैठे हुए कबूतर बहुतही भले मालूम होते थे। तमाम बाग़ चिड़ियोंके शब्दोंसे चहचहा रहा था। माली राणाजीकी वर्षगाँठके उपलक्ष्यमें बाग़को सुधार रहे थे। वास्तवमें मनुष्य और प्रकृतिमें युद्ध हो रहा था। प्रकृतिके पदार्थोंको मनुष्य औरही रङ्ग-रूपका बना देता है। मालियोंके बनाये हुए मेंहदीके मोर और हाथी बहुत कुछ सजीव मालूम होते थे। नवीनचन्द्र इस प्रकारकी सब कारीगरियाँ बम्बईके बाग़में देख चुका था। महलकी चहारदीवारीके भीतर घुसतेही उसे प्राचीनताके बहुतसे लक्षण दीखे। उसके मनपर गम्भीरताकी छाया पड़ी।

चारों ओर अमरूद, अनार, केला और सीताफलके वृक्ष थे। बहुतसे पौदोंपर रंग-बिरंगे लुभानेवाले फल भी लगे थे। फूलोंकी क्यारियाँ लगी थीं और उनमें मनोहर पुष्प खिलकर अपनी सुगन्धि फैला रहे थे। मनोमुग्धकर प्राकृतिक और कृत्रिम दृश्य देखकर नवीनचन्द्रके हृदयमें अनेक भाव पैदा हुए। बड़े-बड़े ऊँचे विशाल वृक्ष उन्नत मस्तक राजप्रासाद, नये खानसे निकले हुए ताँबेकी तरह तपनेवाला आकाश और उन सबके बीचमें एक क्षुद्र जन्तुके समान अपने आपको देखकर उसके मनमें दीनवृत्तिका उदय हुआ। तपोवनमें राजा दुष्यन्तके जो भाव हुए थे, वे समझमें आये। अपने साथ चलनेवाले मनुष्य भी इस जड़ सृष्टिमें विद्यार्थीके समान पढ़ते हुए मालूम हुए। उसे मालूम होने लगा, मानो वह इतने मनुष्योंके होते हुए भी अकेला है।

उसके सामने माता और पिताकी शान्त मूर्त्तिका उदय हुआ। वह मन-ही-मन गाने लगा,—

प्रेमको नेम न जान्यो जाय ॥

अलख अचिन्त्य अनादि अनन्तन प्रतिघट रह्यो समाय ॥
जात बहो चित मन्द बयारो क्यों न चल्यौ तित जाय।
पै या प्रेम नेमकी रज्जू घटत न ओछो थाय॥
रह रह स्वजन सनेही सारे खैंचत लेत उसाँस।
प्रतिपल ते सब आगे आवत उरमें करत निवास॥

* * * * *

बाल्य सहचरो! हे प्रिय मित्रो! सुखी रहो भरपूर।
रक्षा करें तुम्हारी प्यारो! देवि देवता बनकर शूर॥*

"अहा, कुमुदसुन्दरी! पर तू दूर रह, अब इस जन्ममें ऐसा अवसर नहीं मिलेगा, जब मैं तुझे अपनी कह सकूँ। क्या तू ऐसा पदार्थ है, कि घर, मित्र और स्वजनोंका प्रेम भी मैं भूल जाऊँगा? सौन्दर्य! पवित्र मानसिक सौन्दर्य! पवित्र विद्यासे मिले हुए सौन्दर्य! क्या तेरा मोह अनिवार्य है? नहीं, नहीं।"

इसी समय नक्कारख़ाना धड़धड़ा उठा। सबका ध्यान उस ओर खिंच गया। ऊपरकी ओर नजर गयी। आज नक्कार-ख़ानेके द्वारपर नयी ध्वजा लगायी गयी थी; इस समय वह निर्मल आकाशमें फहरा रही थी। सब मनुष्य सचेत होने लगे। अपनी-अपनी मानसिक वृत्तियोंका राज्य छोड़कर सब आँख-कानसे सामनेके दृश्योंको देखने लगे। विदेशी मुसाफिरको यह ख़याल हुआ, कि वह दरबारियोंके बीचमें अमात्यके साथ चल

---

* गोल्डस्मिथका भाव।

रहा है। सुवर्णपुरके राज-उद्यानमें ऐसे विचार शायद सबसे पहली बारही उठे होंगे; पर उन विचारोंको किसीने न तो जाना और न समझा। वे विचार पैदा होकर उसी जगह शान्त हो गये—यह बात सुवर्णपुरकी दुनियाँके योग्यही था।

मेंहदीकी कतारोंके बीचसे चलते हुए, सब लोग चौकमें पहुँचे, जहाँ बीचमें घास जमाकर सुन्दर फूलोंके पौदे लगाये गये थे। उससे आगे बढ़नेपर विशाल राजमहल आ गया और आकाशके दर्शन बन्द हो गये। राजमहलका मुँह पूर्वकी ओर था, किन्तु दरवाज़े चारों दिशाओंमें थे। राजमहलसे सटकर एक हाथी खड़ा था और उसके बराबर, विजयसेनके हथियार बन्द सिपाही खड़े थे। हाथीका विशाल मस्तक इधर-उधर घूमता था और उसकी गम्भीर दृष्टि सब आने-जानेवालोंपर पड़ती थी। उसकी कमरमें पड़ा हुआ घण्टा भी कभी-कभी बज उठता था। इस महाप्राणीको जो घोड़े पहचानते थे, वे डरते न थे; किन्तु घण्टेकी आवाज़से कान खड़े कर लेते थे और हिनहिनाकर फिर शान्तिसे खड़े हो जाते थे। राजमहलके दरवाज़ेपर उस विशालकाय प्राणीको देखकर सब दरबारी उसे सम्मान देते हुए भीतर चले जाते थे। राणा भूपसिंह उसीपर बैठकर थोड़ी देर पहले आया था। "मातङ्गराज" हाथीपर सुवर्णपुरके बहुतसे राणा सवारी कर चुके थे और दीवानको वह पहचानता था। शठराय और बुद्धिधनको देखकर उसने अपनी सूँड़ ऊँची की और सिर हिलाया। शठराय यह देखकर चला गया। बुद्धिधन उसके पास चला गया, सूँड़पर हाथ फेरा, महावतसे रसोईसे हाथीकी बात पूछी और भीतर गया। मातङ्गराज कृतज्ञताकी दृष्टिसे बुद्धिधनको देखता रहा। नवीनचन्द्र यह

सब कुछ देखकर मन-ही-मन आश्चर्य और तर्क-वितर्क कर रहा था। फिर सबके साथ वह भी महलमें दाख़िल हुआ।

महलके सबसे नीचे वाले खण्डमें दरबार होता था। नीचे, सीढ़ियोंके किनारे, पीतलके भरतवाला कटहरा लगा था और सीढ़ियोंपर सुर्ख़ ग़लीचा बिछा था। सब लोग वहींसे ऊपर चढ़े। ऊपर बड़ा भारी दीवानखाना था, जिसमें दो हज़ार आदमी एक साथ बैठ सकते थे। फ़र्शपर एक मोटा ऊनका ग़लीचा बिछा था। सामनेही एक ऊँचे संगमरमरके चौतरेपर सोने-चाँदीका बना हुआ कुर्सीनुमा राणाका सिंहासन था। उसमें हाथ रखनेकी जगह सोनेके शेर थे। उसपर सुनहरी काम की हुई मखमली गद्दी थी। सिंहासनके सामने वैसाही सुनहरी कामका मखमली गद्दा बिछा था। विविध रङ्गवाली खिड़कियोंमेंसे सूर्यकी किरणें भीतर आती थीं, जिससे दीवान-खाना जगमगा उठा था। दीवारोंपर बहुतसे कृत्रिम पदार्थ बनाये गये थे, जो सबसे पहले देखनेवालेको सच्चा होनेका भ्रम करा देते थे। छतपर बीसियों झाड़ और हाँड़ियाँ लटक रही थीं। तमाम दीवानख़ाना एक विशाल पलंगसा मालूम होता था। उसपर चढ़तेही मनुष्यका मन मोहनिद्रामें डूब जाता था और राजवैभवको देखकर वह थोड़ी देरके लिये अपनी वास्तविक स्थिति भूल जाता था।

दीवान और सब हुक्काम इसी दीवानख़ानेमें इकट्ठे हो गये। और इधरसे उधर घूमने लगे। कोई खिड़कियोंके पास खड़े होगये, कोई आईनोंमें अपनी सूरतें देखने लगे, कोई इधर-उधर देखने लगे, कोई बातें करने लगे; कोई दरबारकी तैयारीके लिये इधर-उधर देखने-संभालने लगे, कोई बैठे और कोई प्रतीक्षा करने

लगे, कोई विचार करने लगे, कोई आराममे बैठ गये, कोई किसीके कानमें आजके भविष्यपर अपना मत देने लगे ; इसी प्रकारके भाव-उद्भावके हज़ारों चित्र उन स्पष्टवादी आईनोंपर पड़ने लगे। जिस प्रकार उनके भाव उन शुद्ध आईनोंपर पड़ रहे थे, उसी प्रकार बुद्धिधनकी उँगली पकड़कर टहलनेवाले नवीनचन्द्र के मनपर भी वैसाही भाव पड़ रहा था। और जैसे मानो कोई विदेशी मालकी प्रदर्शिनी देखता हो, बोलते-चालते पुतले देखता हो, अनजान भाषा बोलनेवालोंके बीचमें घूमता हो; संसारके बीचमें संन्यास लेकर घूम रहा हो,—उसी प्रकार इस महामण्डलके बीचमें खड़ा हुआ, किन्तु अपने आपको अकेला मानता हुआ नवीनचन्द्र, इस समस्त इन्द्रजालपर घोर दृष्टि डालता, आश्चर्य करता, देखता, कुछ विषयोंका अपने मनमें निश्चय और प्रकरण करता—और कभी-कभी इस कामसे विराम लेकर सूर्यकिरणके पृथक्‌रंगके साधनभूत उन विचित्र रँगोंसे भरे हुए, सिरोंपर लगे हुए, बिल्लौरसे अपनी समानता करने लगा और हँसा।

जिस समय एक अन्तःकरणमें यह अन्तःक्रिया चल रही थी, उस समय लोग आ रहे थे और दीवानख़ाना भर रहा था; बहुतसे शहर और गाँवोंके बाशिन्दे आये थे, वे यह सब दृश्य देखकर आश्चर्यसे खड़े रह गये। बहुतसे सबसे आगे बैठने लगे—बहुतसे ऐसी लापरवाहीसे घूमने लगे, मानों उन्हें दरबार-का हक़ही मिल गया है ; बहुतसे हुक्कामोंको सलामें करने लगे; बहुतसे अपने मित्रोंको अपने तरफ़दार हुक्कामोंमें नाम बताकर उँगलीसे उन्हें दिखाने लगे। हुक्कामलोग सलाम लेते-लेते अपने आपको बड़ा समझकर गर्वसे छाती फुलाने लगे और राज-सत्ताको जिसके पैरोंपर झुकना चाहिये,—जिसे पूज्य समझना

चाहिये,—राज और दरबारियोंकी कामधेनु—बेचारी प्रजा अपने क्षुद्रसे क्षुद्र अधिकारोंको किसी गिनतीमें न समझकर, अपना सर्वस्व-हरण करनेवाले स्वार्थियोंके आनन्दमें आनन्द मनाने लगी। उनके उस नीरव, अगाध और मौन उत्साहपर नवीनचन्द्रकी नज़र पड़ी। फिर दूसरी ओर उसने आँख उठाकर देखा,—शठराय और बुद्धिधन हँस-हँसकर प्रसन्नतासे बातें कर रहे थे; देखकर उसे आश्चर्य हुआ।

इसी समय दूरसे घोर-गम्भीर स्वरमें "घणी खमा महाराज"-की आवाज़ सुनाई दी। मेघकी गर्जनासे जैसे मोर चमक उठते हैं, उसी प्रकार सब लोग चमक उठे और झटपट अपनी-अपनी जगह बैठ गये। सिंहासनकी दाहिनी ओर शठराय, करवटराय, दुष्टराय और दूसरे हुक्काम बैठे और फिर जागीरदार लोग बैठे। बायीं ओर बुद्धिधन और प्रमादधन बैठे। इनके पीछे नवीनचन्द्र बैठा। समरसेन नङ्गी तलवार लेकर सिंहासनके पीछे खड़ा हुआ। बुद्धिधनके साथ आये हुए मास्टर वग़ैरहःको जहाँ जगह मिली, वहीं बैठ गये। अमात्यसे पीछे राजाके भाई-बेटे बैठे। वे सब टेढ़ी पगड़ियाँ और सोनेके कामके चपकन पहने और कमरसे सोनेकी जड़ाऊ मूठोंकी तलवार लिये थे। सबके बैठ जानेपर अन्धकारको तोड़ती-फोड़ती, अपने तबलची सारँगिये सहित कलावती सिंहासनके सामने आकर बैठी। नींद आनेसे पहले जैसे आँखें घुलने लगती हैं, वैसेही सब खुली हुई आँखोंसे उन्हें देखने लगे। मानों यह सोनेका समय आ गया और विषय-वासनासे मनुष्योंके निर्बल मन कुत्सित होने लगे। सबकी नज़र कलावतीपर गिरकर ठहर गयी।

ऐसे समयमें केवल दो-तीन मनुष्योंकीही आँखें अन्य काम कर रही थीं। नवीनचन्द्र सबके मुखों और अकृतियोंका भाव देख रहा था ; सिंहासनकी ओटमें होकर जयशङ्कर बुद्धिधनके कानमें कुछ बातें कहने लगा और पीछेकी ओर मुँह फेरकर बुद्धिधन सुनने लगा। शठरायके पीछे बैठे हुए निर्भयरामकी आँख यह सब दृश्य देख रही थी।

जयशङ्करने कहा,—"दुष्टराय कलावतीके पोशाक बदलनेके कमरेमें घुसा था।"

शान्तिसे अमात्यने पूछा,—"क्या करने ?"

"सो ईश्वर जाने, पर कुछ छेड़छाड़ करता था।"

अनजान बनकर अमात्यने पूछा,—"क्या महलमें ?"

"हाँ, मैं और निर्भयराम उस समय राणाजीके पासही खड़े थे। निर्भयराम आजका अँग्रेजीका अख़बार पढ़कर सुना रहा था। उसी समय कलावतीके कमरेमें कुछ खड़पड़ हुई ; उसने पढ़ना छोड़कर तिरछी नज़रसे ज़रा उधर देखा।"

"फिर क्या हुआ ?"

"राणाजीने पूछा कि 'पढ़ते हुए रुके क्यों ? क्या देखा ?' निर्भयरामने 'कुछ नहीं' कहकर बात उड़ानी चाही, पर राणाजीने हठ किया और फिर निर्भय भाईको उधर देखता देखकर राणाजीने नज़र की।"

बुद्धिधन सब समझ गया, पर उसने अनजान बनकर पूछा,—"फिर राणाजीने क्या कहा ?"

"तलवारपर हाथ रखकर वे दाँत पीसते हुए दरवाज़ा खोलने दौड़े।"

"हैं ?"

"फिर निर्भयरामने पास जाकर उनका हाथ थामा, मुझे वहाँसे जानेका इशारा किया और राणाजीको शान्त किया।"

कुछ विचारकर बुद्धिधनने कहा,—"ठीक है"—फिर थोड़ी देरमें जयशंकरके कानमें कहा,—"जयशङ्कर! ऊपर जाकर खिड़कियोंमें बैठो और लीलापुरके रास्तेपर गाड़ी आती देखो, तो मुझसे कह जाओ। देखो, किसीको ख़बर न हो।"

"जो आज्ञा" कहकर जयशङ्कर चला गया। निर्भयरामको यह न मालूम हुआ, कि वह कहाँ गया, केवल उसने बाहर जाते उसकी पीठ देखी। अनन्तर उसने बुद्धिधनके शान्त और गम्भीर मुखको देखा; फिर कळावती और उसके साथवाली दो गणिकाओंको देखता हुआ शठराय और करवटरायसे इस विषयकी बातें करने लगा, कि उनमें सुन्दर कौन है।

इसी समय सिंहासनके पीछेवाला दरवाज़ा खुला और "घणी खमा महाराज" की आवाज़ दरबारमें भर गयी। सबकी आँखें सिंहासनकी तरफ़ झुक गयीं, राणाजीको देखतेही सारा मण्डल एकदम खड़ा हो गया; आस-पासवाले आइनोंमें और अन्तःकरणमें सभी खड़े होगये। दूसरेही क्षणमें दो हज़ार सिर झुक-झुककर सलामें करने लगे। मानो ये सालमें क्या थीं, सलामोंकी वर्षा थीं। हजारों हाथ ऊँचे-नीचे होरहे थे।

जरी और हीरा-मोती जड़े वस्त्र पहने, हीरोंसे जड़ी हुई मूठवाली तलवार लिये, मस्तकपर हीरोंसे जड़ा हुआ मुकुट धरे, राणाजी दिखावटी हँसी हँसता हुआ मुँह बनाये, छाती निकाले, दबदबेके साथ दरबारमें बैठा। तमाम दरबार शान्तिके साथ बैठ गया। सिंहासनके पीछे छड़ीदारों और चोपदारोंने तमाम जगह घेरली। एक ओर राणाके शरीर-रक्षककी हैसियतसे

सूरसेन नङ्गी तलवार लेकर खड़ा होगया। दरबारके समय इस प्रकारका बर्ताव करना, सुवर्णपुरका पुराना क़ायदा था। दूसरी ओर सुनहली छड़ी लेकर रणजीत खड़ा हुआ। वह पीछेकी ओर एक सुनहले पङ्खेसे हवा करने लगा। बीचमें गुलाब, केवड़ेके अतरसे भरी हुई सुनहरी और रुपहली अतरदानियाँ रखी गयीं। सबकी नेत्र-नासिका तृप्त होने लगीं। ताल सुर मिलाकर कलावतीने गाना शुरू किया,—

"भरने दे जल नीर। ना छेड़ो गारी दूँगी रे भरने दे जल नीर!"

गीतकी एक-एक तालमें, एक-एक नाज़में, एक-एक भावमें दरबार और दरबारका अन्तःकरण लीन हो जाता था। कलावती के गान और हाव-भाव-कटाक्षके साथ सबके हृदय चमक जाते और द्रवित हो उठते थे। उसके कण्ठसे निकले हुए स्वर सारङ्गीके साथ मिलकर सब हृदयोंमें समा जाते थे और बचे हुए भाव दीवानख़ानेकी सङ्गीन दीवारोंसे टकराते हुए, उस जड़ प्रासादको भी अपने रङ्गमें रँग रहे थे। सब दरबारी समाधिस्थ योगीकी तरह ध्यानमें लीन होगये। अन्तमें गीत ख़तम हुआ। फिर दूसरा पद शुरू किया,—

नैना कुसुम्बो, कुसुम्बो, कुसुम्बो रँग होगये,
कहूँ सैंया जागे सारी रैन, नैना कुसुम्बो रँग होगये।

जिस समय कलावती अपने मधुर सुरीले स्वरसे गारही थी, उसी समय जयशङ्कर आया और उसने बुद्धिधनके कानमें कुछ कहा। फिर वह चला गया। दोही मिनिटमें घोड़ोंकी टापें सुनाई दीं। पर सबका ध्यान उस ओर न गया था। इसी समय रसेल साहबका सरिश्तेदार रामचन्द्रराव अपने चपरासीके साथ दरबारमें दाख़िल हुआ। ज़रा देरके लिये गाना

बन्द हुआ और सबने रास्ता दिया। बुद्धिधन उठकर सरिश्तेदारको लेने गया और शठराय उससे खड़ा होकर मिला। राणाजीने बैठेही बैठे सलामका जवाब दिया और रामभाऊ अमात्यके पास जा बैठा।

मूछोंपर हाथ फेरता हुआ राणा कुछ सोच रहा था। सोच-सोचकर कलावतीकी ओर देखकर उसकी आँखें लाल होजाती थीं और वह मन-ही-मन उक्त गानके शब्दोंका अनुकरणकर रहा था। रामभाऊके आनेसे ज़रा देरके लिये सभीके ध्यानमें विघ्न हुआ। राणाजीने साहबकी राज़ी-खुशीके समाचार पूछे। शठरायने आनेका कारण पूछा। रामभाऊने कहा,—"दरबारसे उठकर कहूँगा।" इन बातोंका लाभ उठाकर कलावती अपना दूसरा वेश बनाने चली गयी। एक सिपाहीने रणजीतके कानमें कुछ कहा। रणजीतने दुष्टरायको एक ओर बुलाकर कहा,—"हुज़ूर! मैं नमकहराम हूँ या हलाल, सो तो सिवा मेरे परमेश्वरके और कोई नहीं जानता, पर आपको मालूम है, मेरुला कैसा है?"

"तुझसे हज़ार दरजे अच्छा है।"

"तो फिर लगे हाथ हुज़ूर इसे परख लेंगे। आपको दरबारमें पधारा हुआ समझ, घरमें जो कुछ होरहा है, सो मुझे मालूम है।"

गुस्सेसे फ़ौजदारने कहा,—"मैं सालेकी जीभ काट डालूँगा।"

"हुज़ूर! आध घण्टेका काम है। चुपचाप घर पधारो और जो कुछ है, सो आँखों देख लो। फिर जो मेरी झूठ निकले, तो हुज़ूरकी तलवार और मेरी गर्दन!"—कहकर रणजीत देखता रहा। दुष्टराय फिर अपनी जगहपर जाकर बैठा, पर उसका जी न लगा। उसके हृदयपर मानो घोर घटा छा गयी। अपनी स्त्री एक नीच गुलामके साथ आनन्द उड़ा

रही है, यह ख़याल आतेही उसका चेहरा ताँबेकी तरह लाल हो उठा। बार-बार उसके मनमें घर जाकर देखनेकी इच्छा होने लगी। अब वह सोचने लगा, कि दरबारमें ऐसा तो कोई काम हैही नहो, कि जिसमें मेरी आवश्यकता हो; बस, एकबार चलना चाहिये। बापके कानमें उसने घरमें किसीके बीमार होनेकी बात कही और चुपचाप वहाँसे सटक आया। सब सिपाही दरबार देखनेमें मस्त थे ; इसलिये फौजदार साहबको जाते हुए किसीने न देखा और कोई उसके साथ भी न जा सका ; वह अकेलाही गया।

कलावती पेसवाज बदलनेके लिये दूसरे कमरेमें गयी। इस अवसरपर दूसरी वेश्याएँ गाने लगीं ; यद्यपि कलावतीसे इनका गाना कहीं अच्छा था, पर दरबारियोंने कलावतीकीही तारीफ़ की। ठुमरी, दादरा, कव्वालीसे थोड़े समयतक गानका समा बँधा रहा। फिर बीच-बीचमें गड़बड़ करके दरबारियोंने उनका गाना बिगाड़ दिया। गानेवालियाँ इस अपमान और अन्यायको सहती थीं और पूरी कोशिश करती थीं, कि उनके गानेका असर महाराणा साहबपर हो।

बुद्धिधनने धीरेसे रामभाऊसे साहबका काग़ज़ ले लिया और उसे पढ़ा। शठरायने भी काग़ज़ माँगा; बुद्धिधनने रामभाऊको देदिया और कहा, कि हाथ लम्बा करके पहुँचा दीजिये। बीचमें राणाजीने काग़ज़ लेलिया और उसे पढ़कर शठरायको दिया। शठरायकी बग़लमें बैठे हुए करवटरायने तिरछे होकर उसे पढ़ा। जिस सेठपर करवटराय और शठरायने ज़ुल्म किया था और जिसके बाल-बच्चे भागकर लीलापुर साहबके पास पुकारने गये थे ; उसे प्रत्यक्ष देखने और मिलनेके लिये साहबने अपने

सरिश्तेदारको भेजा था—और पत्र द्वारा राणाजीको ताक़ीद की थी, कि वे सब तरहकी मदद रामभाऊको दें। काग़ज़ पढ़कर चुपचाप बातें होने लगीं। एक दूसरेको रास्ता सुझाने लगा। शठरायने पढ़कर काग़ज़ रामभाऊको लौटाया; फिर दुष्टरायकी खोज की; पर वह उस समयतक न आया था; पीछे बैठा हुआ निर्भयराम इसी विषयकी बातें कर रहा था। शठरायकी चालको वह ताड़ गया। निर्भयराम और अमात्यकी चार नज़रें हुईं। शठरायने चारों ओर देखा। वह यह काम करवटरायको देता, पर सब आपत्ति उसीपर थी; इसलिये उससे यह काम नहीं हो सकता था। अन्तमें निर्भयरामको देखा और कानमें कहा,—"दरबारमें राजूबाकी बात उठानी है, पर यह विघ्न आखड़ा हुआ। अब तुम खड़े हो जाओ। जाकर जेलरको ख़त लिखो, कि सेठको उसके घर पहुँचा दे और शाम-दामसे उसका राज़ीनामा लेकर भेज दे। यह काम दरबारके पूरे होते-होते होजाना चाहिये; बस, सेठका राज़ीनामा देखकर सरिश्तेदार ठण्डा हो जायेगा।"

"चिट्ठी किसके हाथ भेजूँ? क्या जयशङ्कर यह काम करेगा?"

"हाँ, उसे भेजदो। वह भी अपनाही आदमी है। और तुम भी अपने जानेकी जगह पहुँच जाना।"—सुनकर निर्भयराम चला। रामभाऊ इस खटपटको समझ गया। जब बुद्धिधन सरिश्तेदार था, तब रामभाऊ उसके नीचे काम करता था और प्रत्येक सरकारी मामलेमें वह गहरी बुद्धि रखनेसे उसका सदा सम्मान करता था। जब बुद्धिधनने सरिश्तेदारी छोड़ी, तब दो तीन उम्मेद्वार थे, पर बुद्धिधनने साहबसे रामभाऊकीही सिफ़ारिश की थी। शठराय एक दूसरे आदमीके पक्षमें था और छोटी अवस्था होनेके कारण रामभाऊको उसने कुछ भी न समझा था,

इस बातको रामभाऊ भूला न था। शठरायसे घूसका रुपया खाते रहनेपर भी, रामभाऊ इसकी ओर न था। बुद्धिधन यह सब समझता था और ऐसी नीतिसे चलता था, कि अपनी गरज बिना बताये उसीकी गरज इसके पास आती थी और वह पहलेके उपकारको याद करके कृतज्ञ हो जाता था। रसेल साहबके साथ जान-पहचान होनेके कारण, यह सरिश्तेदारपर भी दाब रखता था; दूसरे निःस्वार्थभावसे उसे साहबसे भी लाभ करवा देता था; यह भी उसके दबे रहनेका एक कारण था। दक्षिणी ब्राह्मण हवाको परखने वाला था, निर्भयरामके उठतेही यह सब कुछ ताड़ गया।

"दीवान साहब! जितनी देर दरबार हो, इतने मैं अपने एक खानगी कामसे हो आता हूं। फिर साहबका आज्ञा-पालन करनेके लिये लौटाता हूँ।"

"बहुत अच्छा।"

रामभाऊने बुद्धिधनके कानमें कहा,—"जेलकी देख-रेख कौन करता है?"

बुद्धिधनने कहा,—"तर्कप्रसाद।"

उठते-उठते रामभाऊने कहा,—"महाराणा साहब! इस समय आज्ञा चाहता हूँ। और ज़रा तर्कप्रसादको अपने साथ लिये जाता हूँ।"

शठराय और करवटराय यह सुनकर घबरा उठे। उनके मन-में होने लगा, कि बनियेको जीतेजी ज़मींदोज़ कर देते, तो अच्छा होता, क्योंकि फिर उसका पता न लगता। पर अब समय हाथ से निकल गया था; उक्त विचार अब पछतानेके कारणमात्र थे। "अब जो हो, सो होने दो। लगेगा सो देना पड़ेगा। क्या इस

सरिश्तेदारको पैसा बुरा लगता है ?" यही सोचकर वे निश्चिन्त हो रहे। शठरायने निश्चिन्तभाव धारण किया।

जब कुछ मनुष्योंके हृदयोंमें इस प्रकारका राजनैतिक चक्र घूम रहा था, तब नवीनचन्द्र मास्टरके साथ बातें कर रहा था। मास्टरने दीवानके साथ बैठे हुए, सब हुक्कामोंका परिचय कराया। सुवर्णपुर राज्य बीस ज़िलों या निज़ामतोंमें बँटा हुआ था और प्रत्येकमें नाज़िम, न्यायाधीश, फौजदार आदि थे। इसके अलावा और भी कुछ बड़े बड़े हुक्काम थे। हुक्कामोंके जो नाम थे, उनसे उनका काम नहीं समझा जा सकता था। जैसे फ़ौजदार कहानेवाले दुष्टरायके हाथमें राज्यके "पुलिस-कमिश्नर"का हक़ था। मास्टरने नवीनचन्द्रको एक-एककी सूरतें दिखाकर उनका हाल सुनाया,—"दीवानके बराबर बैठा हुआ करवटराय न्यायाधीश है। यह पन्द्रह सालसे इस कामपर है। जब इसका बाप मरा, तब वह एक कौड़ी नहीं छोड़ गया था, आज इसके पास पन्द्रह लाख नक़द हैं।"

"सो कैसे ?"

"सो सब यहाँ नही कहा जा सकता। उनके बराबर जो बैठे हैं, वे दुष्टरायके ससुर हैं। लड़कीसे इनका घर उजला हुआ है। बेटी देकर बदलेमें राजकी नौकरी पाना यहाँ अच्छा समझा जाता है। फिर सबसे अधिक उसीकी चढ़ आती है। अब धन भी हो गया है। धामाइकी पूजा अच्छी तरह करते हैं बुद्धिकी आवश्यकता परमात्माने इन्हें नहीं दी। तमाम राज की तहसील ये ही करते हैं।"

"उनके बराबर कौन है ?"

"उनका नाम सुनकर प्रजाके दिल हिल जाते हैं। ये दीवा

साहबके साले हैं। वे भी इस राज्यके सर्वज्ञ गिने जाते हैं। ये पहले पुलिसमें थे। वहाँ इन्होंने परस्त्री और परधनपर खूबही हाथ साफ़ किया; वस्किन साहब इससे बहुत नाराज हुए; तबसे और जो इनका घर मायासे भर देता है, उसकेही मुकद्दमेकी जीत होती है। जबसे अमात्य आये हैं, तबसे इन्हें चुङ्गी दी गयी है।"

"तब इनकी कोई नहीं सुनता है?"

"तुम यह क्या कहते हो? तुम्हारी शिकायत तुम्हारे बड़े भाई सुनेंगे? इतनी ताक़तही किसकी है, जो शिकायत करे।"

"पर चुङ्गीके काममें तो भूल जल्द पकड़ी जा सकती है।"

"नहीं, आपको अभी अनुभव नहीं है। दीवान साहबके रसोइयेको, यदि कल कहींका नाज़िम बना दिया जाये, तो वह उसी समयसे अक्लमन्दी गिनी जाने लगेगी। जो अक्लमन्द बिना दीवान साहबसे मिले कहीं घुस बैठे, तो उसमेंही अहलकार खोट निकाला करते हैं।"

"और यह निर्भयराम? इनके बारेमें मैं कुछ-कुछ जानता हूं; पर सन्तोषजनक रूपसे नहीं। अतः इनका इतिहास कहो।"

"अमात्यकी निन्दाही दीवान और इसकी मित्रताका कारण है और नीचसे नीच खुशामदही इनकी होशियारी है।"

"इतना करनेवाले तो बहुत होंगे।"

"हाँ, पर वस्किन साहबने इन्हे भेजा है, अतएव राणाका इनपर विश्वास है, इसलिये इसका सम्मान दीवान भी करता है।"

"ठीक है।"

बहुतसे हुक्कामोंका इसी प्रकार वर्णन हुआ। सर्वप्रसाद भी मास्टर साहबकी बातें सुन रहा था। उसे अचानक राम-भाऊके साथ जाना पड़ा; इसलिये सब चुप होगये। खड़े होते-

होते तर्कप्रसादने कहा,—"अब संक्षेपमें मेरा वर्णन सुनलो। जो फौजदारी क़ायदा नहीं समझता, वह मेरे पास आता है। ये सब जो भारी-भारी दुशाले ओढ़कर, इन्द्रसभाके देवोंकी तरह बैठे हैं और बड़ेही सभ्य जान पड़ते हैं; ये ऐसे घोर अपराधी हैं, कि कोई भी सुयोग्य विचारक सबको फाँसी या जीवनभरके काले पानीको भेज सकता है। पर धनके जोरसे सबके दुर्गुण ढके हैं और इन्होंने ग़रीब प्रजाको नसोंसे ख़ूब ख़ून निचोड़ा है। घूसखाना, चोरी करना, व्यभिचार, विश्वासघात और ख़ून इनके बाँयें हाथका खेल है। इतने सब अन्याय करते हुए भी प्रजाके रक्षक, भक्षक बनकर उसी प्रजाका न्याय करनेके लिये सबसे ऊँचे ओहदेपर बैठते हैं; ये सब कुछ करनेको तय्यार रहते हैं और धन तथा हुकूमतके ज़ोरसे सब कर डालते हैं। अच्छा, अब मैं जाता हूँ।"

तर्कप्रसाद हँसकर रामभाऊके साथ चला गया। नवीनचन्द्रका ध्यान दूसरी ओर गया। जैसे कोई मनुष्य किसी काली वस्तुको कपड़ेकी धज्जी समझकर उसके पास बैठ जाय, पर जब उसे ज्ञान हो, कि यह धज्जी नहीं, साँप है, तब उसके मनकी, जो दशा होती है, वही दशा इस समय नवीनचन्द्रके मनकी हुई। वेश्या इस समय भी हाव, भाव, कटाक्ष और लचककर, आगे बढ़कर, पीछे हटकर, इधर-उधर देखकर, दर्शकोंका मन खींचकर, अपनी आवाज़को गिराती, चढ़ाती, समपर लाती और आलापकर रही थी। सब कुछ देखता-सुनता और जानता हुआ नवीनचन्द्र दीवान और उसके अमलेको शकल देखने लगा। फिर इधर-उधर नज़र दौड़ाकर अन्तमें उसने बुद्धिधनके मुँहको देखा। मुँह देखतेही उसका हृदय दयासे भर आया। अलिफलैलाके अलादीनकी तरह वह अमात्यकी रक्षाके लिये जादूगरके उड़ाये हुए महलमें आया है।

इस समय कमरेसे निकलकर उसके साथ कलावती दूर ब मे आयी। दूसरी वेश्याओंका गाना बन्द हुआ, कलावतीका नाच शुरू हुआ। उसने अपनी कल्पनाके अनुसार इस समय वृन्दावनकी गोपीका वेश बनाया था। इसीसे उसने कुछ अर्द्धी माइल बढ़िया रेशमका बारीक लहँगा पहना था। चारों ओरकी कोर चौड़े सुनहले गोटेसे बड़ी भली मालूम होरही थी। उसकी प्रत्येक ठमकमें अथाह समुद्रमें हिलती हुई मछलियोंका भ्रम होता था, जो अपने अंग-प्रत्यंगको नचाती हुई पीछे हटती थीं। इतने कपड़े पहने रहनेपर भी उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग साफ़ दिखाई देते थे। सबकी दृष्टि उसपर जाती थी और केवल जब वह किसी भावको दिखानेके लिये ठहरती, उसी समय उसके वस्त्रोंकी प्रभा मालूम होती थी। लोगोंकी दृष्टि कपड़ोंके कारण रुकती न थी, बल्कि बादलोंपर पड़-कर क्षितिज तक जैसे चाँदनी फैल जाती है, वैसेही वस्त्रोंसे उसके अङ्गोंतक दृष्टि जा पहुँचती थी। हीरे-मोती जड़े उसके सोनेके गहने दमक उठते थे। उसकी काली और बड़ी-बड़ी आँखें सबकी दृष्टिके साथ मिलतीं और बिजलीकी तरह घूम जाती थीं। इस प्रकार उसके सभी सुन्दर अङ्ग-प्रत्यङ्ग नाचमें साथ देने लगे। स्थिर और शान्त आकाशमे जैसे बिजली इधरसे उधर घूमती है, या जैसे शान्त सरोवरमे चमकनेवाली छोटी मछली इधरसे उधर फिरती हो, बस, वैसेही कलावती उस शान्त राज-मण्डलमें अपने नाजुक गुलफोंसे ठुमका लगाती हुई नाच रही थी। सब बैठे थे, केवल वह अकेली समुद्रकी मन्द-मन्द लहरोंके समान घोष करती हुई आगे बढ़ और पातुरी चाल चल रही थी। सबके मन खिले हुए पुष्पोंके समान थे और उन्हें वह अपनी दृष्टि रूपी सुईसे छेदती और फिर भावके

डोरेमें उतारकर माला पूरी कर रही थी। वह बिना बोले हाथके इशारेसे समझा रही थी; हाव-भावमें प्रत्येक अंग अदृश्य होनेसे, वह दर्शकोंका मन और अपनी आः अधिक खींच लेता था, उसका घोर निर्दय हृदय ललचा हुआ मालूम होता था; उसके ओठोंपर प्यास और नेत्रोंमें मादकता थी। उसके पाँव रखने और उठनेसे मानो पृथ्वी-कम्पके समान सबके हृदय काँप उठते थे और रोम-रोम खिल जाता था। उस समय सब दर्शकों-को ऐसा मालूम होने लगा, मानो उनके हृदयोंमें उलटा श्वास भर रहा है—मानो वे सब जल रहे हैं। एक स्त्री सम्पूर्ण पुरुष-समाजको अपनी उँगलीके इशारेपर नचाने लगी। हाव-भाव दिखाकर उसने गाना शुरू किया :—

"बैंया छोड़ो जाने दो, मुझको, घनश्याम ॥
नीर भरन मैं भोरहि निकरी बीत गयी जुगजाम।
सास लड़ेगी, पिय पूछे गे, लोग करें बदनाम॥"

सब लोगोंके हृदय नाचने लगे; गानके रस, हाव और भावमें डूब गये। भूपसिंह भी सबके समानही देख रहे थे। पर अब वे अधीर जान पड़ने लगे। वे मनहीमन कहने लगे—"रांड! कल जाती हो, तो आजही जा।" अब उसने अन्तिम पद गाया,—

"विलय करो मत प्यारे मोहन। छैल छबीले श्याम!
अब जाने दो, अब जाने दो, शाम भई घनश्याम॥"

अब राणाजीसे बैठे न रहा गया; वे उठ खड़े हुए। सब सभा इस घटनासे आश्चर्य्यमें पड़ गयी। जिस दरवाज़ेसे राणाजी भीतर आये थे, अब उसीसे लौट गये। "घणी खमा अन्नदाता" की आवाज़से सारा दरबार गूंज उठा। उधर उठते हुए और आते-जाते लोगोंके शब्दोंमें किसीकी बात समझमें नहीं आती थी।

राणाजीके पीछे-पीछे शठराय और बुद्धिधन जैसे बड़े-बड़े हाकिम चले गये। भीड़में किसीको किसीका ख़याल न रहा। नाचती हुई कलावती सबके बीचमें खड़ी रह गयी। बहुतसे मनुष्योंने बिना देखे उसे धक्के भी मार दिये; बहुतोंने उसकी ओर देखकर सङ्कोचके साथ गरदन नीची कर ली। बुद्धिधनकी आँखसे दूर, किन्तु उसकी उँगली पकड़े हुए नवीनचन्द्र भी उसके साथ गया। संसारमें नित्य ऐसी कितनीही घटनाएं होती होंगी, ऐसा सोचता हुआ—अमात्य और अपने बीचमें आनेवालोंके धक्के खाता हुआ अमात्यके पराक्रमी भुजबलसे आगे बढ़ता हुआ नवीन-चन्द्र, दोनों मनुष्योंके उस बीहड़वनको पार कर रहे थे।

सब लोग सिंहासनके पीछेवाले दरवाज़ेसे सीढ़ियोंकी राहसे एक कमरेमें ठहरे। इस कमरेमें सौ डेढ़ सौ मनुष्य आ सकते थे। गचपर एक मोटा ग़लीचा बिछा था। छतपर बीच-में एक बड़ा झाड और बाक़ी चारों ओर हाँडियाँ लटकायी गयी थीं। जयपुरके बने हुए पुराने चित्र और संगमरमरकी मूर्तियाँ लगायी गयीं थीं; कुछ पुरानी चीन देशकी भी चित्रकारी थी। चारों ओरकी दीवार बनातसे मढ़ी थी। सफ़ेद पत्थरके टेबिलपर ग्रामोफ़ोन और उसके पासही बहुतसी गानेकी चूड़ियाँ पड़ी थीं। सामने दीवारपर महाराणा भूपसिंहकी क़द आदम तसवीर लटक रही थी। उसके चारों ओर कमख़्वाबकी झालर लटकायी गयी थी। बीचमें फ़र्शपर एक बड़ा ग़लीचा और बिछा था, जिसके सहारे मसनद लगी थी। भूपसिंह उसी मसनदके सहारे पैर फैलाकर बैठ गया और सोने चाँदीका बना जो एक गङ्गा-जमनी हुक्का आया—उसे पीने लगा। दूसरे हुक्काम चारों ओर अदबके साथ बैठ गये।

"महाराजके दुश्मनोंकी तबियत क्या कुछ अलील है?" शठरायने हाथ जोड़कर उक्त प्रश्न किया और उत्तरके लिये मानो वह बड़ा व्यग्र हो रहा है।

मुँहसे हुक्केकी नली निकालते-निकालते राणाजीने कहा,—"दीवानजी! यह क्या है!" फिर तकियेके सहारे बैठते हुए कहा,—"मुझे एकान्तकी आवश्यकता है।"

यह सुनतेही सब लोग खड़े होकर चल पड़े।

"दीवानजी! तुम ज़रा ठहरना।" शठराय जाता-जाता ठहर गया। अमात्यने सब कुछ देखते हुए—राणाको देखा, दोनोंकी आँखें, चार हुईं—अन्तमें शठरायको देखता-देखता वह बाहर चला आया। थोड़ी देरमें वहाँ राणा और शठरायके सिवाय और कोई न रहा।

"दीवानजी! इन काग़ज़ोंकी बात अब खोलना चाहता हूँ।"

"बहुत अच्छा,पर आपको ऐसा एकाएक क्या होगया था?"

"तुम्हें मालूम नहीं है, कि आदमीकी सहनशक्तिका भी अन्त होता है? मैं अपने मग़ज़में इस बातको कब तक छिपाये रखूँ?"

दीवान खुश हुआ। बोला—"सच बात है। कुछ न कुछ अवश्य होना चाहिये। हाय! हाय!! ऐसे विश्वासी आदमीको अपने महाराणाके साथ ऐसी घात करनी चाहिये थी?"

"पर सब कुछ तैयार तो है न? अब इसे प्रकट करके अपनी फ़जीहत करानेकी ज़रूरत नहीं है। तुम जाओ और अमात्यको भेजो।"

"सब कुछ तैयार है, बस एक निर्भयराम गया है, वह आजाये।"—कहकर शठराय उठा। राणा उसके मुँहको देखता

रहा। ऊपरसे बनावटी हमदर्दी दिखाता हुआ और मनमें प्रसन्न होता हुआ शठराय बाहर गया और थोड़ी देरमें अकेला बुद्धिधन भीतर आया। राणाके पास जाते हुए उसे कुछ भय हुआ—सन्देह हुआ; पर यह अनुभव बुद्धिधनको जन्मभरमें आजही हुआ था। इसे गुप्त रखकर उसने कृत्रिम गम्भीरता धारण की। उसने सोचा, कि शठरायकी बात अब किस तरीक़ेसे अपने पास आती है; बस, उसीसे सब फलाफल मालूम हो जायेगा।

जैसे रोकी हुई पानीकी धार, किसी छोटेसे कारणसे बड़े ज़ोरसे फूट पड़ती है, उसी तरह दरवाज़ा बन्द करके बुद्धिधनको भीतर आता देखकर राणाका भाव पलट गया और शठरायके साथ हुई बातें, न मालूम उसी वेगमें वह गयीं या राणाजीने उन्हें जान-बूझकर छिपा डाला; पर बुद्धिधनके आतेही उन्होंने कहा,—"बुद्धिधन! अब तुम अपने धैर्यको गहरे कुएमें फेंक दो। इस दरबारके पूरे होने तक भी धीरज नहीं बँधा; इसलिये अब मेरा मन मेरे हाथमें नहीं है।"

सामने चिन्तित मुखसे बैठते हुए अमात्यने कहा,—"क्यों? महाराणाजी! ऐसी क्या बात है?" उसके मनकी चिन्ताका कुछ औरही कारण था और इस समय उसे दिखाना कुछ औरही था।

"दुष्टराय मेरे महलमें कलावतीसे छेड़छाड़ करता था—मेरी आँखमें धूल झोंककर..... !"

"हैं! इतना साहस? मेरे महाराणाजी! मैंने पहलेही अर्ज़ किया था, कि वेश्या किसकी सगी होती है!"

"हाँ भाई हाँ, तुम्हारी भलाइयोंको मैं कहाँतक छिपाऊं? आजतक तुम्हारी कही हुई सैकड़ों बातें मेरे सामने जैसीकी तैसी आयीं, पर हमलोगोंके चित्तही ठिकाने नहीं हैं। मैं तो आज

दोनोंको ख़त्म कर डालता, पर निर्भयरामने मुझे रोक लिया—यह आदमी सचमुच तुम्हारा है या नहीं, मेरी समझमें तो यह कुछ भी नहीं आया—ख़ैर; दरबारमें बैठा हुआ मैं उस राँड़का गाना कबतक सुनता ? भाई बुद्धिधन ! अब मुझे इन दोनोंका सफ़ाया करना है—मेरी आँखोंमें ख़ून बरस रहा है—इसीलिये मैं दरबारसे चला आया। अब यदि तुम इसमें देर करोगे, तो मेरी और तुम्हारी नहीं बनेगी।" उठता-बैठता, कभी पैर सिकोड़ता, कभी हुक्का पीता, कभी उसे दूर हटाता हुआ राणा बुद्धिधनकी आशाका निमित्त बन गया। पर अभीतक बुद्धिधनको यह मालूम नहीं हुआ था, कि राणाने शठरायसे क्या बातें की हैं ?

"महाराणा साहब ! आप जिस उपायके लिये मुझसे कहते हैं, वह तो आपकेही पास है। मैं तो आपका इच्छाधीन सेवक हूँ।"

"हाँ, हाँ; पर करना क्या चाहिये ? दुष्टराय कहाँ भाग गया ?"

"शठराय बाहर इसी चिन्तामें है और दुष्टरायको बुलानेके लिये आदमीपर आदमी भेज रहा है।"

"ठीक है ; अब तुमने क्या सोचा ?"

बुद्धिधनको अभीतक राणाके पेटकी थाह न मिली थी। उसने कहा,—"महाराणा साहब ! रामभाऊ आया है और वह जो काग़ज़ लाया है, सो तो आपने पढ़ाही है। उसके पास और भी काग़ज़ हैं, उन्हें भी वह पेश करेगा। मुझे तो उम्मीद है, कि शठरायके विषकी दवा उनमेंसेही निकल आयेगी।"

"कैसे ?"

"मुझसे जो साहबकी बातें हुईं थीं, वे तो आपको मालूमही हैं। पर आजके काग़ज़ोंमें क्या लिखा हुआ है, वह मुझे अज्ञान रहनेपर भी आपकी इच्छा ज़रूर सफल होगी।"

"पर कलावतीका तो आज भण्डा फोड़नाही चाहिये और दुष्टरायका मुँह काला करके गधेपर चढ़ाना ठीक होगा।"

"तब, जब मैं आपको इशारा करूँ, तभी इस बातको छेड़ें।"

"पर आज ही होना चाहिये।"

इसी समय चोर दरवाज़ा खोलकर हाँफता-हाँफता महावीर आया। देखकर राणाजी नाराज़ हुए,—"महावीर! मालूम नहीं है, कि मैं अकेलेमें बैठा हूँ?"

"अन्नदाता! मुझे मालूम है और इसीलिये आया हूँ। हुज़ूर-की बात लोगोंमें होनेके बजाय अकेलेमेंहो हो, तो बहुत अच्छा है और हम राजभक्त सेवक भी यही चाहते हैं।"

बुद्धिधनने भयसे घूमकर देखा। महावीरके हाथमें काग़ज़ों-का एक बण्डल था। उसे महावीरने महाराणा साहबके पाँवोंपर डाल दिया और हाथ जोड़कर खड़ा रहा। राणाजी काग़ज़ पढ़ने लगे और क्रोधसे उनकी आँखें लाल होगयीं। बुद्धिधनने पूछा—"महावीर! ये किसके काग़ज़ हैं?"

"महाराज! जो चीज़ महाराणा साहबके पास हैं, उसके विषयमें मुझे कहनेका क्या अधिकार है? क्या आप अन्नदाताके विश्वासपात्र नहीं हैं?"

"ठीक है"—कहकर बुद्धिधनने महाराणा साहबकी ओर देखा। पाठक! इसी बण्डलमें राजबाके विषयके काग़ज़ थे।

महावीरने बुद्धिधनपर एक तिरस्कार-सूचक दृष्टि डाली। कुछ देरके लिये अमात्य चिन्तित हो रहा। राणाजीने सब पत्र बुद्धिधनके पास फेंक दिये।

"कैसा जाल! महावीर! तुझे फाँसीपर लटकवा देना चाहिये। दुष्ट! मेरे विश्वासी अमात्यपर ऐसा दोष लगाते हुए तुझे शरम

नही आयी ? तू ऐसी बेईमानी करके भी अभीतक जीवित खड़ा है ? क्या तूने यह समझ लिया है, कि राणा दूध पीनेवाला छोकरा है, जो तेरे ऐसे जालमें फँस जायेगा। मेरे प्यारे बुद्धिधन ! तुम इन कागज़ोंको देखकर ज़रा भी न घबराना।"

महावीरने हँसकर कहा,—"दीनानाथ ! ग़रीबकी पुकार छोटीसी आवाज़मेंही होती है। मेरी क्या मजाल है, जो हुजूरके सामने ऐसे झूठे कागज़ पेश करूँ ? अमात्य जैसे अन्नदाताके विश्वासपात्र हैं, वैसेही मुझपर भी इनके बहुतसे उपकार हैं। यदि अपने अन्नदाताके प्रति मैं अपने गहरे कर्तव्यधर्मको याद न रखता, तो हुजूरके सामने अपने दयालु उपकारी सज्जनका बदला इस प्रकार देनेको कभी तैयार न होता। इस काममें मैंने अपने मन और उसकी इच्छाओंको कितना रोका है, सो सर्वान्तर्यामी परमात्माके सिवाय और कोई नहीं जान सकता।"

बुद्धिधन महावीरकी ओर देखने लगा। उसने कहा,—"भाई महावीर ! तुम्हारी राजभक्ति कितने ऊँचे दरजेकी है, सो तो कहनेकी जरूरत नहीं। पर तुम्हारे हृदयने मेरे उपकार स्वीकार किये ; यह बेशक महत्वकी बात है। ख़ैर, अब उन उपकारोंकी बात जाने दो। अब तुम मुझे न्यायकी छायासे मत हटाओ, ये कागज़ मेरेही लिखे हैं और तुम्हारे पास इसका सच्चा प्रमाण है, तो अब उसे साबित करो।"

अमात्यके सामने देखनेसे मानो शरमके मारे उसकी पलकें झप गयीं। वह सिर नीचा करके उस शरमको हटा देनेकी शक्तिका आवाहन करने लगा और जब वह शक्ति आगयी, तब उसने अपनी नजर ऊँची उठायी। महावीरने कहा,—"जी हाँ, जब

अमात्यको ऐसा नीचसे नीच काम करते हुए शरम न आयी, तब खवासको उसे साबित करनेमें शरम क्यों आयेगी ?"

राणाजी ओंठ पीसते हुए महावीरको देख रहे थे ; अब वे गरजकर बोल उठे,—"हरामख़ोर ! बस कर। मुझे तेरे सुबूतोंकी ज़रूरत नहीं है। तू जो कुछ पेश करेगा, उसे भी मैं नही मानूँगा। कितना जुल्म ! जालसाज़ ! तेरा मुँह काला करूँ— शठराय—दीवान—!"

शठराय झटपट भीतर आया।

"पकड़ो इस बदमाश महावीराको ! क़ैद करो इसे। सौंपो इसे दुष्टरायको—कहाँ है दुष्टराय ?"

"अन्नदाता ! वह आता है।" कहता हुआ शठराय अमात्यके बराबर जा बैठा, और उसके कानमें पूछने लगा, कि बात क्या है !

"दीवानजी ! यह कैसा अन्धेर है ! यह तीन कौड़ीका पाजी हमारे अमात्यको कैसा दोष लगा रहा है ! कैसा दुष्ट है ! यदि दुष्टराय नहीं है, तो किसी सिपाहीको पुकारो। अरे— कौन है दरवाज़ेपर ?" राणाजीकी ग़ुस्सेसे भरी बातें सुनकर बाहरके कमरेमें सब हुक्कामोंके पेटमें पानी होगया था !

"अन्नदाता ! हाज़िर हूँ।" कहकर विजयसेन भीतर आया।

राणाकी आज्ञासे विजयसेन महावीरको घसीटकर बाहर लेगया।

बुद्धिधनने कहा,—"महाराणा साहब ! यह सन्तोषकी बात नहीं है। महावीरके पास जो सुबूत हों, वे पेश होने चाहिये। मैं जैसे हुज़ूरकी आँखोंमें निर्दोष हूँ, वैसेही संसारकी आँखोंमें भी होनेकी ज़रूरत है।"

शठरायने धैर्यसे कहा,—"सच्ची बात तो कहीं छिपती नहीं।

अब सुबूतोंसे क्या होगा, 'मुँह लगाई डोमनी गावे आल पताल।' नीचोंको मुँह चढ़ानेसे यही परिणाम निकलता है। इससे सुबूत माँगे जायँ, तो बस यह अपने मनमें फूल उठे और फिर न जाने क्या-क्या कहे और करे।"

"महाराणा साहब! मेरी भी प्रार्थना सुननी चाहिये।"

ज़रा स्वस्थ होकर राणाजीने कहा,—"बुद्धिधन! दीवानजी सच कह रहे हैं। महावीरको मैंने समझ-बूझकर धमकाया है। नीचको कभी ऊँचा नहीं बनना चाहिये। पर यह बात मेरे पास बहुतोंकी ज़बानी पहुँची है। मैं इसपर विश्वास नहीं करता। पर बुद्धिधन! मैं भी आदमी हूँ—आज न सही कल मेरे मनमें वहम उठ खड़ा हो सकता है। और यदि सचमुच ऐसाही हो, तो बहुत बुरा होगा। इसलिये जो कुछ तुम चाहते हो, वही मैं भी चाहता हूँ।"

"हुज़ूरका फर्माना ठीक है।" कहकर शठराय राणाके मुँहकी ओर देखने लगा।

"दीवानजी! तुम इस विषयकी जाँच-पड़ताल करनेका प्रबन्ध करो। इतनेमें मैं महलमें हो आता हूँ। रानीको भी इस विषयकी कुछ ख़बर है और अब मैं उससे विशेष बातें पूछूँगा।"

शठरायका प्रपञ्च देखकर बुद्धिधन तनिक भी नहीं घबराया। पर वह जानता था, कि महाराणा साहबका रानीपर बहुत विश्वास है—ऐसा न हो, कि मामला उलट जाये! इसी चिन्तासे वह घबरा उठा। राणा उठ खड़ा हुआ और जल्दीसे ज़नाने महलकी ओर बढ़ा। उसके दरवाज़ेको खोलतेही तोपके समान धड़ाकेकी आवाज़से महल हिल गया। नीचेकी पट्टियाँ



शठरायका षड्यन्त्र।

"तोपके समान धड़ाकेकी आवाजसे सारा महल हिल गया। दरवाजा चूर-चूर होगया"

[पृष्ठ—२१५]

Burman Press, Calcutta

और दरवाज़ा चूर-चूर होगया। राणा एक पैर पीछे हट आया। वह बाल-बाल बच गया। पीछेसे अमात्य और दीवान "हाँ हाँ! धणी खम्मा!" करके दौड़े। राणाजीके पाँवके नीचेकी ज़मीन फट गयी थी और उसमें एक खड्डा होगया था, उसी खड्डेमें राणाका पाँव फँस गया। बुद्धिधनने दोनों हाथोंसे जकड़कर राणाजीको सँभाला और दो-चार आदमियोंने उनके पैर निकाले। फिर उसे और खोदा, वह खड्डा बढ़ता गया और एक अन्धेरी सुरंगकी शक्लका होगया। इस असामयिक घटनासे बहुतसे लोग वहाँ इकट्ठे होगये और सब आश्चर्यके साथ एक दूसरेका मुँह ताकने लगे।

"धोका, धोका! कपट, कपट!" कहकर बुद्धिधनने राणाजी-को सँम्हालते हुए शोर किया। समरसेन, विजयसेन, प्रमादधन, जयशङ्कर, नवीचन्द्र और उनके साथमें आये हुए बहुतसे लोग अमात्य और राणाजीके चारों ओर आ पहुँचे। बुद्धिधनके आँखके इशारेको देखता हुआ नवीनचन्द्र सामने खड़ा रहा। समरसेन और विजयसेन नङ्गी तलवार लेकर राणाजीके दोनों ओर खड़े हो गये। चोपदार और सिपाही इधरसे उधर भागने-दौड़ने लगे। अनजान शठराय दुष्टरायको खोजने लगा, पर उसे वह न मिला, "तब वह क्या है!" करके राणाजीके चारों ओर घूमने लगा। करवटराय और दूसरे हुक्काम उसके आस-पास आज्ञाकी बाट जोहने लगे।

"अरे देखते क्या हो? यह जाल किसी महानीच राजद्रोहीका है! मेरे महाराणा साहब! परमेश्वर आपपर प्रसन्न रहें। विजयसेन! देखते क्या हो, कमर बाँधकर तलाश करो, यह क्या है? मेरे राणा साहब! आपको तक़लीफ़ तो नहीं हुई? अरे

इस खड्डेमें घुसो और इसे अच्छी तरहसे देखो। यह क्या बात हुई।" बुद्धिधनने घबराकर और दूसरे हाथसे विजयसेनको धक्का देकर उसे तलाश करनेके लिये कहा।

"क्यों, बुद्धिधन! ऐसे बावले क्यों बन गये! मेरे तो कहीं चोट नहीं लगी। देखो, इस खड्डेमें यह उजाला कैसा मालूम होता है?" कहकर भूपसिंह उस खड्डेमें उतरने लगा।

"नहीं, मेरे महाराणाजी! सुवर्णपुरके सौभाग्यसे आपको ऐसे जोखम-भरे काममें ज़रा भी हाथ डालनेकी ज़रूरत नहीं है। आप यहीं खड़े रहें; हम तलाश करनेवाले बहुत हैं। चलो दीवान जी!" कहकर बुद्धिधन उस खड्डेमें उतर गया एवं उसके पीछे और भी लोग उतरने लगे। शठराय चिन्तित होकर विचार करने लगा।

भूपसिंहको बुद्धिधनकी राजभक्तिपर बड़ा अभिमान हुआ। वह शठरायकी ओर शङ्कित दृष्टिसे देखने लगा। समरसेन और विजयसेन आदि कितनेही अफ़सर मज़दूरोंकी तरह काम करने लगे। हाथोंहाथ मिट्टी दूर हटा दी गयी। टूटी हुई पट्टियोंके चूरेको एक ओर हटाकर सब भीतर उतरे। भीतर जानेपर वहाँ एक गली या सुरंगके समान रास्ता दिखाई दिया। अब सबने झुककर देखा, तो उसमें जमालख़ाँ जलती हुई मसाल लिये और रणजीत नङ्गी तलवार लिये खड़े दीखे। एकदम "पकडो, पकड़ो" की आवाज़से महल गूँज उठा। चोपदारों और हलकारोंने दोनोंको घसीट-कर बाहर निकाला। उनके मुँह देखकर किसीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। सब उनके पीटनेमें लग गये; दूसरे लोग सोचने लगे, कि जमाल यहाँ कहाँसे आया! जमालको देखकर शठरायका मुँह उतर गया और वह आश्चर्य और खेदमें पड़ गया;

आँखें नीची करके बुद्धिधन उसे देखने लगा और मन-ही-मन प्रसन्न होने लगा। राणाजी जमालको अच्छी तरह जानते और पहचानते थे। शठराय सोचने लगा, कि 'अब मैं इसका क्या जवाब दूँगा। और मैं चाहे जो जवाब दूँ, पर राणाजीकी दिलजमई तो न होगी। राणाके क्रोधका परिणाम क्या होगा, उसका फल क्या होगा? पहले काफ़ी खोज करनेपर भी जमालका पता न लगा था और आज कहाँसे, किसके कहनेसे और किस कामके लिये यह यहाँ निकल आया? दुष्टराय अबतक नहीं आया। इन सब घटनाओंसे रामभाऊवाली घटनाका तो कोई सम्बन्ध नहीं है? मेरी समझमें इन सब घटनाओंका सूत्रधार अमात्यही होगा— अन्यथा और कौन होसकता है?' ऐसे-ऐसे विचारोंमें सुवर्णपुरका पुराना दीवान क्षितिजसे बाहर और किसी ज्योतिके प्रकाशमें, अपने भाग्यके किवाड़ोंकी साँकल उतारनेके लिये खड़ा हुआ—किंकर्त्तव्य विमूढ़सा हो रहा। वह एकटक दृष्टिसे अमात्यको देखने लगा और उसका मुख, जैसे सूर्योदयसे चन्द्रमाकी ज्योति मलिन हो जाती है, वैसाही विवर्ण हो गया। उसकी सतर्कता जाती रही; याद भूल गयी; अमङ्गलकी आशङ्का और भय चित्तपर सवार हो गये; उस समय उसने अपने स्वार्थी मण्डलके एक भी मनुष्यको न देखा। संसारको आँखोंमें आनेसे पहले उसका भविष्य उसेही मालूम हो गया। बुद्धिके साथही धैर्य चला गया और कल्पनापर काला पर्दा गिर गया एवं उसमें केवल कुछ भूत नाचते हुए दीखने लगे। मानो वह एक श्मशानमें खड़ा है और उसके पहलेके पाप विकट सूरतें बनाकर नाच रहे हैं। वह समझता था, कि राणाजीने जो विजयसेनके हाथ महावीरको पकड़वा दिया, वह बुद्धिधनकी छलोंकी बात

थी, पर अब उसे वह भी सत्य मालूम होने लगी। वह अपने मित्रोंका विचार करके कुछ धैर्य धरने लगा, पर उसके चित्तका भय नहीं हटा। उसे कोई निर्विघ्न मार्ग नहीं सूझता था। उसे सब सम्पत्तिका नाश निकट आनेपर भी अकेले दुष्टरायको याद आने लगी। शरीरका रुधिर गर्म होनेपर भी उसे शीत मालूम होने लगा। उस समय बुद्धिधनकी बुद्धि पानीमें घोड़ेकी तरह तैर रही थी और शठराय थके हुए बैलकी तरह एक कुरसीपर बैठ गया था। उसे आस-पासके सब मनुष्य कठपुतलियोंकी तरह दिखाई देरहे थे। जिस दीवानकी प्रपंच-बुद्धि तमाम राज्य भरमें अनुभवी, शीघ्र, तीव्र, कार्यग्राही, राणा और जागीरदारोंको वशमें करनेवाली और विजयी कहाती थी, वही सारी सुध-बुध भूलकर बालककी तरह, वृद्धकी भाँति और नपुंसककी नाईं शून्य मति और साधन-हीन होकर कुरसीपर हाथ-पर हाथ रख बैठ रहा। इस समय वही शठराय था, वेही साधन थे, पर उसे सब व्यर्थसे मालूम होने लगे!

"काबा लूटी गोपिका, वहि अर्जुन वहि बाण।"

नवीनचन्द्र यह सब तमाशा देख रहा था; वह दीवानकी चाल कुछ-कुछ समझ रहा था, पर जमालको देखकर उसे भी आश्चर्य हुआ। उसे मानो अपना गया हुआ होश आगया। उसने टूटी-फूटी बहुतसी बातें सुनी थीं, किन्तु जमालको देखतेही मानों वे सब जाग उठीं। वह इस राजनैतिक युद्धके बहुतसे कारण समझ गया और उसे विश्वास हो गया, कि मुझे जो कार्य सौंपा गया है, उसका अवसर अब न आयेगा। शठरायकी कल्पना और कार्यप्रणाली तो बुद्धिधननेही उससे कही थी। वह कार्य-प्रणाली कैसी थी और उसका परिणाम क्या होता, यह

सोचते-सोचते नवीनचन्द्रको शठराय बड़ाही नीच पुरुष मालूम हुआ। उसने मन-ही-मन कहा,—

"दुख-दर्द कुछ समझा नहीं, सहृदय न बन करही जिया।
धिक्कार है, केवल भला जिसने सदा अपना किया !!"

फिर उसे अपने इस बोलनेपर आश्चर्य मालूम हुआ ; इससे उसे कुछ हँसी भी आ गयी। पहले दिन कुमुदसुन्दरी वनलीला-को 'रुक्मिणी-परिणय'मेंसे यह पद्य सुना रही थी; इस समय भी वही याद आ गया। साथही कुमुदसुन्दरी भी याद आ गयी। फिर अलककिशोरी और जमालकी वह घटना स्मरण हो आयी। वह सोचने लगा,—'क्या उस घटनाकाही यह परिणाम है? कैसी विलक्षण बुद्धि है—क्या बात है!' अपने घरकी इज़्ज़त बचे और दोषीको दण्ड भी मिले, यह रास्ता बुद्धिधनने कितना अच्छा खोजा है! जमाल! यदि तूने वह काण्ड न रचा होता, तो मुझे इतना अनुभव न प्राप्त हो सकता था और इस घटनाके साथही शठरायकी हानिका भी पूरा सम्बन्ध है। बुराईमेंसे अच्छा नतीजा निकालना—विपत्तिको सम्पत्तिका कारण बना देना,—बिना पढ़े-लिखे बुद्धिधनको कहाँसे आता है? आश्चर्य है!!' इस प्रकार विचारोंकी यह नदी बहती-बहती फिर आगेका दृश्य देखनेमें लीन हो गयी।

जमाल और रणजीतको मारने-पीटनेमे तमाम राजभक्त और चापलूस-समाज एक मत और मन-वचन-कर्मसे जुट गया। अन्तमें खुद राणाजीनेही उन्हें रोका।

बुद्धिधन,—"समरसेन! तुम और आदमियोंको साथ लेकर इस तमाम सुरंगको अच्छीतरहसे देख डालो और इसका दूसरा रास्ता कहाँ है, सो जल्द मालूम करो। महाराणा साहब!

जमाल और रणजीतको विजयसेनके हवाले कर दीजिये। इनकी तमाम बातें गुप्त रूपसे मालूम की जायेंगी। क्यों, दीवान साहब ?", यह कह बुद्धिधनने चारों ओर नज़र पसार कर देखा।

सब लोगोंके पीछे, कोनेमें बैठे हुए शठरायने जवाब दिया—"हाँ साहब।"

शठरायकी आवाज़ सुनकर राणाने कहा,—"आइये दीवान जी! पीछे कैसे बैठे हैं? तबियत कैसी है?" बीचमें खड़े हुए सब लोग इधर-उधर सरक गये और राणासे शठरायके बीचतक एक पतली गलीसी बन गयी। राणाने शठरायकी ओर दो-चार क़दम बढ़ाये। अब सबके हृदयोंमें शठरायकी दशापर शङ्का होने लगी; जबसे उसने जमालकी सूरत देखी थी, तभीसे उसके चेहरे-पर हवाइयाँ उड रही थीं। अन्तमें शठराय खड़ा हुआ और नीची दृष्टि किये हुए धीरे-धीरे पाँव उठाता हुआ राणाजीकी ओर बढ़ा। उसे उठनेमें बहुत अधिक समय न लगा था, चलनेमें भी बहुत मन्दता न थी और उसके मुखकी कान्ति भी बहुत नहीं बिगड़ी थी। पर उसकी रोज़की चपलता और आजका भाव देखकर सबको शङ्का होने लगी और ऐसा मालूम होता था, मानो राणाजी उसका तिरस्कार कर रहे हैं। सीना उभार और अपने लम्बे हाथोंसे दीवानका हाथ पकड़कर राणाने कहा,—"मेरे अनुभवी और राजभक्त दीवान! आज मुझे तुम्हारी सहायताकी आवश्यकता है। तुम जानते हो, कि अब अपने पुराने विश्वासयोग्य मनुष्योंपर (बुद्धिधनकी ओर देखकर) विश्वास रखनेका ज़माना नहीं है। ऐसे समयमें यदि तुम्हीं घबरा जाओगे, तो काम कैसे चलेगा? देखो, इस षड्यन्त्रका मतलब निकालो; बुलाओ दुष्टरायको।" दीवानका हाथ अपने हाथमें लिये

हुए राणाजी उसे बाज़ या गरुड़के समान तीखी नज़रसे देखते रहे।

मूँछोंपर हाथ फेरते हुए राणाजीने फिर कहा,—"अहा! अपने विश्वस्त मंत्रियोंकी परीक्षा ऐसेही मौक़ोंपर होती है—उनकी असली क़ीमत इसी प्रकार जानी जाती है।"

राणाका एक-एक शब्द दीवानके दिलको जलाने लगा; एक-एक अक्षर उसके हृदयमें विषधर सर्पके समान काटने लगा; उसे मालूम होने लगा, कि आकाश और पृथ्वी एकही चीज़ है। उसे उन मनुष्योंमें एक भी अपना न दीखा; अन्तमें एक उसका आदमी निकल आया।

निर्भयराम सबसे पीछे आया था और करवटरायके कानमें उसने कोई बड़ी लम्बी कहानी सुनायी थी। वह बात पूरी भी न होने पायी थी, कि उसकी नज़र अपने भाईपर पड़ी; वह चटपट उसके पास पहुँचा।

करवटराय अपने भाईकी तरह जालसाज़ और फ़रेबी न था, वह कुछ कुछ मूर्ख था। देखनेमें बड़े लम्बे और पूरे क़दका आदमी था। शठरायके चेहरेपर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं, बाल आधे सफ़ेद हो चुके थे; पर करवटराय देखनेमें अभी भरे हुए बदनका जवान मालूम होता था। उसकी बड़ी और लम्बी-लम्बी मूँछें कुछ-कुछ सफ़ेद होने लगी थीं, जिनमें ख़ूब पक्का ख़िज़ाब लगाया जाता था। उसकी हिम्मत बड़े भाईसे कहीं अधिक थी और उसका मन अविचारी और हठी था; इसलिये दुःख सहनेकी शक्ति भी उसीमें अधिक थी। दयाने कभी उसकी आँखोंका स्पर्श न किया था और बुद्धिने सत्य और न्यायकी कभी परवा न की थी। इतना होनेपर भी वह अपने कुटुम्बको प्रेम करता

था। अतः इस समय अपने भाईकी वैसी दशा देखकर उसका हृदय भर आया। सब दर्शकोंके जितने विचार हुए थे, उतनेही इसके भी हुए थे, इसपर अपनी मर्दानगीसे उसने सोचा, कि राणा नाराज़ होंगे, तो क्या होगा? इसलिये वह झट भाईके पास आखड़ा हुआ और पहले भाईकी ओर फिर राणाजीकी ओर देखकर बोला,—"महाप्रतापी महाराणा साहब! इस राजनैतिक विद्रोहका पता पुलिस बातकी बातमें लगा लेगी और दोषियोंको सज़ा मिलेगी। आपके प्रबल प्रतापसे सब आपत्तिके बादल छिन्न-भिन्न हुए जाते हैं। सुवर्णपुरके महाराणाके शत्रु नाश होंगे और निश्चय होंगे।"

भाईको देखकर दीवान भी खखारकर बोल उठा,—"निस्सन्देह ऐसाही होगा।"

"अच्छा बुलाओ दुष्टरायको। बुद्धिधन! याद रखना दीवानजी जैसा कह रहे हैं, राणाके शत्रु अवश्य नष्ट होंगे।" तिरछी आँखोंसे दीवानको देखता हुआ राणा हँसा!

मुस्कराते हुए अमात्यने कहा,—"महाराज! आप तो कह रहे हैं, पर मैं तो समझ रहा हूँ, कि शत्रु नष्ट होनेहीवाले हैं।"

"दुष्टराय कहाँ है? बुद्धिधन! इस बातको याद रखना, कि राजाओंके सामने कही हुई बात, किये हुए कामोंसे भी अधिक दृढ़ होती है।"

"निस्सन्देह।"

राणाजीकी इन बातोंसे सबका अचम्भा बढ़ रहा था। फरवटराय यह समझकर होशियार हो रहा था, कि राणाजी अभी राजद्रोहका प्रकरण छेड़नेवाले हैं। शठरायने इससे बिल्कुल विपरीत समझा; उसके पैर काँपने लगे; बुद्धिधनकी ओर वह

गहरे वैरकी दृष्टिसे देखने लगा। राणा और अमात्यकी कठोर बातें उसके हृदयपर बाण छोड़ने लगी।

किसी विचारके एकाएक उदय होनेसे होशियारीके साथ दीवानने कहा,—“महाराणा साहब! इस समय बातोंकी अपेक्षा काम करनेकी अधिक आवश्यकता है। अब इसका मूल कारण खोज निकालना चाहिये। हम दोनों भाइयोंको आप इसकी शीघ्र आज्ञा प्रदान करें, कि हम जाकर इसकी खोज करें। बुद्धिधन! आप भी साथ चलें, इसमें आपकी भी आवश्यकता होगी।” उसने सोचा, कि इस समय राणाके पञ्जेसे निकल जाना चाहिये और इसे निर्भयराम और कलावतीके हाथ सौंप देना चाहिये। यदि सब भेद फूटही गया हो, तो राणाको भी इस संसारसे विदा करना ठीक होगा और यदि यह अशक्य हो तो, धन-जन लेकर यहाँसे भाग जानाही ठीक होगा। ऐसे अवसरपर अमात्यको भी राणाके पास न रहने देना अच्छा काम देगा। किन्तु ऐसी भूलका फ़ायदा राणाजी नहीं उठाने देना चाहते थे; इतनी बुद्धि उनमें अवश्य थी।

“नहीं, दीवान जी! मैं अभी तुम्हें छुट्टी नहीं दे सकता। इस घटनासे मैं बहुत अस्वस्थ होगया हूँ और उसका समाधान करनेके लिये तुम यहीं रहो।”

दीवानका अन्तिम पासा अबभी औंधाही गिरा। वह निराश हो गया।

“दुष्टरायको बुलाओ, दीवानजी! तुम यह बात सुनते क्यों नहीं?”

शठरायके कोई बात बनानेसे पहलेही करवटरायबोल उठा,—“महाराजजी! ये निर्भयराम अभी घरसे आये हैं, इन्होंने समा-

चार दिया है, कि उसकी शरीरिक दशा इस समय आने योग्य नहीं है।"

"है! उन्हें क्या हुआ? अभी तो वे दरबारमें ही थे! क्या घरमें भी धोका हो गया है?"

"हाँ, महाराज कुछ ऐसोही बात है।" शठराय और सब लोग चमक उठे।

"यह क्या? क्या निर्भयराम?"

"अन्नदाता क्षमा करें, मेरी ज़बान उसे नहीं कह सकती।"

"क्या मेरी आज्ञाका तुम पालन न करोगे?"

"अन्नदाता! कहनेवाला यह हाज़िर है।" घायल मेरुला अपने हाथपर पट्टी बाँधे रोता हुआ राणाजीके पावोंपर गिर पड़ा।

"अन्याय! अन्याय!! महाराणा साहब! आपके राज्यमें अन्याय!! दुहाई महाराणाजी की।"—कहकर मेरुला पुकार उठा। सिपाही आकर उसे उठाने लगे। दुष्टरायके कृपापात्रको सिपाही आश्वासन देने लगे।

इसी समय खड्डेमें फिर कुछ गड़बड़ सुनाई दी; सबका ध्यान उस ओर गया; थोड़ी देर में राधा, नीचदास और खोड़ाको अपने आगे किये हुए समरसेन सुरङ्गसे निकला।

अब सबका ध्यान उन्हींकी ओर खिंच गया। करवटरायने भी अपने भाग्यके पलड़ेको उठा हुआ देख लिया। यद्यपि निर्भयरामके द्वारा घरके समाचार सुनकर उसका मन ढीला पड़ गया था, तथापि राणाजीके साथ बातें करनेके लिये उसने इधर-उधरसे कुछ हिम्मत इकट्ठी कर ली थी। पर अब मेरुलाको देखकर वह हिम्मत भी काफूर हो गयी! दूसरी ओर समरसेनके साथ उन सबको देखकर उसका भय और भी बढ़ गया!

दुष्टराय जब अकेला घर गया, तब दरवाज़ेपर दो-तीन सिपाही हुक्का पीकर बातें कर रहे थे। वह चुपचाप भीतर पहुँचा, तो दरवाज़ा बन्द पाया, आख़िर दूसरे रास्तेसे ऊपरवाले कमरेमें चढ़ गया, वहाँसे खिड़कीसे सिर निकालकर चाँदनीमें उसने जो कुछ देखा, उससे उसकी आखें फटीकी फटी रह गयीं। मेरुला शानसे गद्दीपर बैठा था और रूपानी तथा अलकनन्दा उसकी बग़लमें थीं। तलवार लेकर दुष्टराय भीतरकी सीढ़ियोंसे नीचे उतरा। दुष्टराय क्रोधसे अन्धा हो रहा था और उसने तलवार म्यानसे बाहर निकाल ली थी। तलवारका पहला वार मेरुलाके हाथपर हुआ। पर चोट हलकी लगी। दूसरी वार मेरुला उछलकर दूर जा खड़ा हुआ और शम छोड़कर मालिकके साथ लड़ने लगा। एकही झटकेमें उसने दुष्टरायकी तलवार छीन ली। दुष्टरायने ज़ोरसे सिपाहियोंको पुकारा ; सिपाही भीतर पहुँचे ; पर इससे पहलेही दुष्टरायपर बड़े ज़ोरसे आघात करके मेरुला मकानकी पिछली खिड़कीसे निकल भागा था। भागते समय वह तलवार रूपानीकी ओर फेंक गया और कहता गया, कि "अब मरवाना या बचाना तेरे ही हाथ है।"

तलवार एक कोनेमें जा पड़ी। दुष्टरायके शरीरसे बहुतसा ख़ून निकल गया था और वह कमज़ोर होकर गिर पड़ा था। रूपानीने अपनी चूड़ियाँ तोड़ डालीं और छाती कूटने लगी। दुष्टरायमें बोलनेकी शक्ति न थी। सिपाहियोंने रूपानीको पकड़नेका विचार किया ; पर हिम्मत न पड़ी। अन्तमें सब दरवाज़े बन्दकर उन्होंने रूपानीसे कहा,—"दीवानजीके आनेपर तुम्हारी सारी कारवाई उनसे कही जायेगी और इतने तुम्हें हम यहाँसे न जाने देंगे।" उन्हें धमकाकर रूपानी ऊपरके कमरेमें गयी और वहाँसे

पुरुषका वेश बनाकर बराबरवाले घरकी छतपर उतरी तथा उसके सदर दरवाज़ेसे रास्ते और गलियोंमें निकल गयी। कई गलियोंके चक्कर काटकर वह मेरुलाके घर पहुँची। घरपर उस समय मेरुलाका भाई था, उसने बातोंही बातोंमें उसे सब कुछ समझा दिया ; अन्तमें उसे मेरुलाकी खोज करने भेजा।

अपने भाईकी उक्त दशा खलकनन्दाने ऊपरवाले कमरेकी जालीसे देखी और अनजान बनकर वह सोनेका बहाना किये मसहरीपर लेट गयी।

शठरायने जब निर्भयरामको दरबारमें एक काम सौंपा था और उसे शीघ्र पूरा करके लौट आनेको कहा था, तब वह बाहर आकर उस कामके लिये नहीं गया ; बल्कि दुष्टरायके परिणामको जाननेके लिये दीवानके घरकी ओर चला ; रास्तेमें उसे घबराया हुआ मेरुला मिला; उसने उसे ठहराकर सारी बातें सुन लीं और अन्तमें उसे आश्वासन देकर कहा,—"तू ऐसेका ऐसाही दरबारमें चला जा और राणाजीसे दुष्टरायकी शिकायत कर—दीवानका सितारा डूबनेवाला है, इस लिये डरे मत; पर यदि चुपचाप घरमें बैठ जायेगा, तो पीछे मारा जायेगा।" उसने यह भी सिखा दिया, कि दरबारमें किस प्रकार राणाजीसे बातें करनी होंगी। मेरुलाने कहा,—"मैं अपने घर जाकर पीछे दरबारमें जाऊँगा। क्योंकि, दुष्टरायके सिवा मुझे और किसीने नहीं देखा, सो वह मर गया होगा और जिसने देखा है, वह कहेगा नहीं ; अब जाऊँ, अपने भाईको होशियार कर आऊँ।" रास्तेमें भाई मिल गया। दोनों घर गये ; घर जाकर उसने अपने भाईके साथ रूपानीको रवाना कर दिया और आप अकेला दरबारमें गया। जब निर्भयराम जेलकी ओर चला, तब उसे मालूम हुआ,

कि रामभाऊ और तर्कप्रसाद पहलेही गाड़ीमें बैठकर वहाँ जा पहुँचे हैं। अब निर्भयराम रामभाऊसे मिला। रामभाऊने उस सेठको क़ैदीकी हालतमें देखा और सब नोट कर लिया। यह सब कर-कराके निर्भयराम जल्दी-जल्दी दरबारमें लौटा। उस समय राणाजी शठरायसे बातें कर रहे थे; इसलिये निर्भयरामने करवटरायको सब समाचार सुनाये। उसने यह बात भी कह दी, कि मुझे घायल रूपमें मेरुला मिला था और वह दरबारमें शठरायके ख़िलाफ़ अर्ज़ करने आयेगा। उसने मेरुलाके घायल होनेका सबब भी कह सुनाया—कुटुम्बकी बेइज़्ज़ती होती देखकर, करवटरायको बड़ा दुःख हुआ। शरमके मारे करवटराय दरबारमें असल बात नहीं कह सकता था, तिसपर मेरुला उलटा दावा करने जा पहुँचा! यानी "उल्टा चोर कोतवालको डाँटे" वाली कहावत चरितार्थ हुई! और दुष्टरायके घायल होनेकी बात निर्भयरामने भी न बतायी।

हाँ, तो घायल मेरुलाको देखकर सब चमक उठे और इसका कारण पूछा। शठराय इन कारणोंमेंसे एक भी न जानता था; वह समझता था, कि यह अपनाही आदमी है; इसलिये वह इसे उठाने लगा।

"दीवानजी! अब आप मेरी रक्षा नहीं कर सकते। अब आपके ख़िलाफ़ही मेरी अर्ज़ है।"

शठराय चमककर एक पैर पीछे हट गया।

"महाराणाजी! मैंने दीवानजीका नमक खाया है। उन्हींके घरवालोंके ख़िलाफ़ मुझे फ़र्याद न करनी चाहिये। पर मुझे फ़ौजदार साहबकी राजदरबार सम्बन्धी कुछ गुप्त बातें मालूम होगयी थीं,—जब उन्हें यह हाल मालूम हुआ, तब वे

मुझपर विगड़ पड़े और उन्होंने मुझे जानसे मारनेके लिये वार किया। यदि मैं भाग न आता, तो अबतक जीता न बचता। अन्नदाता! मुझे अब अपने घरमें जाते डर लगता है; इसलिये यहाँ आया हूँ।"

राणाजीने पूछा,—"वह राजदरबारकी गुप्त बातें कौनसी हैं?"

"हाय अन्नदाताजी! क्या वे बातें भी आपसे कहनेकी हैं? भारी षड़यन्त्र है! मुझे इन्होंने जितना नीच समझा था, उतना मैं नहीं निकला। मैं हुजूरसे इतनाही चाहता हूँ, कि जबतक मेरी अर्ज़का निपटारा न होजाये या अभय न मिल जाये, तबतक अन्न-दाता मेरी रक्षा करें। दीवानजी या फ़ौजदारजीके सिपाही मुझे न सतायें।"

"अरे! वह षड्यन्त्र क्या है? हमें कैसे मालूम हो, कि तू सच्चा है या झूठा? जो कुछ पूछा है, उसका जवाब दे?"

"जो हुक्म अन्नदाता! पर अकेले हुजूरसे कहूँगा।" यह कह कर मेरुलाने भय-भरी दृष्टिसे शठरायको देखा।

"तू जो कुछ भी कहेगा, उसके सुननेका सबको हक़ है। और जो झूठ बोला, तो मारा जायेगा।"

"हाय! यह तो मेरेही सिर पड़ी। दीवानजी! माफ़ करना। मैं क्या करूँ, अब कहनाही पड़ता है। अन्नदाताजी! आपके बाग़में जो तालाब है, वहाँसे महारानी साहबाके महलतक दीवान जीने एक सुरङ्ग खुदवायी है—बस, इसीकी मुझे ख़बर मिल गयी थी;—हाय दीवानजी! मैं तो तुम्हारे डरसे काँप रहा हूं, पर यह जमालभी तो यहीं खड़ा है। बस अन्नदाताजी! जमालको सब कुछ मालूम है; मुझसे ज़ियादा इसे मालूम है। अब मुझे निर्भय करके जानेकी आज्ञा दें?"

"हरामखोर कहींका। विजयसेन! इसे लेजाओ।"

"अन्नदाता! यदि अर्ज़ करनेमेंही सजा होती हो,तो मैं आगेसे कभी ऐसा नहीं करूँगा। आप प्रजाके मा-बाप हैं। मुझे अपने घर जानेकी आज्ञा दें—आपके क़ैदखानेसे मेरा घर अच्छा है। मैंने ऐसा कोई अपराध नहीं किया, जिससे मैं क़ैद होऊँ।"

बोलनेमें मेरुलाकी हिम्मतको बढ़ा-चढ़ा देखकर राणाजीको कुछ अचम्भा हुआ। अन्तमें उन्होंने कहा,—"अच्छा जा, अपने घर। विजयसेन! इसे जाने दो और तुम इसकी बातकी पूरी परताल करो।" मेरुला सलाम करके चला गया।

"देखा दीवानजी! नौकर कैसे नमक हराम होते हैं? घर या राज्यमें विश्वासी आदमी रखने चाहियें, नहीं तो सब जगह यही हाल होता है। देखो न, मेरे विश्वासी हुक्कामोंके सिर दोष लगाते हुए इसकी जीभ ज़रा भी न सकुचायी! अचम्भेकी बात है, कि अपने मालिकका भेद खोलते समय इसका दिल चूर-चूर नहीं हो गया!! आश्चर्यकी बात है, कि तुम्हारा नमक खाकर भी यह तुम्हारे समान न बन सका!" इतना कहकर राणा आँखें चढ़ाये दीवानको देखते रहे।

इसी समय रामभाऊ और तर्कप्रसाद लौटकर आगये। शठ-रायने सोचा, कि 'रामभाऊको रिश्वत देनेका मौक़ा बीत गया—' रामभाऊ जेलमें सेठसे मिला था और उसने दीवानके जुल्मकी सारी बातें कह दी थीं। इसके अलावा यह बात साहब और बम्बई गवर्नमेंट तकको मालूम हो चुकी थी, पर अब शठराय समझ गया, कि स्वयं राणा इस घटनासे लाभ उठायेगा। लम्बी साँस लेकर उसने मन-ही-मन सोचा,—"जब आकाशही फट गया, तब

उसमें थेगली नहीं लग सकती, जब रामभाऊ गया था, तब बातही और थी—यानी मैं दीवान था। अब हवा बदल गयी है। अब धन देनेसे भी छुटकारा नहीं मिल सकता। रामभाऊने सेठके विषयकी तमाम तुहमत शठराय और करवटरायपर मढ़ दी और अन्तमें बोला,—"महाराणा साहब! आपके विषयमें साहब-का बहुत अच्छा ख़याल है; पर ऐसे मंत्रियोंसे निस्सन्देह आप-की हानि होगी। यह सत्य है, कि दीवानसाहब पुराने हैं—पर यह भी सत्य है, कि ये पुराने रोग हैं। आपके राज्यमें अन्यायकी जितनी पुकार है, सो साहब अच्छी तरहसे जानते हैं; पर वे अब तक इसलिये नहीं बोले, कि आप खुदही उसे दुरुस्त कर देंगे। अन्तमें साहबकी उम्मीद बेफ़ायदा हुई। साहबका यह विश्वास नहीं है, कि सुधार होगा ही नही; यदि ऐसा विश्वास होता, तो साहब दूसराही रास्ता पकड़ते। पर बात यह नहीं है। साहब जानते हैं, कि मंत्री लोग आपतक प्रजाके अन्याय-की बातें नहीं पहुँचने देते—और यह बात नहीं है, कि आप जान-बूझकर अन्याय होने देते हैं। यदि साहबकी ऐसी भी धारणा होती, कि आपकी रियासतमें कोई लायक़ आदमी नहीं है, तब भी साहब इसका इन्तजाम करते या बाहरसे कोई लायक़ आदमी बुलाकर आपसे उसकी सिफ़ारिश करते। पर उन्हें अच्छी तरह मालूम है, कि आपके राज्यमें प्रामाणिक, विश्वासी और प्रजाका हित चाहनेवाले आदमी भी हैं। पर दीवानके दबावसे वे कुछ न बोल सकते; यदि आप ये सब बातें जान जायेंगे, तो उन आद-मियोंका ज़ोर हो जायेगा और प्रजा सुखी होजायेगी। इससे अधिक ज़बानी और कुछ कहनेकी मुझे आज्ञा नहीं है। साहबके पास और सरकारमें, आपके राज्यके अन्यायकी कितनीही पुकार हुईं;

उम्मीद है,कि आप इसकी बारीक़ जाँच करायेंगे। यह अख़बारोंका बण्डल भी साहबने भेजा है, इसमें आपके राज्यके भले-बुरे आदमियोंका वर्णन है। इसका विचार साहब आपहीपर छोड़ते हैं। खुद साहब अख़बारोंपर जियादा विश्वास नहीं करते, पर इनका और अर्ज़ियोंका मतलब एकही है; इसलिये ये भी भेजे हैं। इन्हें आप किसी प्रामाणिक अँगरेज़ी जाननेवालेसे पढ़वाकर समझ लें। दूसरी बात जो साहबने कही है, वह यह है, कि आप ज़मानेसे पीछे न रहें, बल्कि ज़मानेके साथ चलें और इस बातका सदा ध्यान रखें'। आज-कलकी सब बातें समझनेके लिये अँगरेज़ीके जानकार होनेकी ज़रूरत है; इसलिये धीरे-धीरे राज्यमें अँगरेज़ी जाननेवालोंको जगह दीजिये। इसके अलावा और जो कुछ कहनेकी बातें हैं, सो साहबने ख़तमें लिख दी हैं। मुझे अपनी ओरसे कुछ कहना नहीं है। पर खुद अपनी जो विनती मैं आपसे करता हूँ, वह सबके बीचमें कहनेपर भी अयुक्त न होगी। मैं भी आपके राज्यका शुभचिन्तक हूँ। और मैं कुछ सिखाने योग्य तो हूँ नहीं, पर यदि उसमें कोई, अच्छी बात हो, तो आप उसे जरूर मानलें। रसेल साहबके समान लायक़ और योग्य अंगरेज रजवाड़ोंमें शायदही कोई आता होगा,इसलिये आप उनके एक-एक अक्षरको लोहेकी लकीर समझें। आपके अमात्य भी साहबको अच्छी तरह जानते हैं और मेरी अपेक्षा अधिक बुद्धि, शक्ति और अनुभवसे वे इस बातको कह सकेंगे। इन्होंने एजेन्सीमें नौकरी की है; आपके पास भी की है, साहब इन्हें अच्छी तरह पहचानते हैं और आपका इनपर जो विश्वास है, उसे साहब अच्छा समझते हैं। साहबका विश्वास है, कि जब तक ऐसे मनुष्य राज्यमें बने रहेंगे, तबतक राजा और प्रजा दोनों-

का कल्याण होगा। साहबकी इस शिक्षाके अनुसार काम करने-से कितना लाभ होगा, सो अमात्य भी कह सकेंगे। उसे सुनना आपके अधीन है और जो कुछ उसका नतीज़ा होगा, उसके जिम्मे-वार भी आपही हैं। हम तो केवल दूतकी तरह दूसरोंके शब्द आपके सामने कह देनेके अधिकारी हैं। राज्यकी डोर आपके हाथमें है और परिणामकी बात स्वयं परमात्माके हाथमें है। जो लोग बुद्धिमानीसे काम लेते हैं, उनके लिये परमात्माको कभी अपनी लगाम नहीं खींचनी पड़ती। दीवान साहब! आप मेरे कहनेका बुरा न मानना। मैं तो साहबकी चिट्ठीका नौकर हूँ।"

रामभाऊका व्याख्यान समाप्त हो गया। थोड़ी देरतक सब वैसेही स्तब्ध बैठे रहे। रामभाऊने अपने बक्समेंसे अर्ज़ियोंका पुलिन्दा और अख़बारोंका बण्डल पास बैठे हुए बुद्धिधनको सँभला दिये। साहबका ख़त राणाजीको दिया। उसे फाड़कर उन्होंने पढ़ा। मन-ही मन कुछ विचारकर अन्तमें उत्तर दिया,—"रामचन्द्रराव! मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ, कि साहब मेरे हितेच्छु हैं। इस पत्रमें उन्होंने जो प्रेम जताया है, वह बहुत है। साहबकी शिक्षा योग्य है और उनकी सचाईके प्रमाण मुझे आज-ही मिले हैं। अब मेरी आँखें खुल गयी हैं। तुम जाकर ठहरो और भोजन करो। मैं दो घण्टेमें उत्तर दूँगा।"

सलाम करके रामभाऊ चला गया।

शठराय नीची नज़र किये खड़ा था। बुद्धिधन राणाजीकी आज्ञा सुननेके लिये उनके मुँहकी ओर देख रहा था। दूसरे सब हुक्काम राणाजीके मुँहके अक्षर सुननेके लिये एकटक उनकी ओर ताक रहे थे। अन्तमें मूछोंपर हाथ फेरकर राणाजी बोले,—"बुद्धिधन! आज मेरा दीमाग़ भिन्ना गया है। दीवान! मुझे

अफ़सोस है। जबतक इन अर्ज़ियों और अख़बारोंमें लिखी हुई बातोंकी पूरी खोज न हो और मेरे महलमें क्या षड्यन्त्र रचा गया है, इसका पूरा भेद न खुले, तबतक तुम्हारा भाग्य मेरे हाथमें नहीं है ; पर अब मुझे इस जालको तोडना है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं, कि तुम और तुम्हारा मण्डल अत्यन्त दुष्ट और नीच है। बुद्धिधनका नाश करनेके किये महावीरने मुझे जो काग़ज़ दिये हैं, वे सब जाली हैं। उन्हें किसने लिखा है और उस प्रपञ्चका मूल कौन है, यह भी मैं जानता हूँ और इसको सजा तुम्हें भोगनी पड़ेगी। मुझे अफ़सोस है, कि मेरा क्रोध बढ़ता जा रहा है! अरे मनुष्य-मनुष्यमें क्या अन्तर होता है? कहाँ बुद्धिधन और कहाँ तुम? क्या मैंने अबतक कभी तुम्हारे साथ कोई बुराई की है? क्या मैंने अबतक तुम्हारे सम्मानमें कोई कमी की है? तुम्हारा मैंने कितना विश्वास किया? पर उसका ऐसा ज़हरीला फल!!"—यह कहकर राणाजीने घृणासे सिर हिलाया।

"बस; अब दयाकी आवश्यकता नहीं है। बुद्धिधन! तुमने जो दया करने, भला करने और अपकारके बदले उपकार करनेकी सैंकड़ों शिक्षाएँ मुझे दी हैं, उन्हें मैंने अपने क्षत्रियत्वको भुलाकर—अपने मनको मसासकर अबतक सहा ; पर अब ऐसा न होगा। हाय! हाय! जिस नीच मनुष्यकी रक्षा करनेके लिये जगह-जगह तुमने उसकी सहायता की-उपकार किया-वही मनुष्य तुम्हारा नाश करनेके लिये ऐसे नीच प्रपञ्च रचे! यह कैसी बात है! और इस राक्षसको इतनेसेही सन्तोष नहीं हुआ, बल्कि मुझे और मेरे महलमे . बस इसे मैं ज़बानपर भी नहीं ला सकता। हुकामो और अहलकारो! यदि तुम लोगमें ज़रा भी बुद्धि हो, तो ऐसे राक्षसको पहचानना सीखो। तुम्हारा यह राणा और राजाओंके समान

हियेका अन्धा नहीं है; बल्कि इसमें आँखें हैं। बेचारे सज्जन रसेल साहब यह समझते हैं, कि दीवानने राणाकी आँखोंमें धूल झोंकी है; पर वे यह नहीं जानते, कि सब कुछ जानते-पूछते स्वयं राणाने धूल झुकवायी है। मेरी दीन प्रजापर जो घोर अन्याय, ज़ुल्म और अत्याचार हो रहा है, उसे मैं जानता और समझता हूँ; पर यह बुद्धिधनकी दया है, कि उसने अबतक इसे बचाया और इसे दीवानकी पदवीपर रखा। पर अब पापका घड़ा भर चुका और वह अपने आप फूट गया। बुद्धिधन! अब मैं तुम्हारा कहा न मानूँगा।

"विजयसेन! विजयसेन!! इस दीवान और करवटको अपनी संभालमें—जेलमें—रखो। और उस नमकहराम दुष्टरायको भी पकड़ लाओ, तीनोंको न्यारा-न्यारा रखो। ख़बरदार, जो कोई किसीसे बातें कर सका अथवा खुल सका या कोई गोलमाल हो गया, तो तुझे सज़ा भोगनी पड़ेगी। इन दोनोंके घरपर ताला लगाकर मुहर कर दो और सरकारी पहरा बैठा दो।"

बुद्धिधन अचानक राणाके पैरोंपर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर बोला,—"दीनानाथ! एक अर्ज़ है—"

"उठो बुद्धिधन! तुमने यह क्या नासमझीका काम किया! तुम्हें जो कुछ कहना हो, बैठकर कहो।" यह कहकर राणाने अमात्यका हाथ ऊपर उठाना चाहा।

"नहीं, महाराणाजी! मेरी विनती सुनो और उसे मञ्जूर करो, तब मैं उठूँगा। ये दोनों अन्नदाताके कृपापात्र रहे हैं; तमाम राज्यकी डोर इनके हाथमें रही है—मेरे ये सजातीय और सम्बन्धी हैं—जेल इनके योग्य स्थान नहीं है। आप सर्वशक्ति-सम्पन्न हैं; आपको इतना निठुर होना शोभा नहीं देता।"

"अच्छा, अच्छा ! ऐसाही करो विजयसेन ! इन्हें किसी दूसरी जगह रखना और खाने-पीनेका अच्छा इन्तज़ाम करना, पर जाप्ता पूरा रहे। क्यों, बस या और कुछ चाहिये ? इन्हें मिठाई और दूध-फल सभी कुछ देना।"

"यस महाराज ! अभी इतनीही कृपा बहुत है, पीछेकी बात पीछे देखी जायेगी।"

राणा,—"विजयसेन ! उस राँड कलावतीको भी पकड़ो और उसे जेलमें रखो। उसके गहने और कपड़े, रोटियोंके मुहताज भिखारियोंको बाँट दो। विजयसेन ! भङ्गी या और किसीके हाथ उस राँडका मुँह काला कराओ—अब यही देखनेकी मेरी इच्छा है। और दूसरे बदमाशोंको भी सख्तीके साथ रखो। सबकी खोज की जायेगी और सबका इन्साफ़ होगा।

"जयशङ्कर !" पास आनेपर राणाने उसके कानमें कहा,—"तुझे एक बहुत ज़रूरी काम सौंपता हूँ; अब मैं रानीका मुँह देखना नहीं चाहता। तू उसे पुराने महलमें लेजा और वहीं रख।

"बुद्धिधन ! अब तुम मेरे साथ चलो। अब इस चक्रका अन्त करनेके लिये मुझे तुम्हारीही ज़रूरत है।"

"मेरे विश्वस्त हुक्कामो और अहलकारो ! तुम्हें मालूम है, कि आज मेरा जन्म-दिन है। इस दिनका प्रारम्भ प्रसन्नतासे न हुआ; पर कोई हर्ज़ नहीं। आजकी घटनासे मेरी प्रजा ज़ुल्मके पञ्जेसे छूटी है, इसलिये मुझे प्रसन्नता है—मेरी प्रजा भी प्रसन्न होगी। नियमके अनुसार शामको पाँच बजे फिर दरबार होगा—उस समय मैं तुम्हें प्रसन्नताकी पूरी बात बता सकूँगा। किस प्रकार और क्या करना होगा, सो इस समय मैं और अमात्य एकान्तमें जाकर सोचते हैं।

"शठराय ! अब तुमसे मुझे जुदा होना पड़ता है : इसका मुझे अफ़सोस है, पर तुम मेरा दोष निकालकर ईश्वरके निकट फिर अपराधी बननेकी कोशिश मत करना। अपने प्रारब्ध और कर्मोंको भलाईकी ओर झुकानेका मौक़ा मनुष्यके हाथमें सदैव रहता है।"

अमात्यका हाथ पकड़कर राणाजी चले गये। जाते-जाते बुद्धिधनने प्रमादधन और नवीनचन्द्रको घर जानेका इशारा किया।

शठरायके मनमें एक बार भी न आया, कि राणाकी खरी और सत्यसे भरी बातोंका क्या उत्तर हो सकता है? उसके शरीरपर वे-के-वेही वस्त्र थे, उसके अवयव वे-के-वेही थे, वह खुद भी वही था, किन्तु वह सुवर्णपुरके राज-महलमें मध्याह्नके तपते हुए सूर्यके समान उग्र रूपसे आया था और जाते समय उसकी कान्ति अस्त हो चुकी थी। जिसपर राज्य भरकी नज़रें सम्मानके साथ पड़ती थीं, वह आज पदभ्रष्ट हो गया! फिर भी हिलती हुई डालमें बिना खिले मोगरेके पुष्पके समान, उसमें थोड़ा अभिमान ज़रूर मालूम होता था। पर समयके लिहाजसे व्यर्थ, निष्प्रयोजन होनेके कारण किसीने उसकी ओर नज़र उठाकर भी न देखा। इस अस्ताचलपर पहुँचे हुए दीवानको सब सूखी दृष्टि और उदासीसे देखने लगे। हुकामों, अहलकारों और राज्यपर हुकूमत करते-करते राज्यमद जिसके दीमाग़में भर गया था—वही शठराय शून्यवृत्तिका अनुभव करता हुआ—अपने आपको मनुष्योंके बीचमें होनेपर भी घोर अरण्यमें समझता हुआ—नीची दृष्टि किये हुए और बार-बार पीछेकी ओर देखता हुआ राजमहलसे निकला। निकलकर एक बार वह खड़ा रहा और

उस उच्चतर राजप्रासादको उसने नीचेसे ऊपर तक निहारा,—मानो उसमें राज्यमदका कोई अंश शेष रह गया था, सो उसने उसे भी निकाल दिया—और यह गुण राजमहलका एक अंग विशेष होनेके कारण, महलसे विदा करके फिर उस पदके अधिकारीको दबोचता हुआ लौट गया। शठरायकी आँखसे आँसूकी एक बूँद निकलकर गिर पड़ी। विजयसेनके सिपाहियोंसे घिरे और उनके साथ जल्दी चलनेके कारण, वह बूँद न मालूम किस ओर रेतमें गिर गयी। आज तक सिपाहियोंको उसकी चाल देखकर चलना पड़ता था, पर अब उसे सिपाहियोंके साथ चलना पड़ा। उस विपरीतताका अनुभव करता हुआ, मन्त्रिपद-की बातें करते हुए लोगोंसे दूर—क्षणिक दया और अन्तमें सन्तोषका पात्र, केवल अपने भाईके साथ शठराय, सबकी नज़रों-से ओझल होगया। लोगोंने उसका विचार भी छोड़ दिया, मानो सबने अपने हृदयोंसे भी उसे विदा कर दिया। उसके विपथके सारे विचार सन्ध्याके दरबारके विचारोंमें लीन होगये।

सवेरे जिस मण्डलके भीतर घुसतेही महल मानो सजीव होकर सहस्र मुखसे बोलने लगा था, वही मंडल राणाके भीतर जातेही महलमें आधी रातकीसी शान्ति छोड़कर बाहर आया। किसीके मुँहसे बात न निकलती थी। मानो रामायण या महाभारतकी कथा सुनकर सब लौटे हों और उसीके विचार-में लीन हो रहे हों। सबके मुखपर गम्भीरताकी गहरी छाया पड़ी थी। मानो लोग श्मशानमें मुर्देको जलाकर रोना-धोना छोड़कर नीची दृष्टि किये घर जा रहे हैं और उनके अनेक पद-शब्दोंको छोड़कर उन्हें कुछ सुनाई नहीं पड़ता। मण्डलके सब लोग शठरायके पीछेही आये थे, पर अब उसके बिनाही लौट गये।

सबसे पीछे प्रमाद्धन और नवीनचन्द्र दो तीन सिपाहियोंके साथ निकले। दोनोंका भय जाता रहा था और निर्भयता उनके चेहरेपर आ विराजी थी। अतएव इस समय उनके शान्त सुन्दर मुख और भी अधिक सुन्दर हो उठे थे। उनके साथ आये हुए लोग पहलेसेही चले गये थे।

दरबारमेंसे निकलते हुए शठरायपर नवीनचन्द्रकी दृष्टि पड़ी थी और वह चलते-चलते गुनगुनाकर गारहा थाः—

समयही करता निर्बल बली
समयही विषमें रस घोलता।
शरदमें धरता स्वर हंसका
फिर वही पिककी सुकठोरता॥

"हे सबलते और निबलते! तुम्हें समय ही रचता है। मनुष्य! तेरा अभिमान व्यर्थ है। शठराय! तेरी बुद्धि नहीं परास्त हुई, तेरा समय परास्त होगया।"

हाँ, तो प्रमाद्धन और नवीनचन्द्र दोनो बागके दरवाज़ेपर जिस समय पहुँचे, उस समय पीछेसे एक आदमी दौड़ता हुआ आया और उसने कहा,—"प्रमाद भाई! आपको पिताजीने बुलाया है और नवीनचन्द्र! आप चाहें घर पधारें। अमात्य और प्रमाद भाई अभी थोड़ी देरमें आते हैं।"

एक सिपाही नवीनचन्द्रके साथ होगया।

निर्मल आकाशमें पक्षी जैसे अपने दोनो परोंको फटकारता हुआ स्वच्छन्द विचरण करता है, उसी प्रकार रास्तेमें जाते हुए नवीनचन्द्रके दीमागमें उस समय बड़े-बड़े विचार घूमने लगे।*

—※ पहला खण्ड समाप्त ※—

* इससे आगेका हाल जाननेके लिये दूसरा खण्ड मँगाकर देखिये।